श्री यन्त्रम्

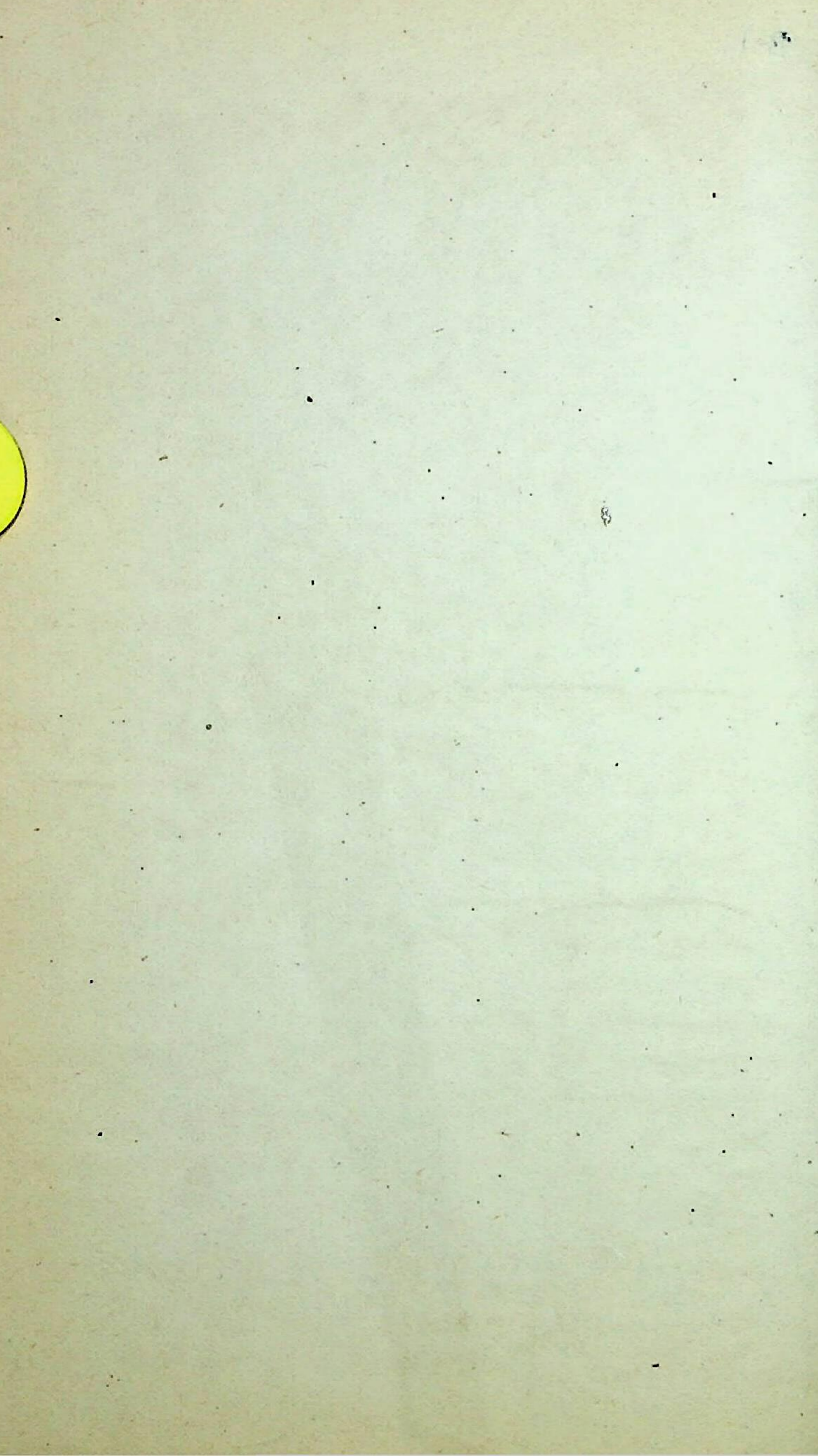
साधना - सिद्धि



डा. वागीश शास्त्री

ह्रींकएईलह्रींहसकहलह्रींसकलह्रीं

B-1



लोकोपयोगी तन्त्र विज्ञान माला संख्या-८

श्री यन्त्रम्

(साधना एवम् सिद्धि)

श्री यन्त्र निर्माण विधि, सम्पूर्ण विवरण, कादि और
हादि विद्याओं का स्वरूप, सम्पूर्ण शास्त्रोक्त पूजन
विधान, मन्त्र, कवच, स्तोत्र, सहस्रनाम
आदि तथा साधकों के लिए विशेष
पूजन मुहूर्त; दीक्षा काल, कादि
विद्या के नियम आदि
सम्पूर्ण जानकारी
युक्त प्रमाणिक
पुस्तक

●

लेखक—सम्पादक
डा० आचार्य वागीश शास्त्री
(लब्धप्रतिष्ठित तन्त्र शास्त्र मर्मज्ञ)

●

प्रकाशक

दीप पब्लिकेशन



कंचन मार्केट,
हॉस्पीटल रोड, आगरा-282003

● प्रकाशक

दीप पब्लिकेशन

कंचन मार्केट

अस्पताल रोड, आगरा—३

● लेखक/सम्पादक :
डा० आचार्य वागीश शास्त्री

● प्रथम संस्करण 1988

● मूल्य : पैंतालीस रुपया

मुद्रक : सुमन कम्पोजिंग हाऊस, अमरपुरा आगरा २
ब्रज प्रिंटर्स, नया वांस आगरा ।

SHRIYANTRAM (SADHANA—SIDHHI)

by : Dr. Vageesh Shastri.

भूमिका

श्री यन्त्र का सांगोपांग प्रमाणिक विवेचन तथा इसका शास्त्रीय प्रमाणिक अध्ययन अभी तक अनुपलब्ध था। जो कुछ इस विषय में अभी तक बाजार में बिकता था वह भी विषय की गम्भीरता व प्रमाणिकता को देखते हुए भ्रम उत्पन्न करने वाला था। इस विषय पर श्री वागीश शास्त्री का ज्ञान भण्डार अक्षुण है। उन्होंने श्री यन्त्र को मूल रूप को स्पष्ट किया है और वेदोक्त मन्त्रों की मूल ध्वनि को स्पष्ट कर हमें उस युग से साक्षात्कार कराने का प्रयास किया है जिस समय इनकी मूलतः रचना हुयी थी। आप खुद भी इस विषय पर अपने शिष्यों का मार्ग दर्शन करते रहते हैं। अपने जीवन की सम्पूर्ण क्रियाशीलता का प्रमाण उनकी इस पुस्तक में समाहित है। पाठकगण इस पुस्तक का अध्ययन करके लाभान्वित होंगे यही आशा है—

सम्पूर्ण दस महाविद्या तन्त्र महाशास्त्र

ले० तन्त्राचार्य पं० राजेश दीक्षित

विश्व जनमानस में देवी भगवती के दस पौराणिक स्वरूप प्रचलित हैं यथा—काली, तारा, महाविद्या (षोड्सी), भुवनेश्वरी, त्रिपुर भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगलामुखी, मातङ्गी, कमलात्मिका (कमला)। ये सभी भगवती पराशक्ति के विभिन्न स्वरूप हैं। प्रस्तुत महाग्रन्थ में सभी देवियों के तान्त्रिक, काम्य प्रयोग दिये गये हैं जो सिर्फ महान सिद्ध-योगियों को ही ज्ञात रहते हैं तथा वे किसी भी कीमत पर उन्हें नहीं बताते। साथ में सम्बन्धित मन्त्र, यन्त्र, पूजा, जप, साधनविधि, उपनिषद सतजप, सहस्रनाम आदि विभिन्न विषयो को दिया गया है। देवी भक्तों को संकलन योग्य महान ग्रन्थ, सम्पूर्ण सुनहरी ठप्पेदार कपड़ा वाइन्डिंग सहित सचित्र ग्रन्थ का मूल्य 200) रु० (दो सौ) डाकखर्च 10) उपरोक्त ग्रन्थ अलग-अलग जिल्दों में भी है।

(1) काली तन्त्र शास्त्र (2) तारा तन्त्र शास्त्र
(3) महाविद्या (षोड्सी) तन्त्र शास्त्र
(4) भुवनेश्वरी एवम् छिन्नमस्ता तन्त्र शास्त्र
(5) बगलामुखी एवम् मातङ्गी तन्त्र शास्त्र
(6) भैरवी एवम् धूमावती तन्त्र शास्त्र
(7) कमलात्मिका (लक्ष्मी) तन्त्र शास्त्र

प्रत्येक पुस्तक का मूल्य 30 रु० डाक खर्च 7 रु० अलग।

कौतुकरत्न भाण्डागार-बृहत् इन्द्रजाल

ले० ओझा बाबा

आजकल बाजार में इन्द्रजाल बहुत मिलते हैं जिन्होंने इस विषय की गम्भीरता को खत्म प्राय कर रखा है। इस पुस्तक में परमसिद्ध ओझा बाबा ने सम्पूर्ण जीवन का ज्ञान निचोड़कर रख दिया है। दत्तात्रेय के सिद्धि देने वाले मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र सम्मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि विधि सहित दिये गये हैं। सचित्र व सजिल्द पुस्तक का मूल्य 30) रु० डाक खर्च 7) रु० अलग।

प्रयोगात्मक कुण्डलिनी तन्त्र

ले० महर्षि यतीन्द्र

(डा० वाय० डी० गहराना)

कुण्डलिनी जागरण पर एकमात्र प्रयोगिक पुस्तक जिसमें आत्म तत्व ज्ञान के सिद्धान्त, कुण्डलिनीयोग के आसन, प्राणायाम, धारणा और ध्यान के विशेष त्राटक, कुण्डलिनी के षट् चक्रों से आगे के विशेष विवरण आदि विशेष रूप से दिये गये हैं। 150 से अधिक रंगीन व सादे चित्र पृष्ठ संख्या 396 सजिल्द मूल्य 60 रु० डाक खर्च 10 रु० अलग।

पुस्तकें मंगाने का पता

दीप पब्लिकेशन अस्पताल रोड, आगरा—३

विषय-सूची

●

॥ ॐ ह्रीं ॥

॥ श्री मन्मातृ पितृ चरण कमलेभ्यो नमः ॥

॥ श्री मद्गुरु चरण कमलेभ्यो नमः ॥

॥ श्री मन्महागणाधिपतये नमः ॥

॥ श्री सच्चिदानन्द स्वरूपिण्यै श्री ललिता महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः ॥

आब्रह्माण्ड पिपीलिकान्त तनुभृत्सूज्जृम्भमाणा स्फुटं जाग्रत्स्वप्न सुषुप्ति-भासकतया सर्वत्र या दीव्यति सा देवी जगदम्बिका भगवती श्री राजराजेश्वरी श्रीविद्या करुणानिधिः शुभकरी भूयात्सदा श्रेयसे

१

श्री ललिता पञ्चकम्

प्रातः स्मरामि ललिता वदनार विन्दं
बिम्बाधरं पृथुल मौक्तिक शोभिनासम् ।
आकर्ण दीर्घ नयनं मणिकुण्डलाढ्यं
मन्दस्मितं मृगमदोज्ज्वल भालदेशम् ॥१॥
प्रातर्भजामि ललिता भुजकल्प वल्लीं
रक्ताङ्गलीय लसदङ्गलि पल्लवाढ्याम् ।
माणिक्य हेम वलयाङ्गद शोभमानां
पुण्ड्रेक्षु चाप कुसुमेषु सृणीर्दधानम् ॥२॥
प्रातर्नमामि ललिता चरणारविन्दं
भक्तेष्टदान निरतं भवसिन्धु पोतम् ।
पद्मासनादि सुरनायक पूजनीयं
पद्माङ्कुशध्वज सुदर्शन लाञ्छनाढ्यम् ॥३॥
प्रातः स्तुवे पर शिवां ललितां भवानीं
त्रय्यन्तवेद्य विभवां करुणानवद्याम् ।
विश्वस्य सृष्टि विलय स्थिति हेतुभूतां
विद्येश्वरीं निगम वाङ्मनसातिदूराम् ॥४॥
प्रातर्वदामि ललिते तव पुण्य नाम
कामेश्वरीति कमलेति महेश्वरीति ।
श्री शाम्भवीति जगतां जननी परेति
वाग्देवतेति वचसा त्रिपुरेश्वरीति ॥५॥
यः श्लोक पञ्चकमिदं ललिताम्बिकायाः
सौभाग्यदं सुललितं पठति प्रभाते ।
तस्मै ददाति ललिता झटिति प्रसन्ना
विद्यां श्रियं विमल सौख्यमनन्तकीर्तिम् ॥

श्री श्री यन्त्रम्

प्रस्तावना

'श्री श्री यन्त्र' को आचार्यों ने यन्त्रराज कहा है। यह यन्त्र श्री विद्या का मुख्य यन्त्र है। श्री विद्या ही ललिता राजराजेश्वरी, महात्रिपुर सुन्दरी, बाला, पन्चदशी एवं षोडशी नाम से विख्यात हैं। मूलरूप से इन सभी नामों में एकता के होते हुए भी उपरिलिखित भिन्न-भिन्न नाम अवस्था भेद के द्योतक हैं।

तन्त्र वाङमय में प्रसिद्ध दश महाविद्याओं में "षोडशी" विद्या को ही श्री विद्या कहते हैं। दश महाविद्याओं में (१) काली (२) तारा (३) षोडशीत्रिपुर सुन्दरी (४) भुवनेश्वरी (५) छिन्नमस्ता (६) त्रिपुर भैरवी (७) धूमावती (८) बगलामुखी (बल्गामुखी) (९) मातंगी (१०) कमलात्मिका इन नामों का स्मरण किया जाता है।

इन दशों महाविद्याओं के सम्बन्ध में हम साधकों के विज्ञान हेतु संक्षिप्त प्रकाश डाल रहे हैं। यद्यपि आज का युग विज्ञान का युग है अतः इस विज्ञान प्रधान युग में तन्त्र, मन्त्र, यन्त्रादि को मान्यता न देना अथवा अन्ध-विश्वास कहकर टाल देना समीचीन न होगा। क्योंकि श्रौतस्मार्त वचनों के अनुसार—

"नित्यं विज्ञान मानन्दं (अनन्तं) ब्रह्म ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिद वक्ष्याम्य-शेषतः" आदि धर्मसृष्टि के प्रवर्तक मूलभूत ज्ञानमूर्ति ब्रह्मतत्व को जब नित्य विज्ञानमय बतलाते हैं तो ऐसी अवस्था में भारतीय धर्म को विज्ञान रहित बत-लाना या अन्धविश्वास कहना, कहाँ की समझदारी है।

धर्म

"धारणा धर्मः" वस्तु के वास्तविक स्वरूप को स्वस्वरूप में सुरक्षित रख कर जो शक्ति उस वस्तु के द्वारा धृत रहती है अर्थात् धारण की जाती है उसी शक्ति तत्त्व को शास्त्रों में 'धर्म' शब्द द्वारा आकारित किया जाता है। ताप

अग्नि का धर्म है, प्रकाश सूर्य का धर्म है, प्रतिष्ठा पृथ्वी का धर्म है। इनमें जब तक ताप-प्रकाश व प्रतिष्ठा है, तभी तक इनकी स्वरूप सत्ता है। जिस दिन इनके ताप-प्रकाश व प्रतिष्ठादि धर्म नष्ट हो जाएंगे उसी दिन इनकी सत्ता भी छिन्न-भिन्न हो जाएगी। वस्तु की सत्ता तभी तक होती है जब तक उसका स्वरूप धर्म(उसकी शक्ति) उसमें प्रतिष्ठित है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि धम ही धर्मों की प्रतिष्ठा है। जिस समय धर्म न होगा, उस समय धर्मी भी न होगा। यही व्यवस्था मनुष्य धर्म, वाणी धर्म, जाति धर्म, कुल धर्म, राष्ट्र धर्म आदि के विषय में भी समझनी चाहिए। मनुष्य तभी तक मनुष्य है जब तक उसमें मनुष्य धर्म है। वर्ण तभी तक वर्ण है जब तक उसमें वर्ण धर्म है। जाति, कुल, राष्ट्र आदि भी तभी तक हैं जब तक उनमें उनका मूलभूत धर्म विद्यमान है। विश्व भर में अनेक धर्म हैं, किन्तु सनातन धर्म ही सर्वोपरि श्रेष्ठ धर्म है। 'सनातन' शब्द का अर्थ है 'सदा रहने वाला' अर्थात जो धर्म सदा रहने वाला है वह प्रकृति सिद्ध नित्य धर्म सनातन धर्म ही है। इस प्रकार अनादि काल से अनन्त काल तक सनातन धर्म की वैज्ञानिकता सुस्पष्ट एवं स्वयं-सिद्ध है। हमारे इस सनातन धर्म का विज्ञान से कितना गहरा और पुराना सम्बन्ध है, पाठकों एवं साधकों को स्वतः ही स्पष्ट हो जायेगा।

श्री विद्या

दश महाविद्याओं में तीसरी महाविद्या षोडशी त्रिपुर सुन्दरी विद्या ही श्री विद्या है। यद्यपि काली, तारा, भुवनेश्वरी छिन्नमस्ता, त्रिपुर भैरवी, धूमावती, बल्गामुखी, मातंगी, कमलात्मिका आदि सभी विद्याएँ समान हैं पर उपासक अपनी आराध्या देवी को ही सर्वश्रेष्ठ एवं पर ब्रह्मात्मक मानता है और आराधक या उपासक को अपने आराध्य एवं उपास्य देवता को सर्व श्रेष्ठ मानना समुचित भी है इसलिये काली, तारादि महाविद्याओं की सर्वश्रेष्ठता भी अनुचित नहीं है। श्री विद्या दश महाविद्याओं में प्रथम तीन विद्याएँ (१) काली (२) तारा एवं (३) षोडशी—ये ही सर्वप्रधान विद्याएँ हैं। इन तीनों से ही नव विद्याएँ तथा एक पूरक विद्या मिलाकर दश महाविद्याएँ होती हैं। इसी श्री विद्या को ही ब्रह्म विद्या तथा ब्रह्ममयी भी कहा जाता है। श्री विद्या शब्द से श्री त्रिपुर सुन्दरी का मन्त्र तथा उसकी अधिष्ठात्री देवी दोनों का ही ज्ञान होता है। श्री शब्द का बहुप्रचलित अर्थ लक्ष्मी, सर्वविदित ही है किन्तु हारितायन संहिता, ब्रह्माण्ड पुराणोत्तर खण्ड आदि पुराणेतिहासों में वर्णित कथाओं के अनुसार श्री शब्द का मुख्यार्थ महात्रिपुर-सुन्दरी ही है। श्री महालक्ष्मी ने महात्रिपुर सुन्दरी की चिरकाल तक आराधना करके जो अनेक वर प्राप्त किये थे उनमें ही 'श्री' शब्द से ख्याति प्राप्त करने का एक वर भी सम्मिलित था तभी से श्री शब्द का अर्थ महालक्ष्मी का

पर्याय बन गया। वस्तुत: श्री अर्थात महात्रिपुर सुन्दरी की प्रतिपादिका विद्या का मन्त्र ही श्रीविद्या हैं। वाच्य-वाचक का अभेद करके इस मन्त्र की अधिष्ठात्री देवता भी श्री विद्या हो कही जाती है। यद्यपि श्री शब्द सम्मान सूचक व श्रेष्ठता सूचक होने के कारण महान पुरुषों के नामों के आगे भी प्रयोग में लाया जाता है। अत्यधिक श्रेष्ठता का बोध कराने के लिए ३, ४, ५, ६, ७, १०८, १००८ वार तक श्री शब्द के प्रयोग लोक में पाये जाते हैं। अनेक सम्प्रदायों के आचार्यों के नामों के पूर्व श्री १००८ ...... लिखा जाता है। इन संख्याओं से भी जब मानव को श्रेष्ठता में कुछ कमी ज्ञात हुई तो 'अनन्त श्री' तक का प्रयोग व्यवहृत होने लगा। इस प्रकार यहतो सिद्ध ही है कि श्री शब्द श्रेष्ठता, महत्ता एवं पूज्यता का द्योतक है। सर्व श्रेष्ठ तो परब्रह्म परमात्मा ही है। श्री शब्द ब्रह्म कलांश को द्योतित करता है, जिनमें अंशत ब्रह्म कला प्रकट होती है वे ही श्रीशब्द पूर्वक उन-उन नामों से पुकारे जाते हैं, जैसे—श्री विष्णु, श्री शिव, श्री काली, श्री दुर्गा, श्री राम, श्री कृष्ण इत्यादि।

विभिन्न देवों की उपासना से धन-धान्य, पशुपत्र, यश-प्रतिष्ठा, सद्‌गति आदि अनेक फलों की प्राप्ति होती है, ऐसा शास्त्रों में अथवा उपास्यदेवों की स्तुति-फल श्रुति में कहा गया है। श्री विद्या के उपासकों को लौकिक फलों की प्राप्ति तो होती ही है साथ ही साथ आत्म ज्ञान को भी उपलब्धि होती है। जैसा कि श्रुति में कहा है "तरतिशोकमात्मवित्" अर्थात वह आत्म ज्ञानी शोक सागर को पार कर लेता है। आथर्वण देव्युपनिषत् में इसी बात को दो बार कहा गया है—

'पाशांकुशधनुर्वाणा, य एवं बेद स शोकं तरति, स शोकं तरित'

अर्थात् जो पाश, अकुश और धनुष बाण को धारण करने वाली महादेवी को इस प्रकार जानता है वह शोक को पार करता है अत: फल की एकता के कारण श्री विद्या ही ब्रह्मविद्या है।

श्री विद्यापासकों को भोग और योग मोक्ष दोनों ही होते हैं—

यत्रास्ति भोगों न च तत्र मोक्षो
यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोग।
श्री सुन्दरी सेवन तत्पराणां।
भोगश्च मोक्षश्च कर स्थ एवं॥

अर्थात् जहाँ भोग है वहाँ मोक्ष नहीं है और जहाँ मोक्ष हैं वहाँ भोग नहीं है किन्तु श्री सुन्दरी के आराधकों के हाथ में भोग और मोक्ष दोनों ही हैं।

"**श्रयते या सा श्री:**" अर्थात जो श्रयण करे, आश्रय दे या आश्रय पाये वही श्री है। श्री का श्रयण कर्म 'हरि' के अतिरिक्त कोई नहीं हो सकता। इसलिये जो नित्य परब्रह्म का आश्रयण करती है वही श्री है यहाँ पर यह शङ्का करना

व्यर्थ है कि ब्रह्म को श्रयण करने वाली वस्तु यदि नित्य है तो वह द्वैत है और यदि अनित्य है तो घट पटादि की भाँति यह भी ब्रह्माश्रित हुई अत: जब ब्रह्माश्रित है तो उसे पृथक क्यों माना जाय ? इसके लिए यह उत्तर देना समीचीन होगा कि जिस प्रकार प्रकाश या उष्णता अग्नि से अभिन्न है उसी प्रकार ब्रह्म से उसकी शक्ति भी अभिन्न है जैसा कि आगम में कहा गया है—

न शिवेन विना देवी, न च देव्या बिना शिव: ।
नानयोरन्तरं किञ्चिच्चन्द्रचन्द्रिक योखि ।।

अर्थात् शिव के विना देवी नहीं और देवी के विना शिव नहीं। इनमें चन्द्र और चन्द्रिका की भाँति किञ्चिन्मात्र भी अन्तर नहीं है। यह श्री का ही प्रभाव है कि ब्रह्म को अनन्त शक्तिमान, सृष्टिकर्ता और पालनकर्त्ता कहा जाता है। श्री मज्जगद्गुरु भगवान शङ्कराचार्य सौन्दर्य लहरी में कहते हैं :—

शिव: शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्त: प्रभवितुं ।
न चेदेवं देवो न खलु कुशल : स्पन्दितु मपि ।।

अर्थात् भगवान शिव तभी किसी भी कर्म के प्रतिपादन में समर्थ होते हैं जब वे शक्ति से युक्त होते हैं । यदि वे शक्ति से युक्त नहीं हैं तो वे हिलडुल भी नहीं सकते । शास्त्रकारों ने शिव में 'इ' को तन्मात्रा अर्थात् शक्ति कहा हैं, यदि शिव से इस तन्मात्रा को निकाल दिया जाय तो "शिव" केवल 'शव' रह जाएँगे ।

'विदन्तिऽनया विद्या' जिससे जाना जाय उसे विद्या कहते हैं, यह शाब्दिक व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है विद्या का। निगमाचार्यों ने "सैषात्रयी विद्या" इत्यादि रूप से विद्या शब्द का प्रयोग किया है । इसी प्रकार आगमाचार्यों ने "विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि" इत्यादि कहकर विद्या शब्द का प्रयोग किया है। निगम में "त्रयं ब्रह्म, त्रयीविद्या, त्रयो वेदा:" कहकर ब्रह्म, विद्या और वेद इन तीनों को अभिन्नार्थक माना है । परमार्थ दृष्टि से तीनों अभिन्न हैं परन्तु लोकदृष्टि से तीनों भिन्न हैं । शक्ति तत्त्व को विद्या अथवा महाविद्या क्यों कहा जाता है ? अनन्त ज्ञानघन, क्रियाघन, अर्थघनतत्त्व विशेष का नाम ही अक्षर ब्रह्म है । वह सर्वज्ञानमय, सर्वक्रियामय तथा सर्वार्थमय है अर्थात् वह अक्षर तत्त्व मन प्राण और वाणीमय है । जैसे क्षर पुरुष का आलम्बन अक्षर पुरुष है वैसे ही सबका आलम्बन पुरुषोत्तम नामक अव्यय पुरुष है, वह स्वयं ज्ञान क्रिया व अर्थ शक्ति रूप है । अव्यय की ज्ञान शक्ति का उक्थ (प्रभव) मन है। क्रिया शक्ति का उक्थ प्राण है, अर्थ शक्ति का उक्थ वाणो है । इन तीनों कलाओं के अतिरिक्त दो कलाएं और हैं-"आनन्द और विज्ञान।" इनमें वाक्कला को उपनिषत्कारों ने "अन्न ब्रह्म" कहा है । तैत्तिरीयोपनिषद में इन पाँचों(आनन्द-विज्ञान-मन-प्राण और अन्न) ब्रह्म कोषों की विस्तार से व्याख्या की गयी है।

इस प्रकार वह अव्यय पञ्च कलात्मक है। वह पञ्च कलात्मक अव्यय पुरुष स्वयं शक्ति रूप है। एक सिद्धान्त है—"सामान्ये सामान्याभाव:" अर्थात् सामान्य में सामान्य का अभाव रहता है। अत: इस सिद्धान्त के अनुसार आनन्द में आनन्द नहीं, विज्ञान में विज्ञान नहीं, मन में मन नहीं, प्राण में प्राण नहीं, वाक् में अर्थात् अन्न में वाक् या अन्न नहीं। अतएव अक्षर से भी परे रहने वाले इस तत्त्व का निरूपण इस प्रकार से किया गया है—

दिव्योह्यमूर्त: पुरुष: स वाह्याभ्यन्तरो ह्यज: ।
अप्राणोह्यमना: शुभ्रो ह्यक्षरात्परत: पर: ।।

(मुण्डकोपनिषत् २।१।२)

अर्थात् वह दिव्य पुरुष अमूर्त है, वह बाहर और भीतर से अजन्मा है। प्राण रहित और मन रहित है, शुभ्र है, अक्षर से परे है। इसी भाव को श्रुति भी निरूपिता करती है—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च ।।

(श्वेता० ६।८)

अर्थात् उसका न तो कोई कार्य है और न ही वह कुछ करता है। न तो उसके समान ही काई है और न उससे कोई अधिक भी कहीं देखा जाता है। उसकी विविधा पराशक्ति सुनने में आती है, उसकी क्रिया, ज्ञान, बल स्वाभाविक है। इन्हीं कारणों से हम अव्यय पुरुष को निर्धर्मक मानते हैं। अव्यय पुरुष है। पुरुष चेतन है, चिदात्मा है, ज्ञान मूर्ति है, अतएव निष्क्रिय है। इसीलिये क्रिया सापेक्ष सक्रिय विश्व की निर्माण प्रक्रिया से वहिर्भूत है। सृष्टि संसृष्टि है। योषा-वृषा नाम से प्रसिद्ध रयि, प्राण नाम के दो तत्त्वों का रासायनिक संयोग ही संसृष्टि है। संयोग व्यापार है। व्यापार क्रिया है। इसका उसमें अभाव है। अत: वह अकर्ता है। अव्यय क्रियावान् नहीं अपितु क्रियारूप है। क्रियावान है अक्षर पुरुष। वह अक्षर पुरुष ही अव्यक्त, पराप्रकृति, परमब्रह्म आदि नामों से प्रसिद्ध है। वह पुरुष इस प्रकृति के साथ समन्वित होता है। "तत्तु समन्वयात्" (शारीरिक दर्शन व्यास सूत्र) के अनुसार इस प्रकृति पुरुष के समन्वय से ही विश्व रचना होती है। अव्यय की शक्तियाँ इस समन्वय से ही अक्षर में संक्रान्त होती है, उसकी शक्तियों से अक्षर शक्तिमान हो जाता है अत: हम अक्षर को आनन्दवान्, विज्ञानवान्, मनस्वी, क्रियावान् और अर्थवान् मानते हैं।

क्षर पुरुष अव्यय पुरुष की अपरा प्रकृति है। अक्षर पुरुष परा प्रकृति है। अव्यय आलम्बन कारण है। अक्षर निमित्त (असमवायि) कारण है। क्षर उपादान (समवायि) कारण है। तीनों में कर्त्ता अक्षर है, क्योंकि वही क्रियामय है। उपादान होने से ब्रह्म कहलाता है, इसीलिये "ब्रह्माक्षर समुद्भवम्" कहा गया है। अक्षर से ही क्षर ब्रह्म प्रादुर्भूत होता है, इसी को अवर ब्रह्म भी कहा जाता है। अक्षर पुरुष क्षर की अपेक्षा पर और अव्यय की अपेक्षा अवर होने से 'परावर' कहा जाता है। व्यक्त क्षर, अव्यक्त अक्षर दोनों से पर होने के कारण अव्यय 'पर' कहलाता है। इसे श्रुति इस प्रकार व्यक्त करती हैं—

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म, ह्येवद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा, यो यदिच्छति तस्यतत्॥

(कठोपनिषत् १।२।१६)

भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्मणि, तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

(मुण्डक० २।२।८)

आत्म-शक्ति की उपासना ही श्री विद्या की उपासना है

श्री विद्या की उपासना आत्म, शक्ति की उपासना है। हरितायन संहिता, त्रिपुरा रहस्य, महात्म्य खण्ड के चतुर्थ अध्याय में महामुनि संवर्ज ने श्री परशुराम जी के संसार के भय से पीड़ितों के लिये कौन सा मार्ग उत्तम है? इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया है—गुरु के उपदिष्ट मार्ग से स्वात्म शक्ति महेश्वरी त्रिपुरा की आराधना करके उसकी कृपा को प्राप्त करते हुए सर्वसाभ्याश्रयात्मक स्वात्म भाव को प्राप्त करो। दृश्यमान सब कुछ आभासमात्र सारशक्ति विलास ही है. ऐसा समझकर जगद्गुरु समाप्ति को प्राप्त हुए निर्भय तथा निःसशय होकर हे परशुराम! तुम भी मेरे ही समान यथेच्छ सञ्चार करो। सर्वभावों में स्वात्मा को और स्वात्मा में सर्वभावों को देखते हुए पिण्डाहंभाव छोड़कर वेतृ-भाव के आसान पर स्थिर रहो। स्वदेह को वेद्य समझते हुए वेत्ता पर सदा दृष्टि रखने वाले को इस संसार यात्रा में कुछ भी कर्त्तव्य शेष नहीं रहता। स्वतन्त्र तन्त्र में भी कहा है—स्वात्मा ही विश्वात्मिका ललिता देवी है। उसका विमर्श ही उसका रक्त वर्ण है और इस प्रकार की भावना ही उसकी उपासना है।

महात्रिपुर सुन्दरी कामेश्वरी

स्वात्मशक्ति श्री विद्या ही ललिता कामेश्वरी महात्रिपुर सुन्दरी है। वही महाकामेश्वर के अङ्क में विराजमान है। उपाधि रहित शुद्ध स्वात्मा ही

महाकामेश्वर हैं और सदानन्द रूप उपाधिपूर्ण स्वात्मा ही परदेवता महात्रिपुर सुन्दरी ललिता है।

पञ्च प्रेतासन

राज राजेश्वरी श्रीविद्या पञ्च प्रेतासन पर आसीन हैं। ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-ईश्वर और सदाशिव—ये पञ्च महाप्रेत हैं। इसका रहस्य इस प्रकार है—निर्विशेष ब्रह्म ही अपने शक्ति-विलास के द्वारा ब्रह्मा-विष्णु इत्यादि पञ्च आख्याओं को प्राप्त होकर वामादि तत् तत् शक्ति के सान्निध्य से सृष्टि, स्थिति, लय, निग्रह और अनुग्रह रूप पञ्चकृत्यों को सम्पादित करता है, जब ब्रह्मादि अपनी-अपनी वामादि शक्तियों से रहित होकर कार्य करने में अक्षम (असमर्थ) हो जाते हैं तब वे प्रेत कहे जाते हैं। उनमें भी ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर ये चार पाद हैं और सदा शिव फलक हैं, उस पर महाकामेश्वराङ्क में माहाकामेश्वरी विराजित हैं।

श्री विद्या के आयुध

श्री श्रीविद्या ललिता कामेश्वरी महात्रिपुर सुन्दरी की चारों भुजाओं में पाश, अङ्कुश, इक्षुधनु और पञ्च पुष्पबाणों का ध्यान किया जाता है। इन आयुधों का स्वरूप क्या है, इसे समझना आवश्यक है।

पाश—

३६ तत्त्वों में राग अर्थात् प्रीति नामक तत्त्व ही पाश है। बन्धकत्व धर्म के साथ साम्य होने से वही राग श्री श्री विद्या ने पाश रूप से धारण किया है। कहा भी है। "रागः पाशः" अर्थात् राग ही पाश है।

अंकुश—

"द्वेषोअङ्कुशः" अर्थात् द्वेष ही अंकुश है।

इक्षु धनु—

"मन इक्षुधनुः" अर्थात संकल्प विकल्पात्मक क्रिया रूप मन ही इक्षुधनु है।

पञ्चबाण—

"शब्दादितन्मात्राः पञ्चपुष्पबाणः" अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध की पञ्च तन्मात्राएँ ही पञ्च पुष्प बाण हैं।

इच्छाशक्तिमयं पाशमंकुशं ज्ञान रूपिणम्।
क्रियाशक्तिमये बाणधनुषी दधदुज्ज्वलम्॥

(उत्तर चतुःशती)

अर्थात् पाश इच्छा-शक्ति है, अंकुश ज्ञान शक्ति है तथा इक्षुधनु व पञ्चबाण क्रिया-शक्ति स्वरूप है।

सभी मन्त्रों का मुकुट मणिमन्त्र

ब्रह्म विद्या या मूल विद्या

कामोयोनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः ।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरूच्चैषा विश्वमाता दि विद्योम् ।।

श्री दुर्गा सप्तदशी में देव्यथर्व शीर्ष के अन्तर्गत इस श्लोक में श्रीदेवी का मूलमन्त्र बताया गया है । यही मन्त्र ब्रह्म विद्या या मूल विद्या है ।

काम—क	ह स वर्ण—ह स	स क ल वर्ण—स क ल
योनि—ए	मातरिश्वा (वायु)-क	माया—ह्रीं ।
कमला—ई	अभ्र—ह	
वज्रपाणि (इन्द्र) ल	इन्द्र—ल	
गुहा—ह्रीं	पुनर्गुहा—ह्रीं	

इस प्रकार सर्वात्मिका जगन्माताकी मूलविद्या ब्रह्म रूपिणी का मूल मन्त्र इस प्रकार बना—

"क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं सकल ह्रीं" इसी प्रकार शाक्त प्रमोद में मन्त्रोद्धार के अन्तर्गत इस मन्त्र का वर्णन इस प्रकार है—

आदौ लज्जां समुच्चार्य क ए ई ल ततः परम् ।
पुनश्चलज्जामुच्चार्य हस कहल तु तत्परम ।।
ततो लज्जां पुनः प्रोच्य लज्जान्तं सकलं ततः ।
षोडशाक्षरमन्त्रोऽयं षोडश्याः समुदाहृतः ।।
इयन्तु सुन्दरी विद्या देवानामपि दुर्लभा ।
गोपनीय प्रयत्नेन सर्वसम्पत्करी मता ।।

शिवशक्ति अभेदरूपा—ब्रह्म विष्णु शिवात्मिका, सरस्वती-लक्ष्मी गौरी रूपा, अशुद्ध मिश्र शुद्धोपासनात्मिका, समरसी भूत-शिव शक्त्यात्मक ब्रह्म स्वरूप का निर्विकल्प ज्ञान देने वाली सर्व तत्त्वात्मिका महात्रिपुर सुन्दरी यही इस मन्त्र का भावार्थ है । यह मन्त्र सभी मन्त्रों का मुकुटमणि है । मन्त्र शास्त्र में पञ्च-दशी आदि श्री विद्या के नाम से प्रसिद्ध हैं । इसके छह प्रकार के अर्थ हैं अर्थात्—भावार्थ—वाच्यार्थ—सम्प्रदायार्थ लौकिकार्थ—रहस्यार्थ और तत्त्वार्थ ये छहों अर्थ 'नित्यषोर्डशिकार्णव' ग्रन्थों में बताये गये हैं । इसी भाँति 'वरिवस्या रहस्य' में इसके और भी अनेक अर्थ समझाये गये हैं । श्रुति में भी ये मन्त्र इस प्रकार से अर्थात् कहीं स्वरूपोच्चार, कहीं लक्षणा कहीं लक्षित लक्षण से और कहीं वर्ण के पृथक-पृथक अवयव दर्शाकर जान-बूझकर भ्रमात्मकता में डाले गये हैं । वस्तुतः यह मन्त्र अत्यन्त गोपनीय एवं महत्त्वपूर्ण है ।

"एषा आत्मशक्तिः, एषा विश्वमोहिनी पाशांकुश धनुर्बाण धरा ।
एषा श्री महाविद्या । य एवं वेद स शोकं तरति, स शोकं तरति ।"

ये परमात्मा की शक्ति हैं । ये विश्व मोहिनी हैं । पाश, अंकुश धनुष और वाण धारण करने वाली हैं । ये श्री महाविद्या है जो ऐसा जानता है वह शोक को पार कर जाता है ।

"नमस्ते अस्तु भगवति ! मातरस्मान् पाहि सर्वतः"

हे भगवति ! तुम्हें नमस्कार है । मातः ! सब प्रकार से हमारी रक्षा करो ।

"सैषाऽष्टौ वसवः, सैषैकादश रुद्राः । सैषा द्वादशादित्याः । सैषावि-श्वेदेवाः सोमपाः असोमपाश्च । सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः । सैषा सत्त्व रजस्तमांसि । सैषा ब्रह्म विष्णु रुद्र रूपिणी । सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः । सैषा ग्रह नक्षत्र ज्योतींषि । कला काष्ठादि-कालरूपिणी । तामहं प्रणौमि नित्यम् ।"

मन्त्र दृष्टा ऋषि कहते हैं— ये ही आठों बसु हैं । ये ही एकादश रुद्र हैं । ये ही द्वादश आदित्य (सूर्य) हैं । ये ही सोमपान करने वाले एवं सोमपान न करने वाले विश्वेदेव हैं । ये ही यातुधान (एक प्रकार के राक्षस) असुर-राक्षस-पिशाच-यक्ष और सिद्धि हैं । ये ही सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण हैं । ये ही ब्रह्म विष्णु, रुद्र रूपिणी हैं । ये ही प्रजापति इन्द्रमनु हैं । ये ही ग्रह, नक्षत्र और तारागण हैं । ये ही कला काष्ठादि काल रुपिणी हैं ऐसी देवी को मैं नित्य प्रणाम करता हूं ।

पापापहारिणीं देवीं भुक्ति मुक्ति प्रदायिनीम् ।
अनन्ता विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां शिवाम् ।।

पाप नाश करने वाली, भोग मोक्ष प्रदान करने वाली अनन्ता (अन्त रहिता) विजया निर्दोष शरण लेने योग्य कल्याण कारिणी एवं मङ्गल स्वरूपा देवी को हम नित्य प्रणाम करते हैं—

देवी प्रणव

वियदीकार संयुक्तं वीति होत्र समन्वितम् ।
अर्द्धेन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थ साधकम् ।।

जिस प्रकार से मन्त्रों में देव प्रणव (ॐ कार) का महत्त्व है उसी प्रकार देवी प्रणव भी है ।

वियत् (आकाश)—ह
ईकार संयुक्त—ई
वीति होत्र (अग्नि)—र
अर्द्धेन्दुलसितं —ँ(चन्द्र बिन्दु)

अर्थात् "ह्रीं" देवी प्रणव या देवी का बीज मन्त्र है। इस प्रकार इस एकाक्षर ब्रह्म का ऐसे यति ध्यान करते हैं जिनका चित्त शुद्ध हैं, निरतिशयानन्द-पूर्ण है और जो ज्ञान के सागर हैं। ऊँकार के समान ही यह देवी प्रणव भी व्यापक अर्थों से भरा हुआ है। संक्षेप में इसका अर्थ-इच्छा-ज्ञान-क्रियाधार अद्वैत-अखण्ड सच्चिदानन्द समरसीभूत शिवशक्ति स्फुरण हैं—

वाङ्माया ब्रह्म सूस्तस्मात् पष्ठंवक्त्र समन्वितम् ।
सूर्योऽवाम श्रोत्र विन्दु संयुक्तष्टात्त् तीयकः ।
नारायणेन सं मिश्रो वायुश्चाधर युक् ततः ।
विच्चे नवार्णकोऽर्णः स्यान्महदानन्द दायकः ।।

अर्थात् वाङ्०=वाणी (ऐं) माया (ह्रीं) ब्रह्म सूः=काम (क्लीं) तत्पश्चात् षष्ठं वक्त्र समन्वितम्=वर्ण माला का छठा अक्षर आकार युक्त (चा) सूर्य (म) अवामश्रोत्र=दक्षिण कर्ण (उ) और विन्दु अर्थात् अनुस्वार से युक्त (मुं) टात्तृतीयकः अर्थात् टवर्ग का तीसरा अक्षर (ड) नारायणेन सम्मिश्र अर्थात् आकार से मिला हुआ (डा) वायु (य) वही अक्षर अधर ऐ से युक्त अर्थात् (यै) और विच्चे यह नवार्ण मन्त्र (ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे) उपासकों को आनन्द और मोक्ष का देने वाला है।

नवार्ण मन्त्र का अर्थ :—

हे चित् स्वरूपिणी महासरस्वति ! हे सद्रूपिणी महालक्ष्मि ! हे आनन्द रूपिणी महाकालि ! ब्रह्म विद्या पाने के लिये हम सब तुम्हारा ध्यान करते हैं। हे महाकाली-महालक्ष्मी व महासरस्वती रूपिणी चण्डिके ! तुम्हें नमस्कार है। श्री विद्या रूपी रस्सी की सदृढ़ गाँठ को खोलकर हमें मुक्त करो।

श्री यन्त्र की निर्माण-विधि

कुलाचार, समयाचार, सम्प्रदाय तथा आचार्य-भेद से श्री यन्त्र-लेखन के नाना प्रकार आगम-शास्त्रों में तथा साधकों में उपलब्ध होते हैं। श्रीयन्त्र विन्दु, त्रिकोण, अष्टार, अन्तर्दशार, बहिर्दशार, चतुर्दशार, अष्टदलपद्म, षोडश-दल पद्म और चतुरस्र इन नव चक्रों से बनता है—

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि ।
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नरभिरपि मूलप्रकृतिभिः ।

चतुश्चत्वारिंशद्व सुदलकलास्रत्रिवलय—
त्रिरेखाभिः सार्धं तव शरणकोणाः परिणताः ।।

कोई-कोई आचार्य षोऽशदलपद्म के अनन्तर वृत्तत्रय को भी अतिरिक्त चक्र मानते हैं—

विन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्म—
मन्वस्रनागदलसंयुतषोडशारम् ।
वृत्तत्रयञ्च धरणीसदनत्रयञ्च
श्री चक्रराजमुदितं परदेवतायाः ।।

उनके मत से विन्दु सर्वव्यापक चक्र है, अतः वे उसकी गणना नव चक्र में नहीं करते। बहुत से आचार्य तथा आधुनिक साधक चतुर्दशार के अनन्तर एक मर्यादा-वृत्त और अष्टदलकर्णिका के लिये एक वृत्त तथा अष्टदल के बाद भी षोडशदलकर्णिका, तदनन्तर मर्यादा-वृत्त-इस प्रकार वृत्तत्रय वनाते हैं। कोई-कोई मर्यादा-वृत्त न देकर केवल कर्णिका-वृत्त ही देते हैं और षोडशदल के अनन्तर अतिरिक्त वृत्तत्रय देते हैं। कुछ उपासक वृत्त देते ही नहीं। इसी प्रकार का मतभेद चतुरस्र के विषय में भी पाया जाता है। कोई एक रेखात्मक चार द्वारयुक्त चतुरस्र मानते हैं; कोई तत्तद् दिशाओं में विभिन्न संख्याओं से दो द्वारयुक्त चतुरस्र लिखते हैं। कोई-कोई चार रेखाओं का चतु-र्द्वार तथा द्वादश-द्वार भी लिखते हैं। अधिकतर त्रिरेखात्मक चतुर्द्वारयुक्त चतुरस्र ही पाया जाता है। अस्तु, विन्दु से चतुर्दशार तक ही प्रधान यन्त्र माना जाता है, क्योंकि यथार्थ श्रीयन्त्र शिवशक्ति का सम्पुटस्वरूप है—

चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः ।
नवचक्रैश्च संसिद्धं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः ।।

चतुर्दशार तक नवों चक्रों का अन्तर्भाव है। इनमें त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार, बहिर्दशार और चतुरस्र—ये पाँच शक्ति-चक्र हैं।

त्रिकोणमष्टकोणञ्च दशकोणद्वयं तथा ।
चतुर्दशारञ्चैतानि शक्तिचक्राणि पञ्च च ।।

और विन्दु, अष्टदल, षोडशदल और चतुरस्र ये चार शिवचक्र उन पाँचों के अन्तर्भूत हैं।

विन्दुश्चाष्टदलं पद्मं पद्मं षोडशपत्रकम् ।
चतुरस्रञ्च चत्वारि शिवचक्राण्यनुक्रमात् ।।

अर्थात् त्रिकोण में विन्दु, अष्टार में अष्टदल, दोनों दशार में षोडशार तथा चतुर्दशार में चतुरस्त्र अन्तभूर्ज हैं।

त्रिकोण वैन्दवं श्लिष्टमष्टारेऽष्टदलाम्बुजम् ।
दशारयोः षोडशारं भूगृह भुवनास्त्रके ॥

इस प्रकार इसमें शिव-शक्ति का पारम्परिक अविनाभाव रूप सम्मिश्रण है।

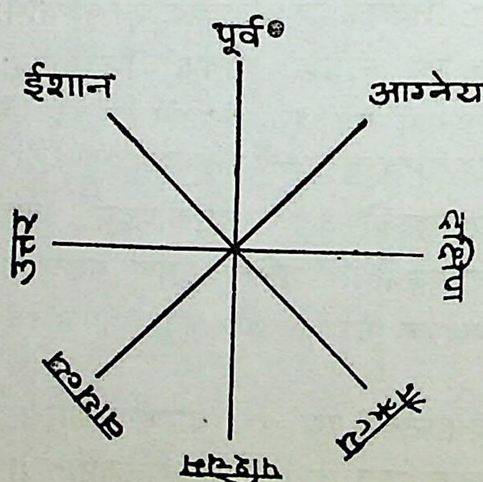
शैवानामपि शाक्तानाञ्चक्राणाञ्च परस्परम् ।
अविनाभाव सम्बन्धं यो जानाति स चक्रवित् ॥

इस अविनाभाव को जानने वाला ही चक्रज्ञ कहलाता है। भैरव यामल में भी लिखा है—

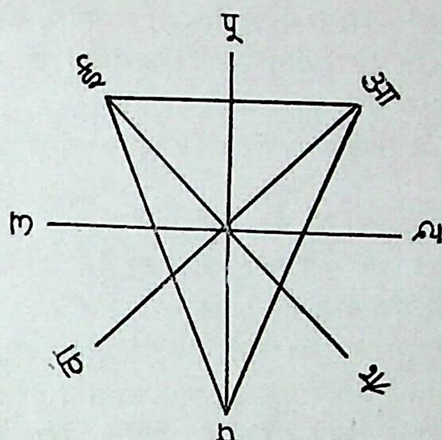
न शिवेन विना शक्तिः शिवोऽपि न तया विना।

इससे स्पष्ट है कि शिव-शक्ति का पृथक् रहना संङ्गत भी नहीं है। अतः शिवचक्रों को चतुर्दशार के बाहर लिखना केवल शिष्य-बुद्धि-विकास के लिये है। इसलिये चतुर्दशार तक ही प्रधान यन्त्र की सीमा है, यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है।

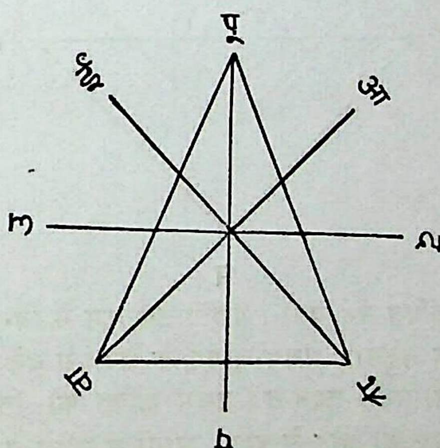
अब वामकेश्वर तन्त्र के आधार पर जो प्रायः सर्वत्र प्रचलित है, लेखन-प्रकार का दिग्दर्शन कराने के लिये सर्वप्रथम तदुपयोगिनी परिभाषाओं का उल्लेख किया जाता है। दिशा—'यदाशाभिमुखो मन्त्री' के अनुसार जिस दिशा की ओर मुँह करके साधक यन्त्र लिखे उसे पूर्व समझना चाहिए और शेष दिशाओं की कल्पना भी उसी से कर लेनी चाहिए। जैसे—



शक्ति—ईशान से अग्निकोण तक एक सीधी रेखा खींचकर दोनों कोणों से दो आड़ी रेखाएँ खींचकर पश्चिम में जोड़ दें। इससे जो अपने सम्मुख अधोमुख त्रिकोण बनेगा वह शक्ति त्रिकोण कहलाता है। इसी को शक्ति, पार्वती, योनि आदि शब्दों से व्यक्त किया जाता है। जैसे—



शिव—वायव्य से नैऋत्यकोण तक एक सीधी रेखा खींचकर इन दोन कोणों से दो रेखाएँ, ऊपर की ओर ले जाकर पूर्व दिशा में मिला देने से जो ऊर्ध्वमुखत्रिकोण बनता है उसे शिव या वह्नि अथवा इनके पर्याय महेश्वर, अग्नि आदि शब्दों से व्यक्त किया जाता है। जैसे—



इस प्रकार शक्ति के तीन कोण, ईशान, आग्नेय और पश्चिम तथा शिव के तीन कोण वायव्य नैऋत्य और पूर्वकोण के नाम से विख्यात हैं।

पार्श्वरेखा—वाम और दक्षिण आड़ी रेखाएँ पार्श्व रेखा कहलाती हैं। कहीं-कहीं इनको ऊर्ध्व और अधोरेखा भी कहते हैं।

तिर्यक रेखा—ईशान से आग्नेय तक और वायव्य से नैर्ऋत्य तक खींची हुई रेखाएँ तिर्यक् रेखाएँ कहलाती हैं। इन्हें पूर्व-रेखा और पश्चिम-रेखा भी कहते हैं।

भेदन—एक रेखा के ऊपर दूसरी रेखा का आ जाना 'भेदन' कहलाता है।

सन्धि—भेदन करने वाली दोनों रेखाओं के संयोग को 'सन्धि' कहते हैं।

मर्म—भेदन करने वाली तीन रेखाओं के संयोग को 'मर्म' कहते हैं।

ग्रन्थि—मर्म और सन्धि को 'ग्रन्थि' कहते हैं।

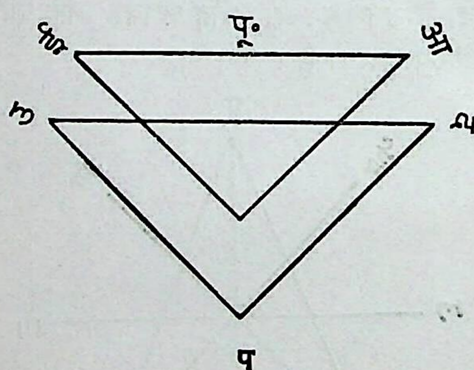
डमरू—शक्ति के पश्चिम-कोण तथा वह्नि के पूर्व-कोण के मिलने से बनता है।

वृत्त—चन्द्राकार रेखा क 'वृत्त' कहते हैं।

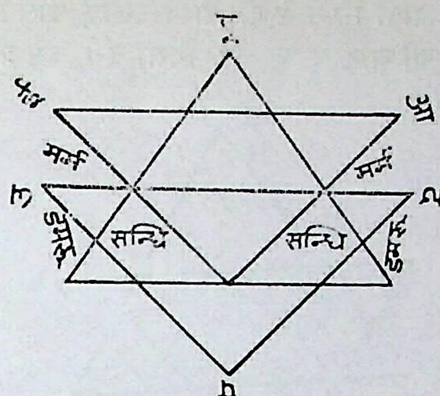
परिवेष—चतुरस्र रेखा को 'परिवेष' कहते हैं।

भूपुर—त्रिरेखात्मक वृत्त को 'भूपुर' कहते हैं।

यहाँ तक परिभाषा-प्रकरण हुआ, अब निर्माण-विधि प्रारम्भ की जाती है। सर्व प्रथम शक्ति-त्रिकोण बनाकर उसको मध्य-भाग में उत्तर से दक्षिण को ओर एक तिर्यक्-रेखा से भेदन करे। इस तिर्यक् रेखा के दोनों सिरों से दो पार्श्व-रेखाएँ खींचकर प्रथम शक्ति के पश्चिम-कोण के पश्चिम की ओर मला दें।

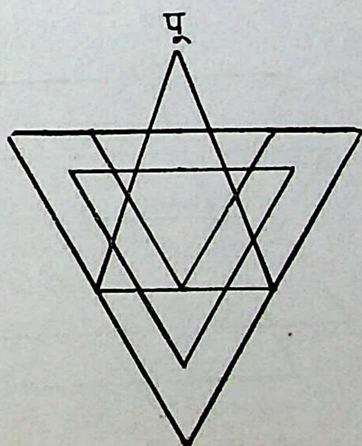


यह दूसरी शक्ति बन गयी। यद्यपि इस क्रम में बिन्दु लेखन नहीं आया तथापि पूजा क्रम के अनुसार प्रथम शक्ति के भेदन से बने हुए त्रिकोण के मध्य में बिन्दु रख देना चाहिये। तदनन्तर प्रथम शक्ति की तिर्यक रेखा के मध्य-भाग से कुछ ऊपर पूर्व को ओर से दोनों भागों में सन्धि तथा मर्म बनाती हुई दो पार्श्व रेखाएँ खींचे। इसी प्रकार प्रथम शक्ति के पश्चिम कोण को पश्चिम ओर से स्पर्श करती हुई वायव्य से नैर्ऋत्य की ओर एक तिर्यक रेखा खींचें और उन पार्श्व रेखाओं को इसके दोनों सिरों में जोड़ दें। यह प्रथम वह्नि बन गया।



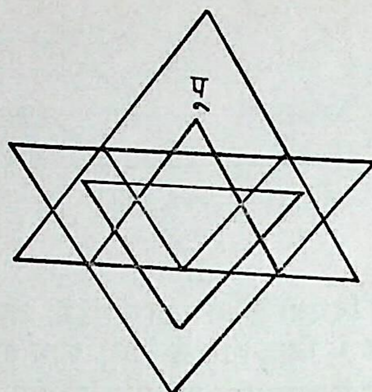
इस प्रकार आठों दिशओं में आठ त्रिकोंणों से अष्टार और मध्य में एक त्रिकोण और उसके मध्य में बिन्दु होने से बिन्दु, कोण तथा अष्टार तीन यन्त्र बन गए। इन तीन यन्त्रों से बना हुआ यह चक्र 'नवयोनि चक्र' के नाम से भी विख्यात है। इसमें नौ त्रिकोण, छ: सन्धि, दो मर्म और दो डमरू हैं। प्रथम शक्ति की वाम एवं दक्षिण रेखाओं से वह्नि की पार्श्व रेखाओं का दोनों दिशाओं में संयोग होने से पुन: द्वितीय शक्ति की तिर्यक् रेखा के द्वारा भेदन होने से उत्तर-दक्षिण मर्म बन गये। इसी प्रकार सन्धि और डमरू की प्रक्रिया समझानी चाहिए।

अब अन्तर्दशार की विधि बतलायी जाती है। उपरोक्त नवयोन्यात्मक चक्र में पहली शक्ति की तिर्यक् रेखा को दोनों सिरों की ओर कुछ बढ़ावें और उस बढ़ी हुई रेखा के दोनों सिरों से दो पार्श्व रेखा दूसरी शक्ति के पश्चिम कोण से कुछ पश्चिम में जोड़ दें। यह तीसरी शक्ति बन गयी। इस तीसरी शक्ति के भीतर पूर्व त्रिकोण को छोड़कर सारा यन्त्र आ जाता है। जैसे—

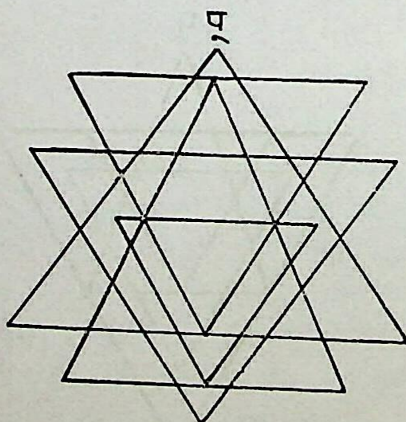


अब प्रथम वह्नि की तिर्यकरेखा को उसी प्रकार दोनों ओर बढ़ायें और

उस बढ़ी हुई रेखा के दोनों सिरों से दो पार्श्व-रेखाएँ खींचकर प्रथम वह्नि के पूर्व कोण के कुछ पूर्व की ओर ले जाकर मिला दें। इस प्रकार दूसरा वह्नि त्रिकोण बन गया जैसे—

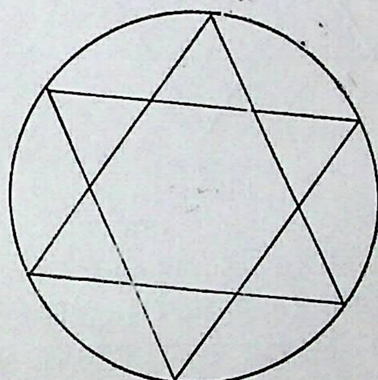


इस चक्र में छः कोण और बढ़ गये, तीसरी शक्ति और दूसरे वह्नि के संयोग से दोनों पार्श्वों में दो डमरू बन गये। इसी प्रकार सन्धि और मर्म आदि भी समझ लेने चाहिए। पुनः प्रथम शक्ति की पार्श्व रेखाओं को क्रमशः ईशान और आग्नेय कोण में ऊपर प्रथम वह्नि के पूर्व कोण तक बढ़ाकर प्रथम वह्नि के पूर्व कोण को स्पर्श करती हुई तिर्यक-रेखा से उक्त पार्श्व-रेखाओं के सिरों को जोड़ दें। इसी प्रकार प्रथम वह्नि की दोनों पार्श्व-रेखाओं को वायव्य तथा नैर्ऋत्य कोण में द्वितीय शक्ति के पश्चिम कोण तक बढ़ाकर इसी कोण को स्पर्श करती हुई तिर्यक् रेखा से बढ़ी हुई पार्श्व रेखाओं के सिरों को जोड़ दें। इस प्रकार चार कोण और बढ़ जाने से अन्तर्दशार बन जाता है। जैसे—



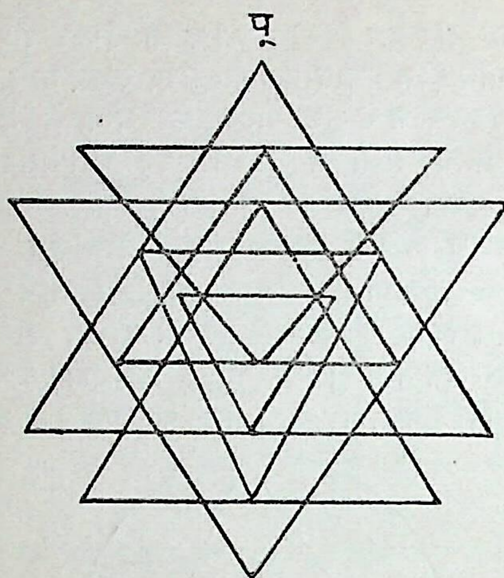
अब बहिर्दशार की विधि लिखते हैं—प्रथम वह्नि और द्वितीय वह्नि की

मध्यवर्तिनी आद्य-शक्ति की पूर्व-दिशा में स्थित तिर्यक् रेखा के दोनों कोणों को अन्तर्दशार के द्वितीय और दशम कोण को) क्रमशः ईशान और आग्नेय की ओर बढ़ाकर ईशान-आग्नेय कोण बनाती हुई दो पार्श्व रेखाएँ नीचे की ओर खींचकर तृतीय शक्ति के पश्चिम कोण से कुछ पश्चिम को ओर ले जाकर मिला दे। यह बहिर्दशार बनाने वाली चतुर्थ शक्ति बन गयी। तदनन्दर प्रथम वह्नि की पश्चिम रेखा के दोनों कोणों को (अर्थात् अन्तर्दशार के पाँचवें और सातवें कोण को) उत्तर-दक्षिण की ओर बढ़ाकर, उत्तर-दक्षिण कोण बनाती हुई उसके दोनों सिरों से दो पार्श्व रेखाएँ चतुर्थ शक्ति की दोनों पार्श्व रेखाओं को भेदन करती हुई द्वितीय वह्नि के पूर्व-कोण से पूर्व की ओर ले जाकर मिला दें। यह बहिर्दशार का घटक तृतीय वह्नि बन गया। इस प्रकार अन्तर्दशार के ऊपर ऐसा षट्कोण बन गया। तदनन्तर आद्य शक्ति की वाम और दक्षिण रेखाओं को

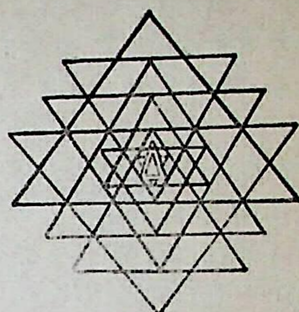


ईशान और अग्निकोण की ओर द्वितीय वह्नि के पूर्व कोण के बराबर तक बढ़ा कर उनके सिरों को द्वितीय वह्नि के पूर्वकोण को स्पर्श करती हुई तिर्यक् रेखा से जोड़ दें तथा आद्य वह्नि को दोनों पार्श्व रेखाओं को क्रमशः नीचे वायव्य-नैर्ऋत्य कोण की ओर तृतीय शक्ति के पश्चिम-कोण के बराबर तक बढ़ाकर उक्त कोण को स्पर्श करती हुई एक तिर्यक् रेखा खींचकर उसके द्वारा उक्त पार्श्व-रेखाओं के सिरों को जोड़ दे। इस प्रकार बहिर्दशार बन गया। जैसे अगले पेज पर दिखाया।

अब चतुर्दशार लिखने की विधि बतलायी जाती है। चतुर्थ शक्ति की पूर्व दिशा में स्थित तिर्यक् रेखा (अर्थात् बहिर्दशार के तीसरे और नवम कोण को) क्रमशः उत्तर-दक्षिण की ओर बढ़ाकर उस बढ़ी हुई रेखा के दोनों सिरों से दो पार्श्व-रेखाएँ नीचे की ओर खींचकर चतुर्थ शक्ति के पश्चिम कोण से पश्चिम में ले जाकर मिला दे। यह चतुर्दशार बनाने वाली पञ्चम शक्ति बन गयी। इसी प्रकार तृतीय वह्नि की पश्चिम दिशा में स्थित तिर्यक् रेखा के दोनों कोणों (अर्थात् बहिर्दशार के चौथे, आठवें कोणों) को क्रमशः वायव्य-नैर्ऋत्य



की ओर बढ़ाकर बढ़ी हुई रेखा के दोनों अग्रकोणों से पूर्व की ओर दो पार्श्व रेखाएँ पञ्चम शक्ति की पार्श्व-रेखाओं को भेदन करती हुई खींचकर तृतीय वह्नि के पूर्व-कोण में ले जाकर मिला दें। यह चतुर्थ वह्नि बन गया। इस पंचम शक्ति और चतुर्थ वह्नि के योग से चतुर्दशार का सम्पादक षट्कोण बन गया। तदनन्तर चतुर्थ शक्ति की पार्श्व रेखाओं को क्रमशः ईशान-आग्नेय की ओर बढ़ावे और इसी प्रकार आद्य-शक्ति की पूर्व-रेखा के दोनों सिरों को क्रमशः ईशान-आग्नेय की ओर बढ़ाकर चतुर्थ शक्ति की पार्श्व-रेखाओं के सिरों से जोड़ दे। पुनः आद्यशक्ति की दोनों पार्श्व रेखाओं को यहाँ तक बढ़ावे कि वे चतुर्थ वह्नि की पार्श्व-रेखाओं को भेदन करती हुई तृतीय वह्नि के पूर्व कोण के बराबर पहुंच जाएँ। फिर उक्त कोण को स्पर्श करती हुई एक पूर्व-रेखा खींचकर उससे इन पार्श्व-रेखाओं के सिरों को जोड़ दे। इस प्रकार चक्र के पूर्व भाग में चार कोण और बढ़ जाते हैं। तदनन्तर तृतीय वह्नि की पार्श्व रेखाओं को क्रमशः वायव्य-नैर्ऋत्य की ओर बढ़ावे और आद्यवह्नि की पश्चिम रेखा के दोनों कोणों को क्रमशः वायव्य-नैऋत्य की ओर बढ़ाकर उक्त पार्श्व-रेखाओं को इस रेखा से मिला दे। इसी प्रकार आद्य-वह्नि की पार्श्व रेखाओं को क्रमशः वायव्य-नैऋत्य की ओर चतुर्थ शक्ति के पश्चिम कोण के बराबर तक बढ़ावे और इस कोण को स्पर्श करती हुई एक पश्चिम रेखा खींच कर उससे उक्त रेखाओं के सिरों को मिल दे। इस प्रकार चतुर्दशार बन जाता है। जैसे अगले पेज पर दिखाया है।



अब इसके बाह्य भाग में शिव-चक्र-लेखन की विधि लिखते हैं। पूर्व लिखे अनुसार मर्यादा-वृत्त और कर्णिकवत्त बनाकर अथवा न बनाकर इस सम्पूर्ण चक्र को सोलह भागों में विभाजित करे और फिर एक-एक के अन्तर से अष्ट-दल कमल बनावे। तदनन्तर मतान्तर से कर्णिकावृत्त बनाकर इसके बत्तीस भाग करके एक-एक भाग के अन्तर से षोडश-दल-कमल बनावे। इसके पश्चात् मतान्तर से मर्यादा वृत्त या वृत्तत्रय देकर भूपुर के लिए चार द्वार सहित या मतभेद से बिना द्वार एक रेखा, तीन रेखाया चार रेखा खींचें। इस प्रकार सम्पूर्ण श्रीयन्त्र बन जाता है।

उपर्युक्त लेखन विधि को कोई-कोई आचार्य सृष्टि क्रम का लेखन कहते हैं। समयाचार-मतवाले सृष्टि क्रम से लिखित श्रीयन्त्र को पूज्य मानते हैं। इससे ज्ञात होता है कि कुलाचार में लिखने की विधि संहार-क्रम से ही है। इसका उल्लेख श्रीभगवच्छङ्कराचार्यप्रणीत सौन्दर्यलहरी के ग्यारहवें श्लोक के व्याख्यान में श्री लक्ष्मीधर ने किया है। संहार-क्रम के अनुसार वृत्त से प्रारम्भ करके बिन्दु पर समाप्त किया जाता है। परन्तु जिस क्रम का संकेत श्रीलक्ष्मीधर ने किया है तथा जो क्रम इस लेख में वामकेश्वरतन्त्र के अनुसार दिखलाया गया है–इन दोनों में प्रथम त्रिकोण का नियत परिमाण ज्ञात न होने से मर्म-सन्धि का ठीक-ठीक निर्माण नहीं हो सकता। जिनका यथोचित समावेश होना परमावश्यक है। इसमें व्यक्तिक्रम होने से प्रायश्चित लिखसदू है। इसलिये रा प्रकार जिसे संहार-चक्र भी कहते हैं, सप्रमाण साधकों की सुविधा के लिए लिखा जाता है। आचार्यों का मत है कि समयाचारी सृष्टिक्रम तथा कुलाचारो संहार क्रम दोनों में लिखित का ही पूजन करना चाहिए। उपासक अपने पूजासन के सम्मुख पूर्व की ओर आवश्यक पात्रादि के स्थापन के लिये हाथ भर भूमि छोड़कर हस्तप्रमाण या यथेच्छ वेदी बनावे अथवा स्वर्णादिनिर्मित पट्ट रखकर उसमें श्रीयन्त्र की रचना करें। वेदी का मध्यभाग समतल बनाकर ठीक मध्य में पूर्व से पश्चिम की ओर एक सीधी आड़ी रेखा (ब्रह्मसूत्र) बनावे। इस सूत्र को बहत्तर भागों में बाँट दे। पूर्व और पश्चिम दोनों ओर एक-एक किनारे क्रमश: साढ़े बारह-बारह अंश (भाग) छोड़कर ऐसा वृत्त खींचे जिसके मध्य में पूर्व से पश्चिम दोनों ओर साढ़े बाईस-बाईस अंश हों। अर्थात् मध्य भाग कुल मिलाकर पैंतालीस अंश हो। इस वृत्त के बाहरी भाग में दोनों ओर साढ़े चार-चार अंशों में कर्णिकासहित अष्टदल तथा पाँच-पाँच अंशों में कर्णिका सहित षोडशदल एवं अवशिष्ट चार-चार अंशों में मर्यादावृत्त देकर चतुरस्र (भूपुर) बनावे।

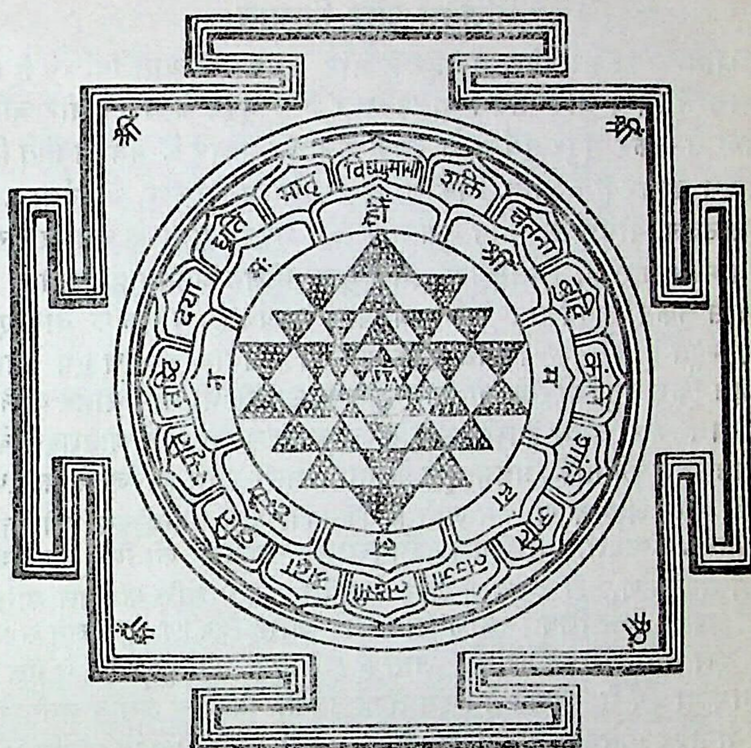
अब वृत्त के मध्य भाग में बिंदु से लेकर चतुर्दशार तक बनाने के लिये इस वृत्त के बीच में भी एक ब्रह्मसूत्र देकर उसे अड़तालीस भागों में बांट दे। इस ब्रह्मसूत्र के भागों के आधार पर पूर्व से पश्चिम की ओर क्रमशः छः-छः, पाँच-पाँच, तीन-तीन, तीन-तीन, छः-छः भागों के अन्तर से नौ तिर्यक् रेखाएँ खींचे। इससे छठें भाग में मर्यादावृत्त होगा। इन सब रेखाओं का सामान आयाम अभीष्ट नहीं है, इसलिए विभिन्न मान से विभिन्न रेखाओं के दोनों सिरों को बराबर मिटा दे। मिटाने का मान इस प्रकार है—प्रथम, नवम सूत्र के दोनों ओर पाँच-पाँच अंश मिटावे; तीसरी सातवीं रेखा को वृत्त तक ही रहने दे तथा चौथी, छठी रेखा को दोनों ओर सोलह-सोलह अंश मिटावे एवं पंचम रेखा को दोनों ओर से अठारह-अठारह अंश मिटावे।

अब उपर्युक्त रेखाओं के परस्पर संयोग से त्रिकोण बनाने की विधि लिखते हैं। इस क्रम में रेखाओं की गणना पश्चिम की ओर से करनी चाहिए अर्थात् बनाने में जो रेखा नवम थी उसे त्रिकोण-विधि और मार्जन-विधि में प्रथम, तथा प्रथम को नवम समझनी चाहिए। तृतीय रेखा के वृत्त से सटे हुए दोनों कोणों से पूर्व की ओर पार्श्व रेखाएँ खींचकर वृत्त तक पहुंचे हुए ब्रह्मसूत्र में उन्हें त्रिकोण बनाता हुआ मिला दे। पुनः सप्तम सूत्र के वृत्त से लगे हुये दोनों कोणों से दो पार्श्व-रेखाएँ पश्चिम की ओर ले जाकर ब्रह्मसूत्र से मिलावे। इससे षट्कोण बन जाएगा।

पुनः प्रथम पश्चिम रेखा के मध्य से दो पार्श्व रेखाएँ खींचकर अष्टम रेखा के दोनों अग्रकोणों में जोड़ दे, इस प्रकार इन दोनों रेखाओं से पूर्व परिचित षट्कोण के पश्चिम भाग में पूर्व की ओर दो मर्मस्थान बन जाएँगे। तदनन्तर नवम रेखा के मध्य से दो पार्श्व रेखाएँ पश्चिम की ओर खींचकर द्वितीय रेखा के दोनों कोणों से मिला दे। इससे षट्कोण के पश्चिम भाग में दो मर्म और बन जाएँगे।

पुनः नवम रेखा के दोनों अग्रकोणों से दो पार्श्व रेखाएँ पश्चिम की ओर ले जाकर चतुर्थ रेखा के मध्य में मिला दे। इन दोनों रेखाओं को खींचते समय ध्यान रखना चाहिए कि सप्तम, अष्टम तिर्यकरेखा के सन्धि स्थानों का भेदन होने से चार मर्म-स्थान बनने चाहिये। पुनः सप्तम सूत्र के मध्य से पश्चिम की ओर दोनों पार्श्व में दो-दो मर्म बनाती हुई दो आड़ी रेखाएँ खींचकर प्रथम पश्चिम रेखा के दोनों कोणों से जोड़ दें। इससे भी चार मर्म और बन जाएँगे। पुनः अष्टम तिर्यक्रेखा के मध्य से दो पार्श्व रेखाएँ पश्चिम की ओर खींचकर चतुर्थ तिर्यक्रेखा के दोनों कोणों से मिला दे। फिर छठी तिर्यक् रेखा के दोनों अग्र भागों से दो पार्श्व रेखाएँ पश्चिम की ओर द्वितीय रेखा के मध्य में त्रिकोण के रूप में मिला दे तथा पंचम तियक् रेखा के दोनों अग्रकोणों से दो पार्श्व रेखायें पश्चिम की ओर खींचकर सप्तम तिर्यक रेखा के मध्य में त्रिकोण के रूप में

मिलावे। अन्त में ब्रह्मसूत्र को मिटा दे। इससे चतुर्दशारपर्यन्त श्रीयन्त्र बन जायेगा। तदनन्तर अष्टदल आदि तीनों चक्रों का पूर्ववत् निर्माण करे।



श्री यन्त्र की उपासना

श्री ललिताम्बा के अनन्य उपासक एवं महान तन्त्रविद् श्रीकृष्ण प्रसादजी भट्टराई साधारण दर्शनाचार्य (काठमाण्डू, नेपाल) का अभिमत साभार प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष है कि श्री यन्त्र के उपासकों का इससे महान हित होगा।

श्री यन्त्र

श्री विद्या के यन्त्र को 'श्री यन्त्र' कहते हैं। इसमें जो 'श्री' शब्द आया है वह 'श्रीविद्या' का वाचक है और 'चक्र' शब्द यन्त्र स्वरूप चक्रस्वरूप यन्त्र का। केवल यही एक ऐसा यन्त्र है जो समस्त ब्रह्माण्ड का प्रतीक है। यह प्रणवस्वरूप शब्द ब्रह्म का भी प्रतीक है। यह परब्रह्मस्वरूपिणी आदि प्रकृतिमयी श्रीविद्या रूपा महात्रिपुरी सुन्दरी का आराधनास्थान है। यह उनका दिव्य धाम है, दिव्य रथ है। इसका सन्निवेश मनोहर है। इसमें समस्त देवताओं की आराधना और सभी प्रकार की उपासनाएँ होती हैं। इसमें सभी आम्नाओं का, सभी क्रमों का, सभी आचारों का, सभी विद्याओं का एव सभी तत्वों का समावेश होता है। इसमें

सभी वर्णों के, सभी आश्रमों के, सभी सम्प्रदायों के सभी प्रकार के अधिकारी उपासक रूप में प्रविष्ट हो सकते हैं। इसमें सभी के लिये अवकाश है।

सन्निवेश और विन्यास

श्रीयन्त्र का सन्निवेश मनोहर है और इसका विन्यास विचित्र है। इसके बीचोबीच में बिन्दु और सबसे बाहर भूपुर हैं: भूपुर के चारों ओर चार द्वार है। बिन्दु से लेकर भूपुर पर्यन्त के इसके कुल दस प्रकार के अवयव होते हैं। जो क्रमश: इस प्रकार हैं—बिन्दु, त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार, बहिर्दशार, चतुर्दशार, अष्टदल, षोडशदल तीन वृत्त और तीन भूपुर। पूजा के अवसर पर बिन्दु भी तीन माने जाते हैं, जिससे कि इसके कुल सोलह अवयव हो जाते हैं। इनमें त्रिकोण से लेकर चतुर्दशार पर्यन्त जो पाँच अवयव हैं, वे एक के बाद एक इस तरह अनुस्यूत होते हैं कि जिससे इनके अन्य कई अवान्तर कोण एवं रेखाएँ बन जाती हैं। फिर चतुर्दशार के जो कोण होते हैं, उनकी भी नोकें बाहर वाले अष्टदल के साथ मिली होती हैं और इसी तरह अष्टदल की नोकें षोडशदल के साथ और षोडशदल की नोकें प्रथम वृत्त के साथ मिली होती हैं, जिनके कारण और भी कई कोष्ठ और कोण बन जाते हैं, जिनको यहाँ 'स्पन्दीचक्र' भी कहते हैं। इनमें बिन्दु, अष्टदल, षोडशदल, त्रिवृत्त और चतुरस्र को शिव का अंश और त्रिकोण, अष्टकोण, दो दशकोण और चतुर्दशार को शक्ति का अंश माना गया है। इस प्रकार पाँच शिव त्रिकोण और चार शक्ति त्रिकोण के मिलने से परस्पर कटकर कुल तैंतालीस कोण बन जाते हैं। बाहर जो भूपुर हैं, वे एक प्रकार के प्राकार या दुर्ग से दीखते हैं। इस तरह इसका विन्यास अतीव मनोहर होता है और मनोहर होते हुए ही जटिल भी है। इसीलिये यह श्रीपुर अर्थात् श्रीविद्या का पुर भी कहा जाता है।

आगमों में इस चक्र का एक दिव्य द्वीप के रूप में वर्णन किया गया है। दिव्यनगर के रूप में इसका निरूपण हुआ है; क्योंकि कोशकारों ने चक्र शब्द का अर्थ नगर भी बताया है। रक्तवर्ण सुधासमुद्र से घिरा हुआ यह 'रत्नद्वीप' है। इसमें कल्पवृक्ष पारिजात से लेकर सभी प्रकार के फल-फूल और लता-वनस्पतियों से हरे-भरे दिव्य नन्दन-उद्यान के बीच में अनन्त योजन विस्तीर्ण रत्न प्राकार के भीतर अवस्थित इस पुर के मध्य में रत्नसिंहासन पर अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड-नायिका श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी बिराजमान हैं। यह पुर चक्राकार है। इसी का प्रतीक श्रीयन्त्र है। इसी चक्राकार रथ में बैठकर, सम्पूर्ण देव-देवी, योगिनी आदि अपनी विभूतियों के चक्र अर्थात् समूह से परिवृत होकर देवी ने भण्डासुर का संहार किया था। इस कथा से भी श्रीयन्त्र का चक्राकार द्वीप, पुर अथवा सर्वत: स्वविभूतिपरिवृत्त आदि शक्ति का ही प्रतीक होना सिद्ध होता है। इस चक्र का मध्यवर्ती बिन्दु शिव का और त्रिकोण शक्ति का स्थान है तथा रूप भी। फिर इन दोनों का समन्वय होने पर समरसीभाव से स्थित शिवशक्तिरूप साक्षात

परब्रह्म एवं उनकी चिद्रूपा आदि शक्ति के एकीभाव का प्रतीक यही बिन्दु होता है। इस तरह यह बिन्दु श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी का केन्द्र बिन्दु होता है और श्रीयन्त्र रूप पुर सभी देवताओं का आवास। कहने का तात्पर्य यह है कि वही महात्रिपुर सुन्दरी विभिन्न देवतारूप अपनी विभूतियों से इस पुर को व्याप्तकर इसके बीच में बैठती हैं; इसलिए यह श्रीयन्त्र उनका भी प्रतीक है फिर मेरुपृष्ठ के आकार में यह चक्र जब ऊपर को उठा हुआ ऊँचे आकार का होता है, तब यह समस्त ब्रह्माण्ड को सँभाले हुए सुमेरु पर्वत के प्रतीक रूप में खड़ा होता है और पुराणों में वर्णित सुमेरु पर अवस्थित सभी लोकों का इसमें समन्वय होता है। शास्त्र में 'मेरु' को नवार्ण रूप में कहा है और श्रीचक्र को 'मेरु' रूप माना है। यथा—

श्रीचक्रमपि देवेशि मेरुरूपं न संशयः ॥

(ज्ञानार्णव)

लकारात् पृथिवी देवी सशैलवनकानना ।
सकाराच्चन्द्रतारादि ग्रहराशिस्वरूपिणी ॥

(इत्यादि)

सम्प्रदायगत विशेषता

श्रीयन्त्र के मुख्य तीन सम्प्रदाय हैं। हयग्रीव-सम्प्रदाय, आनन्दभैरव सम्प्रदाय और दक्षिणा मूर्ति-सम्प्रदाय। इनमें हयग्रीव सम्प्रदाय में त्रिवृत्त नहीं होता, आनन्दभैरव-सम्प्रदाय में त्रिवृत्त तो होता है, किन्तु उसमें पूजा नहीं होती एवं दक्षिणामूर्ति सम्प्रदाय में श्रीयन्त्र में त्रिवृत्त भी होता है और उसमें पूजा भी होती है।

प्रकार और विस्तार

बनावट की दृष्टि से श्रीयन्त्र के कुल तीन प्रकार होते हैं—भूपृष्ठ, कच्छप ष्ठ और मेरुपृष्ठ। इनमें जो समतल होता है, उसको 'भूपृष्ठ; जो कछुए की पीठ की तरह कुछ उठा हुआ होता है उसको 'कच्छपपृष्ठ' और जो सुमेरुपर्वत की तरह अपने अनुपात में पूरा ऊपर तक उठा हुआ होता है उसको 'मेरुपृष्ठ' कहते हैं।

उपासना की दृष्टि से शास्त्र में इसके तीन प्रस्तार माने गये हैं—मेरु-प्रस्तार, कैलासप्रस्तार और भूप्रस्तार। इनका उपयोग एक तो यथाक्रम कामेश्वरी आदि नित्याओं और वशिन्यादि वाग्देवताओं के, संक्षोभणी आदि मुद्राओं के तथा अणिमादि सिद्धियों के तादात्म्य में होता है। दूसरा, सृष्टयादि-क्रममूल पूजा के लिये एवं भिन्न-भिन्न आश्रमों के लिये होता है, क्योंकि शास्त्र में मेरु प्रस्तार में संहारक्रम से पूजा न करके सृष्टिक्रम से करने को कहा है एवं संहारक्रम से पूजा कैलासप्रस्तार में और स्थितिक्रम से पूजा भूप्रस्तार में बतायी गयी है। यथा—

मेरुचक्रे तु संहारक्रमपूजा न विद्यते ।
सृष्टिक्रमेण देवेशि पूजनीयं प्रयत्नतः ।।
संहारपूजा कैलासप्रस्तारेऽत्र विधीयते ।
भूप्रस्तारे महेशानि स्थितिपूजा सदोत्तमा ।।

(श्री विद्यार्णव,)

इसी तरह गृहस्थ को स्थितिक्रम से, वानप्रस्थ और यति को संहारक्रम से ब्रह्मचारी को सृष्टिक्रम से और स्त्री तथा शूद्र को इष्टदेवतास्वरूप गुरू की आज्ञा के अनुसार पूजा करने को कहा गया है। यथा—

स्थितिक्रमो गृहस्थस्य संहारो वनिनो यतेः ।
ब्रह्मचारिण उत्पत्तिः स्त्रियः शूद्रस्य चेष्टतः ।।

तथा इसकी परिभाषा—

सृष्टिक्रमं मेरुचक्रं कैलासं चार्धमेरुकम् ।
संहाराख्यं महेशानि भूप्रस्तारं स्थितिक्रमम् ।।

निर्माण या रचना

श्रीयन्त्र स्फटिक आदिशिला, मरकत आदि मणि सुवर्ण आदि धातु प्रभृति में बारीकी से टाककर, खोदकर, समतल अथवा उभरा हुआ दोनों प्रकार का बनाया जा सकता है फिर ऐसे ही समतल मणि, शिला, धातु आदि में चन्दन कुंकुम रोचना आदि से लिखकर भी बनाया जा सकता है। उभरा-गहरा जो भी हो, पूजा के अवसर पर इसके ऊपर चन्दनादि द्वारा फिर से अपने सम्प्रदाय और क्रम के अनुसार रेखा भरनी चाहिए। यन्त्र लिखते समय उपासक को चाहिए कि वह अपने सम्प्रदाय-क्रम या कामना के अनुसार पूजा, जिस स्थल से आरम्भ करना हो, ठीक उसी स्थल से रेखा का उपक्रम करे और जहाँ पर जाकर पूजा का पर्यवसान करना हो, वहीं पर उसका उपसंहार करे; यदि चक्र की रेखाएँ खोदकर बनायी गयी और गहरी हों तो ऊपर कहे अनुसार उनमें चन्द आदि भरकर ही पूजा करनी चाहिए। यहाँ पर एक और बात ध्यान देने योग्य है कि पट, फलक, भित्ति आदि में श्रीं चक्र लिखकर पूजा करना वर्जित है।

स्वरूप

बिन्दु से लेकर भूपुरपर्यन्त श्री यन्त्र को तीन रूप में विभक्त किया है; इनमें भूपुर से अष्टदल तक को सृष्टि चक्र, चतुर्दशार से अन्तर्दशार तक को स्थिति चक्र और अष्टार से बिन्दु तक को संहार चक्र माना है। फिर इन तीनों चक्रों को 'त्रिपुर' भी कहते हैं। इसी त्रिपुर स्वरूप श्री चक्र की प्रधान नायिका होने के कारण इसकी अधिष्ठात्री आदि शक्ति 'श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी नाम

से प्रसिद्ध है; जिनका मुख्यस्थान बिन्दु है। बिन्दु इनका प्रतीक भी है, इनके स्वरूप का द्योतक भी है। जैसे अन्यत्र बिन्दु से ही सभी प्रकार की रेखाएँ और कोण आदि बनते हैं, इसी तरह यहाँ भी बिन्दु से ही श्री यन्त्र की समस्त रेखाएँ और कोण बनते हैं, जो वास्तव में सर्वदेवता स्वरूप हैं। और केन्द्र वर्ती प्रधान देवता के विविध विभूति स्वरूप हैं। इस चक्र में जो भूपुर वृत्त, त्रिकोण आदि हैं वे सब तीन-तीन के समूह रूप में हैं और सब यथायोग्य तीन गुण, तीन काल, तीन अवस्थाएँ, तीन लोक तथा तीन देवता आदि के स्वरूप के द्योतक हैं जहाँ त्रिकोण के तीन कोण जाग्रत- स्वप्न- सुषुप्ति तीन अवस्थाएँ होती हैं, वहाँ बिन्दु तुरीय अवस्था स्वरूप हो जाता है और यही बिन्दु तुरियातीत होकर एक रूप में आ जाता है। इस प्रकार यही वास्तविक तत्त्वस्वरूप है और इसी तत्त्व से समस्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, स्थिति और संहार होते हैं; जैसा कि कहा है—

तत्वाद् ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तत्वेन परिवर्धते।
तत्वे विलीयते देवि तत्वाद् ब्रह्माण्डनिर्णयः॥

(आगमकल्पद्रुम)

इस 'तत्व' का वही परब्रह्मस्वरूपिणी अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायिका महात्रिपुर सुन्दरी से तात्पर्य है। श्रीयन्त्र में जब इनका स्थान बिन्दु है और यह बिन्दु उनका प्रतीक भी है तथा स्वरूप भी तो यह श्रीचक्र उन्हीं से उत्पन्न विशाल ब्रह्माण्ड स्वरूप भी हो जाता है, अतएव श्रीयन्त्र में उपासना करते समय यह भावना की जाती है कि बिन्दु रूप में अवस्थित वही अद्वितीय चिच्छक्ति ही श्रीयन्त्र के समस्त आवरण देवताओं के रूप में अभिव्यक्ति हुई हैं।

ब्रह्माण्ड के प्रतीक रूप में श्रीयन्त्र

जैसे पिण्डरूप इस व्यष्टि शरीर को, जिसे पिण्ड ब्रह्माण्ड भी कहते हैं, (स्थूल) ब्रह्माण्ड का प्रतीक माना है, इसी तरह श्रीयन्त्र को समस्त ब्रह्माण्ड का प्रतीक माना है। जैसे ब्रह्माण्ड सृष्टि स्थिति-संहाररूप अवस्था त्रयात्मक है, वैसे ही यह देहरूप पिण्ड ब्रह्माण्ड भी उक्त अवस्था-त्रयात्मक है, अतएव यह पिण्ड-शरीर ब्रह्माण्ड का प्रतीक होता है, इसी तरह सृष्टि-स्थिति-संहार तीनों चक्रों से युक्त होने के कारण यह श्रीयन्त्र समस्त ब्रह्माण्ड का प्रतीक है। जैसे ब्रह्माण्ड में तीनों लोक हैं, तीनों गुण हैं और महत्तत्वादि सभी तत्व विद्यमान हैं, उसी तरह पिण्ड ब्रह्माण्ड में मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त उक्त सभी लोक सभी तत्व, सभी गुण और सभी अवस्थाएँ विद्यमान हैं। इसी तरह चक्र में भी भूपुर से लेकर बिन्दु पर्यन्त के अवयवों में यथायोग्य सभी लोक, सभी अवस्थाएँ सभी तत्व और शरीर के सभी चक्रों का और सभी धातुओं का समन्वय होने से यह पिण्ड ब्रह्माण्ड का भी प्रतीक माना गया है।

आगमों के अनुसार सौ ब्रह्माण्ड का एक 'विष्णवण्ड' होता है। इसी सौ तरह विष्णवण्ड का एक 'प्रकृत्यण्ड', सौ प्रकृत्यण्ड का एक 'मायाण्ड' और सौ 'मायाण्ड' का एक 'शक्त्यण्ड' माना गया है। इस प्रकार हमने ऊपर श्रीयन्त्र को जो बह्माण्ड का प्रतीक-स्वरूप कहा है, उसमें ब्रह्मान्ड का इसी 'शक्ति-अण्ड' से अभिप्राय है, अब इस प्रकार यह श्रीयन्त्र समस्त ब्रह्माण्ड का भी प्रतीक होता है और साथ ही अनन्त कोटि बह्माण्ड-नायिका श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी का भी।

इसी प्रकार यह प्रणवस्वरूप शब्द बह्म का भी प्रतीत होता है। प्रणव में जो मुख्य पाँच अवयव हैं—अ, उ, म, नाद और बिन्दु तथा जो चार अवस्था या रूप हैं—वैखरी, मध्यमा· पश्यन्ती और परा-इन सबका श्रीयन्त्र के सृष्टि-स्थिति संहार अनाख्याओं और भासारूप पाँच क्रमों में यथायोग्य समन्वय हो जाता है, जिस प्रकार इनका शरीर के स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत विशुद्ध और आज्ञा एवं मूलाधार में होता है। भेद इतना ही है कि प्रणवगत बिन्दु की अब्यक्त अवस्था का मूलाधार में और व्यक्त अवस्था का आज्ञा-चक्र में समन्वय होता है। इसी प्रकार प्रणव में जो छत्तीस कलाएँ या मात्राएँ हैं· उनमें से जो उनतीस हैं, वे त्रिवृत्त में हैं और वे ही त्रिवृत्त की कालरात्रि से लेकर हंसवती तक की मातृकाएँ होतो हैं वे ही पिण्ड-शरीर की गर्भावस्था, बाल्यावस्था आदि से लेकर निधन तक की एवं जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय तथा तुरीयातीत तक की अवस्थाएँ होती हैं। इस तरह बह्माण्ड पिण्ड-ब्रह्माण्ड एवं प्रणव आदि के प्रतीक रूप में श्रीयन्त्र को लिया जाता है, जिसका विस्तृत वर्णन आगमों तथा उपनिषदों में पाया जाता है।

ऊपर हमने भूपुर से बिन्दु तक को सृष्टि आदि तीन चक्रों में विभाजित कर उसमें ब्रह्माण्ड के सृष्टि, स्थिति, संहार रूप तीन अवस्थाओं का समन्वय होना बताया था, अब शरीरगत षट्चक्र के साथ समन्वय करने के लिये और श्री विद्या की उपासना के लिये इसमें कुल पाँच क्रम की कल्पना की जाती है। जैसे कि सृष्टिचक्र, स्थितिचक्र, संहार चक्र, अनाख्याचक्र और भासाचक्र, जिनमें भूपुरत्रिवृत्त, षोडशदल और अष्टदल मिलकर 'सृष्टिचक्र', चतुर्दशार, बहिर्दशार और अन्तर्दशार मिलकर 'स्थितिचक्र', अष्टार, त्रिकोण और बिन्दु मिलकर 'संहारचक्र' तथा इनकी समष्टि में द्वितीय बिन्दु तक में 'अनाख्या' और तृतीय बिन्दु तक में, भासा' होता है। इस प्रकार सृष्टि, स्थिति, संहार, अनाख्या और भासा— इन पाँचों को क्रमश: स्वाधिष्ठान, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा-इन पाँच में अन्तर्भूत मानते हैं। यह प्रक्रिया है, जिसको श्रीमत में 'श्रीकल्प' और 'श्रीक्रम भी कहते हैं पर कालीकल्प में सृष्टिचक्र मूलाधार में माना जाता है ऐसे तो श्री यन्त्र में मुख्य तीन कल्प हैं, पर इनमें ताराकल्प को दक्षिणाम्नाय में कालीक्रम से मिला देते हैं। ऐसा करने पर यहाँ मुख्य दो ही कल्प या क्रम रह जाते हैं, जो 'श्रीक्रम' और 'कालीक्रम' कहे गये हैं। इनमें भी काली को प्रधान मानने वाले

श्री (सुन्दरी) को नीचे रखते हैं और श्री (सुन्दरी) प्रधान मानने वाले काली को नीचे रखते हैं। इस प्रकार जब श्री को ऊपर रखा जाता है तो सामान्यत: मूलाधार से विशुद्ध तक 'कालीकल्प' होता है और आज्ञा चक्र से ब्रह्मरन्ध्र तक 'श्रीकल्प' होता है तथा जो स्वाधिष्ठान में सृष्टि मानते हैं, वे मूलाधार में विश्रान्ति मानते हैं। कभी-कभी मूलाधार से विशुद्ध तक सृष्टयादि पाँच क्रम और आज्ञा से ब्रह्मरन्ध्रपर्यंन्त फिर केवल भासा माना जाता है। इस प्रकार यहाँ नीचे के मूलाधार से व स्वाधिष्ठान से सृष्टि आदि को मानकर ऊपर के ब्रह्मरंध्रस्थानीय बिन्दु में जाकर संहार मानते हैं। यहां का जो यह 'संहार' शब्द है वह 'लय' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, न कि 'ध्वंस' या 'नाश' के अर्थ में। इस प्रकार किसी मत में जहाँ से सृष्टि होती है, वहीं आकर संहार अर्थात लय होता है। इसी प्रकार कोई-कोई बिन्दु में ही सृष्टि मानकर मूलाधार तक आकर फिर बिन्दु में ही पहुंचकर उसका उपसंहार करते हैं।

श्रीयन्त्र श्री विद्या के यन्त्र को कहते हैं। श्री विद्या क्या है ? और इसका अर्थ क्या होता है ? 'श्री विद्या' शब्द की अनेक व्युत्पत्तियाँ हो सकती हैं, जैसे कि—श्रीस्वरूपा विद्या, श्री और विद्या, श्री की अर्थात श्री विद्या की विद्या, श्री प्रदात्री विद्या और श्री प्राप्ति की विद्या इत्यादि।

यह तो यहाँ स्पष्ट ही है कि इस 'श्री विद्या' शब्द में दो भाग हैं—'श्री' ओर विद्या श्री शब्द का अर्थ भिन्न-भिन्न स्थलों पर प्रसङ्गानुसार लक्ष्मी, सरस्वती,सम्पद्, शोभा आदि भिन्न-भिन्न होने पर भी यहाँ इसका प्रमुख अर्थ होता है वही परम प्रकृति रूप आदि शक्ति, क्योंकि शास्त्र में इन्ही को 'श्री' कहा है।

'त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी'

(दुर्गा॰ १/७९)

'तुम्हीं श्री हो, तुम्हीं ईश्वरी हो।'

फिर 'श्री' शब्द की व्युत्पत्ति से भी यही अर्थ निकलता है, जैसा कि 'श्रियते सर्वेरिति श्री:।' क्योंकि 'श्री' शब्द 'श्रि' धातु से बनता है और 'श्रि' धातु का अर्थ होता हैं—'सेवा करना।' इसी तरह 'आङ्' उपसर्ग के योग में इसका अर्थ होता है—'आश्रय करना।' कभी-कभी बिना उपसर्ग के केवल धातु मात्र भी सामर्थ्य से उपसर्ग युक्त अर्थ का बोध कराते है। जैसा कि—'श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि' अर्थात लक्ष्मी निरन्तर यहाँ (व्रज में) आश्रय ग्रहण करती है।'

(श्रीमद्‌भागवत १०।३१।१)

इस प्रकार सभी से सेवित और सभी का आश्रय होने से भी 'श्री' शब्द से यहाँ पर वही 'आदिशक्ति' कही गयी हैं और यही आदिशक्ति सम्पूर्ण जगत् का आधार तथा आश्रय भी है जैसा किकहा है—

'आधारभूता जगतस्त्वमेका'

'सर्वाश्रयाखिलमिदं जगद्'

(दुर्गा० ११।४, ४।७)

'जगत् का आधारस्वरूप एक तुम्हीं हो। सबका आश्रय होकर (तुम्हीं) इस सारे जगत् को'—

और शास्त्र में इन्हीं को परम प्रकृति, आदि प्रकृति आदि कहा है—

'प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य।'

'परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या।'

इत्यादि। (दुर्गा० १।७८, ४।७)

अब प्रसिद्धि के आधार पर 'श्री' शब्द का अर्थ लक्ष्मी ही मानें तो भी इसका तात्पर्य यहाँ उसी आदि शक्ति से होता है, क्योंकि तन्त्र पुराण आदि में जिस प्रकार उनको 'श्री' कहा है, उसी प्रकार 'लक्ष्मी' भी कहा है। जैसा कि—

'या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः'

(दुर्गा० ४।५)

'जो तुम पुण्यात्माओं के घरों में स्वयं श्रीरूप हो।'

'सा श्री रुक्माम्बुजासना।'

'सुवर्णकमल में विराजमान श्री अर्थात् लक्ष्मी वही आदि शक्ति है।'

'श्रीः कैटभारिहृदयैक कृताधिवासा।'

'भगवान विष्णु के हृदय कमल में निवास करने वाली लक्ष्मी तुम्हीं हो।'

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।'

'जो देवी (आदिशक्ति) सब प्राणियों में लक्ष्मीरूप से स्थित हैं, इत्यादि — (मा० पु०)। इसी प्रकार आदि शक्ति को ही सम्बोधन करके कहा है—

'लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये।'

मी! हे लज्जास्वरूपिणी! हे महाविद्यास्वरूपिणी।

(भा० पु०)

इस प्रकार ऊपर के उद्धरणों से भी 'श्री' शब्द का अर्थ यहां पर वहीं 'आदिशक्ति' है।

इस प्रकार 'विद्या' शब्द के भी अनेक अर्थ होते हैं। 'विद्या' शब्द, 'विद् धातु से बनता है और विद्' का अर्थ होता है जानना'। इस लिये विद्या शब्द का अर्थ होता है ज्ञान, इसके अतिरिक्त विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती, विद्या

के साधन स्वरूप शास्त्र आदि में भी 'विद्या' शब्द प्रयुक्त होता है और इसके साथ-साथ वेद, पुराण और आगम शास्त्रों में विशेष रूप से मन्त्रवर्णात्मक, देवता को और उनकी उपासना विधि को भी 'विद्या, कहा है। प्रसङ्ग और अवस्था के अनुसार श्री विद्या' में जो शब्द है, उसमें भी क्रमशः प्रायः सभी लागू हो सकते हैं।

श्री स्वरूपा विद्या

अब यहाँ पर हम 'श्रीविद्या' से प्रथमतः श्री स्वरूपाविद्या, को ही लेते हैं। यहाँ 'श्री' शब्द और 'विद्या' शब्द का परस्पर समानाधिकरण होने से इन दोनों का आपस में अभेद सम्बन्ध है। अर्थात् श्री और विद्या का यहाँ पर कोई भेद नहीं हैं दोनों एक ही हैं।

हम पहले ही कह चुके हैं कि 'श्री हैं परमप्रकृति स्वरूपा आदिशक्ति और यही आदिशक्ति यहाँ 'विद्या' रूप में अभिप्रेत है। जब 'विद्या' शब्द का अर्थ है ज्ञान, और ज्ञान है परब्रह्म

सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म' इत्यादि।

(उपनिषद्)

तब 'श्री' शब्द वाच्य जो आदि शक्ति हैं; वही 'विद्या' पदवाच्य ज्ञान स्वरूप ब्रह्म हैं, क्योंकि परब्रह्म और परमप्रकृति स्वरूप आदि शक्ति में भेद नहीं है जो परम प्रकृति है, वह परब्रह्म का ही स्वरूप है।

अब इससे यह सिद्ध होता है कि उस चैतन्यस्वरूप परब्रह्म परमात्मा से अभिन्न जो साक्षात् परब्रह्म स्वरूपिणी चिन्मयी आदि प्रकृति हैं, वहीं 'श्री' है और यही मन्त्र वर्णात्मक देवतारूप में अभिव्यक्ति हो 'श्रीविद्या' के नाम से उपास्य हैं; क्योंकि हमने पहले ही कहा है कि 'विद्या का अर्थ 'मन्त्रवर्णात्मक देवता भी हैं।

श्री और विद्या

वास्तव में कहें तो 'श्रीविद्या' का अर्थ है 'श्री' और'विद्या' श्री है---श्री सुन्दरी और विद्या है 'विद्याराज्ञी' दक्षिणकाली। जैसा कि कहा हैं--

सा काली द्विविधा प्रोक्ता श्यामारक्ताप्रभेदत।
श्यामा तु दक्षिणा प्रोक्ता रक्ता श्री सुन्दरी मता॥

अर्थात् वह काली श्यामा और रक्ता के भेद से दो प्रकार की कही गयी है। श्यामा 'दक्षिणकाली' हैं और रक्ता 'श्री सुन्दरी, हैं। यहाँ 'कालयति जगत सर्वम्' इति काली---इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'काली' शब्द का 'श्री, विद्या से तात्पर्य होता है। इस तरह जिनकी श्री सुन्दरी और विद्याराज्ञी अर्थात् त्रिपुर सुन्दरी और दक्षिणकाली दोनों रूप में उपासना होती हैं, वह है 'श्रीविद्या,

क्योंकि श्रीविद्या की उपासना में जो तीन क्रम या कल्प माने गये हैं, उनमें ताराकल्प को दक्षिणाम्नाय में कालीकल्प के साथ मिला देने पर केवल दो क्रम मुख्य रूप में उपस्थित होते हैं। अब इन दो में भी कोई काली को प्रधान मानता है और कोई सुन्दरी को और जो भी जिसको प्रधान मानता है, वह उसी के क्रम को अपनाता है। जो भी हो, बात एक ही है, क्योंकि पीछे जाकर निर्वाण और सर्वाधिकार के पश्चात् पूर्ण महाक्रम होने के बाद श्री सुन्दरी और विद्या-राज्ञी दोनों एक हो जाती हैं। और फिर साक्षात् परब्रह्मस्वरूपिणी रह जाती हैं। इसीलिये 'बृहद्वडवानल' तन्त्र में कहा है कि श्रीमहात्रिपुर सुन्दरी और काली में कोई भेद नहीं है और जो इन दोनों को भेद दृष्टि से देखता है वह अधोलोक को जाता है। यथा—

महात्रिपुरसुन्दर्याश्चण्डयोगेश्वरी परा।
न तयोर्विद्यते भेदो भेदकृन्नरकं व्रजेत्॥

यहाँ चण्डयोगेश्वरी से काली ही अभिप्रेत है। अब इसका अभिप्राय यह होता है कि एक ही आदिशक्ति उपासनाक्रम से अनेक रूपों में अभिव्यञ्जित होकर, उपासना परिपूर्ण होने पर फिर एक ही रूप में अर्थात् निजस्वरूप में अवस्थित हो जाती हैं—यह उपासना की चरम अवस्था है। इसी अवस्था में उपासक भी तद्रूप होकर एक जाता है और मोक्षरूप परमपुरुषार्थ का भागी हो जाता है यही श्रीविद्या का रहस्यार्थ है और यहीं आकर श्रीविद्या के उपर्युक्त दोनों अर्थ 'श्री स्वरूपा विद्या' तथा 'श्री और विद्या' का सुन्दर समन्वय होता है और मन्त्रवर्ण, देवता, गुरु तथा साधक या उपासक सब एक रूप हो जाते हैं जैसा कि कहा है—

मन्त्ररूपा भवेद् देवी देवरूपो गुरूर्भवेत्।
गुरूरूपो भवेदात्मा आत्मारूपो मनुर्भवेत्॥

अर्थात् देवी मन्त्ररूप हो जाती हैं, गुरु देवी रूप बन जाता है और मन्त्र आत्मरूप बन जाता है।' अर्थात् साधक की आत्मा से एकाकार हो जाता है और इसी आत्मसंवित्तिरूप एकाकार अनुभब को विद्वानों ने 'विद्या' कहा है। जैसा कि –

'आत्माकारेण संवित्तिर्बुधैर्विद्येति गीयते॥'

(लिङ्ग पुराण)

इस वचन से सूचित होता है और यही सब प्रकार के विकल्पों से रहित होने के कारण परम तत्त्व कहा जाता है, क्योंकि जो विकल्प रहित तत्त्व है, वही परम तत्व है। कहा भी है—

'विकल्परहितं तत्त्वं परमित्यभिधीयते।'

(लि० पु०)

इस तरह श्रीविद्या का 'श्री और विद्या' रूप अर्थ लेने पर भी अन्ततोगत्वा यह एक रूप में परिणत होकर एक ही विद्या बन जाती है। यह 'श्री विद्या' का दूसरा अर्थ है।

'श्री' की अर्थात् श्रीविद्या की विद्या

'श्रीविद्या' को 'श्री' की अर्थात् 'श्रीविद्या की विद्या' के रूप में लेने पर भी पूर्वोक्त रीति से 'श्री' शब्द का उपर्युक्त 'श्रीविद्या' रूप ही अर्थ होता है और 'विद्या' का अर्थ उनका मन्त्र वर्ण या उपासनाक्रम होता है। इस प्रकार यहाँ पर 'श्रीविद्या' के अर्थ, उनके मन्त्र या उपासना विधि या तो दोनों हो जाते हैं, जो वास्तव में तदाकर वृत्तिरूप है और जिससे उस परम तत्व रूप श्रीविद्या का उदय हो सकता है।

श्री प्रदात्री विद्या

अब श्री विद्या को 'श्री प्रदात्री विद्या' के रूप में लेने पर 'श्री शब्द' का अर्थ पूर्वोक्त अनादिचिच्छक्ति रुप श्री विद्या के साथ-साथ हम सामान्य लक्ष्मी, सरस्वती, शोभा, सम्पद्, विभूति आदि भी कर सकते हैं और विद्या का अर्थ तो पहले की ही तरह करना होता है। जिससे 'श्रीविद्या' का अर्थ प्रसन्न या परिपूर्ण होने पर उपासक को लक्ष्मी, सम्पद्, विद्या, विभूति, शोभा आदि सभी प्रकार की 'श्री' देने वाली विद्या हो जाता है। इस तरह यहाँ पर भी 'श्रीविद्या' का अर्थ मन्त्रवर्णात्मक देवता और उपासना दोनों हो सकता है, क्योंकि यही विद्या केवल त्रिवर्ग रूप 'श्री' ही नहीं अपितु अपवर्गरूप 'श्री' भी प्रदान करती है, जैसा कि कहा है—

आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा।

(दुर्गा० १३।५)

अर्थात् आराधना की जाने पर वही आदि शक्ति मनुष्यों को सुख भोग, स्वर्ग और अपवर्ग देने वाली होती है।'

प्राप्ति की विद्या

यहाँ पर भी 'श्री' शब्द के और 'विद्या' के भी उपर्युक्त दोनों प्रकार के अर्थ लिये जा सकते हैं। इस प्रकार परब्रह्मस्वरूपिणी आदि शक्तिरूप 'श्री' को अर्थात परम पुरुषार्थ को प्राप्त कराने वाली तथा लक्ष्मी शोभा सम्पद् आदि रूप 'श्री' को अर्थात त्रिवर्ग को प्राप्त कराने वाली विद्या होने से भी इनको 'श्री विद्या' कहा है, क्योंकि उपासना सिद्ध होने पर इससे सभी प्रकार की श्री अर्थात चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति हो सकती है, इसलिये 'श्रीविद्या' को 'श्रीप्राप्ति की विद्या' भी कह सकते हैं।

'श्री प्राप्ति की विद्या' और 'श्री प्रदात्री विद्या'—ये दोनों अर्थ वास्तव में एक ही अभिप्राय के द्योतक हैं, परन्तु प्रदान और प्राप्तिरूप भिन्नाधिकरण अर्थद्वय के गुण प्रधान भाव को लेकर ही हमने इन दोनों का पृथक रूप में उल्लेख किया है।

इस प्रकार हमने जो 'श्रीविद्या' शब्द के कतिपय अर्थ यहाँ प्रस्तुत किये, उन सभी का समन्वय स्थल है—'श्री विद्या' और यही श्री विद्या श्री चक्र को अधिष्ठात्री श्री महात्रिपुर सुन्दरी हैं तथा इन्हीं को शास्त्रों में 'विद्या', 'महा-विद्या', 'परम विद्या' आदि नाम से पुकारा गया हैं। जैसा कि—

'या देवी सर्वभूतेषु विद्यारूपेण संस्थिता।'

(भा० पु०)

'जो देवी विद्यारूप से सब प्राणियों में अवस्थित है।'

'सर्व देवमयी विद्या'—'सर्व देवतामयी विद्या।'

(वामकेश्वरतन्त्र)

'सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी।'

(दुर्गा० १।५७)

'मुक्ति का कारण स्वरूप वही सनातनी देवी परमविद्या है।'

'विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि।'

(दुर्गा० ४।९)

'हे देवी। तुम ही भगवती परमा विद्या हो।'

श्री विद्या के पञ्चदशी, षोडशी आदि एवं दीपनी कामराज आदि अनेक भेद हैं। जिनमें कोई मन्त्रवर्ण मूलक हैं और कोई भिन्न-भिन्न उपासकों के उपासनामूलक। इनमें षोडशाक्षरी होने के कारण एक भेद को 'षोडशी' कहते हैं, जो दश महाविद्या की षोडशी से भिन्न ही है, पर यहां केवल श्रीविद्या मात्र को भी 'षोडशी' कहते हैं। जैसे कि—

कामराजाख्यमन्त्रान्ते श्री बीजेन समन्विता।
षोडशाक्षरविधेय श्रीविधेति प्रकीतिता।।

(ज्ञानार्णव तन्त्र)

फिर वहीं पर इनको भुक्ति-मुक्ति देने वाली 'ब्रम्हविद्या' भी कहा है। यथा—

(वर्णितुं नैव शक्येयं) श्रीविद्या षोडशाक्षरो।
ब्रह्मविद्यास्वरूपा हि भुक्तिमुक्ति फल प्रदा।।

(२) षोडशार्णामहाविद्या

इसीलिये यह परब्रह्मस्वरूपिणी हैं। यथा—

'परब्रह्मस्वरूपा च।'— (वामकेश्वरतन्त्र)

अतएव यही समस्त जगत् की कारण हैं, सबकी प्रकृति हैं, जगत की प्रतिष्ठा हैं, सम्पूर्ण विश्व की ईश्वरी हैं तथा समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त हा रही हैं। यही जगन्मयी हैं, जगद्धात्री हैं, सर्वेश्वरी हैं, सर्वशक्तिमयी हैं और सर्वलक्ष्मी-मयी हैं। जैसा कि कहा है—

………………….जगत्कारणरूपिणीम् ॥
सर्वलक्ष्मीमयीं नित्यां सर्वशक्तिमयीं भजे ॥

(महाकालसंहिता)

'हेतुः समस्तजगताम्' 'प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य', 'परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या', 'नमः प्रकृत्यै भद्रायै' 'नमो जगत्प्रतिष्ठायै', 'विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीम्', 'सैव सर्वेश्वरेश्वरी', 'विश्वेश्वरित्वम्',

'व्याप्तं तयैतत् सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर।'

'त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्', 'नित्यैव सा जगन्मूर्तिः', 'त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य', 'सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।'

इत्यादि-इत्यादि—(ये सब उद्धरण मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत दुर्गासप्तशती के हैं।)

इस सारे जगत् का इसी ने विस्तार किया है—

'तया सर्वमिदं ततम्।', 'तया ततमिदं सर्वं जगद्……।'

सारे जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार इन्हीं से होता है और यही सबकी शक्तिस्वरूपा हैं, यही विश्वमातृका हैं। जैसा कि कहा है—

त्वयैतद् धार्यते विश्वं त्वयैतत् सृज्यते जगत्।
त्वयैतत् पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ॥
सृष्टि स्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
'या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।'
'विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये।'
'या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।'

इत्यादि (मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत दुर्गा०)

अतएव विश्व में जितनी विद्याएँ हैं, सब इन्हीं के भेद हैं। जितनी स्त्रियाँ हैं, सब इन्हीं के भेद हैं। जैसा कि कहा गया है—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।

(दुर्गा० ११।६)

और यही समस्त स्त्रियाँ एवं ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि सकल पुरुषों के रूप में भी प्रस्फुरित होती हैं। जैसा कि कहा है—

'योषित्पुरुषरूपेण स्फुरन्ती विश्वमातृका।'

—(दक्षिणाभूर्तिसंहिता)

और अग्नि की विशाल राशि से चिनगारियों की तरह इन्हीं से सारे मन्त्रवर्ण अभिव्यक्त हाते हैं। जैसे कि वहीं पर कहा है—

'निःसरन्ति महामन्त्रा महाग्नेर्विस्फुलिङ्गयत्।'

इसीलिये इनको 'महामाया', 'महाविद्या', 'महामोहा,' 'महादेवी' आदि कहा है—

महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ॥
महामोहा च भवती महादेवी महेश्वरी।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।

(दुर्गा० १।७७-७८, १।५५-५६)

अर्थात् 'ज्ञानियों की चित्तवृत्ति को भी जबर्दस्ती खींचकर महामाया भगवती मोह में डाल देती हैं।''

महामायेति सम्प्रोक्ता तेन सा जगदीश्वरी।'

···(कालिका पु०)

विष्णुपुराण में भी इनका नाना प्रकार की विद्या के रूप में वर्णन किया गया है। जैसा कि—

यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने।
आत्मविद्या च देवि त्वं विमुक्ति फलदायिनी ॥

इतना होते हुए भी ये न स्त्री हैं, न पुरुष हैं, न तृतीय लिङ्ग हैं। ये केवल निष्कल और निरञ्जन हैं। जैसा कि कहा है—

'न स्त्री त्वं न पुमाँल्लोके'
'न स्त्री न षष्ढो न पुमानजेशितुः ।'
(इत्यादि)

इसीलिये कहा है—'श्रीविद्यैव हि मन्त्राणाम्'
मन्त्रों में श्रीविद्या ही (श्रेष्ठ) है । (कुलार्णव आदि तन्त्र)

(३) श्रीविद्या का उपासनाक्रम

श्रीविद्या की उपासना के मुख्य तीन क्रम हैं—'कालीक्रम', 'सुन्दरीक्रम' और 'ताराक्रम' । इनमें कालीक्रम को 'कुण्डलिनीक्रम' भी कहते हैं और 'कादि विद्या' भी । यह सत्त्वगुण प्रधान है । सुन्दरीक्रम को 'हंसक्रम' भी कहते हैं और 'हादि विद्या' भी, यह रजोगुण प्रधान है । ताराक्रम को 'समवरोधिनीक्रम' भी कहते हैं और 'सादि विद्या भी, यह तमोगुणप्रधान है । और यही तीन क्रम "दीक्षा" के नाम से प्रसिद्ध हैं तथा इनके पूर्ण होने पर साधक शिवस्वरूप बन जाता है ।

सुन्दरी तारिणी काली क्रमदीक्षाभिगामिनी ।
क्रमपूर्णो महेशानि क्रमाच्छम्मुर्भविष्यति ।।

यह क्रम सभी आम्नायों में है और इनमें प्रत्येक की पञ्चक्रम से उपासना होती है । यह उपासना प्रातः काल से लेकर आधी रात तक क्रमशः पञ्चसन्ध्यारूप में होती है । इनमें प्रत्येक क्रम में विद्या भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न रूप में उपास्य होती हैं । कादि विद्यारूपा जो काली हैं, उनके क्रम से प्रातः 'कामकला-काली', मध्याह्न में 'भुवनेश्वरी', सायंकाल में 'चामुण्डा', रात्रि में 'समय-कुब्जिका' तथा मध्यरात्रि में 'कादि-पञ्चदशी' की उपासना होती है । हादि-विद्यारूपा जो महात्रिपुर सुन्दरी हैं उनके क्रम में प्रातः 'आद्याकाली' मध्याह्न में 'तारा', सायंकाल में 'छिन्नमस्ता', रात्रि में 'बगला' तथा आधी रात को 'हादि-पञ्चदशी' की उपासना होती है । इसी प्रकार सादि-विद्यारूपा जो तारा हैं, उनके क्रम में प्रातः अनिरुद्ध सरस्वती के रूप में 'दक्षिणकाली', मध्याह्न में 'तारा', सायंकाल में 'बाला', रात्रि में 'ज्ञानसरस्वती' और आधी रात 'सादि-पञ्च दशी' की उपासना हाती है । इनके अतिरिक्त भी श्रीविद्या के बहुत से क्रमभेद हैं, जिनमें लघुक्रम से लेकर महाक्रम एवं पूर्णमहाक्रम पर्यन्त उपासना होती है । इस प्रकार जब तक क्रमदीक्षा से पुरश्चरण करते हुए आगे नहीं बढ़ेंगे, तब तक उपासना का यथार्थ फल, जो शास्त्रों में वर्णित है, प्राप्त नहीं होगा और उपासन

करते समय यदि विलोमक्रम से किया जाये तो वह सद्यः फलदायक भी होता है। इसके ऐसे और भी धार्मिक एवं वैज्ञानिक अनेक रहस्य हैं, जो समय और लेख-विस्तार को ध्यान में रखते हुए यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं।

आम्नाय भेद—श्रीविद्या के प्रधान छः आम्नाय हैं, जो पूर्व आदि चार दिशा और ऊर्ध्व तथा अधः—यों छः दिशाओं के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त ईशान आदि चार उपदिशाओं के नाम से प्रसिद्ध और भी आम्नाय हैं, जिनको चार उपाम्नाय कहते हैं तथा ये चारों चार दिशाओं के अपने मुख्य आम्नायों के साथ यथायोग्य मिले हाते हैं। इसलिये आम्नाय मुख्यतया छः ही गिने जाते हैं। जैसे पूर्वाम्नाय, दक्षिणाम्नाय पश्चिमाम्नाय, उत्तराम्नाय एवं ऊर्ध्वाम्नाय तथा अधराम्नाय—गणनाक्रम में अधराम्नाय यद्यपि यहाँ सबके अन्त में आया है, तथापि उपासना क्रम में हम इसको सबसे पहले रखते हैं। इन छः आम्नायों में प्रत्येक के सृष्टि, स्थिति, संहार, अनाख्या और भासा—ये पाँच क्रम होते हैं, जिनका मूलाधार से लेकर आज्ञा चक्रतक में (मतान्तर में ब्रह्मरन्ध्रतक में) समन्वय हो जाता है। इनमें से प्रत्येक की आम्नाय नायिका होती है। जैसे कि—अधराम्नाय की 'तारा', पूर्वाम्नाय की 'भुवनेश्वरी', दक्षिणाम्नाय की 'दक्षिणकाली', पश्चिमाम्नाय की 'कुब्जिका', उत्तराम्नाय की 'गुह्यकाली' और ऊर्ध्वाम्नाय की 'बाला महात्रिपुरसुन्दरी,। ये आम्नाय नायिका प्रत्येक उपाम्नाय की भी होती हैं। इनमें सप्तशती में वर्णित महाकाली, महालक्ष्मी महासरस्वती और चामुण्डा—ये क्रमशः ईशान, आग्नेय, वायव्य और नैर्ऋत्य की नायिकायें हैं। फिर इन छः आम्नायों में से पूर्वाम्नाय, दक्षिणाम्नाय और पश्चिमाम्नाय के पञ्चक्रम से अर्न्तगत जो सृष्टि, स्थिति और संहारक्रम हैं, उनमें प्रत्येक के भिन्न-भिन्न चक्र, मुद्रा, दर्शन, योगिनी, सिद्धि तथा चक्रनायिका होते हैं, जिनको हमने, आगे जाकर संक्षिप्तरूप में सब दिखा दिया है। इनमें अनाख्या और भासा की अपने-अपने आम्नाय क्रम के समष्टि चक्र में पूजा होने के कारण इनके अपने पृथक् चक्र, मुद्रा आदि नहीं होते। इसी प्रकार अधराम्नाय उत्तराम्नाय और ऊर्ध्वाम्नाय के भी समष्टि में (बिन्दु से भूपुरपर्यन्त में) पूजा हाने के कारण उनके अपने पृथक्, मुद्रा आदि नहीं होते; किन्तु निर्वाणविद्या, शाम्भव, पाशुपत आदि छहों आम्नायों के पृथक्-पृथक् होते हैं। फिर सबसे अन्त में जाकर बिन्दु से ब्रह्मरन्ध्र तक में पञ्चदशी, षोडशी, महाषोडशी सप्तदशी, अष्टादशी आदि और 'निर्वाणसुन्दरी', 'सर्वाधिकार शाम्भवी', 'महापादुका', 'अनुत्तरवादिनी', 'सर्वाम्नाय सर्वाधिकार' एवं 'पमयाविद्या', 'षोडशचक्रेश्वरी', 'समयानित्या', 'दश महाविद्या', 'पञ्चसिंहासन', 'पञ्चपञ्चिका', षडाम्नायसमया 'नवरत्न-कुब्जिका', 'नवरत्नसुन्दरी' तथा 'अलेखनी' आदि सब आ जाती हैं।

इसी प्रकार सभी आम्नायों में प्रत्येक देवता का मूल (मन्त्र), न्यास, ध्यान तथा पञ्चाङ्ग (स्तोत्र) आदि होते हैं। इनमें उपर्युक्त जो अलेखनी विद्या है, वह सुन्दरी और काली दोनों एक ही हैं। आचार्यों ने केवल समझाने के लिये एक को अनुलोम और दूसरे को विलोम मानकर पृथक् दर्शाया है। अर्थात् श्रीक्रम की अलेखनी को विलोम कर कालीक्रम में जपा जाता है। इसी प्रकार पञ्चदशी आदि विद्या में जब पञ्चदशी (लघुषोडशी) मूल देवता होगी, तब बाला-महात्रिपुर सुन्दरी चक्रनायिका होगी। जब षोडशी (महात्रिपुरसुन्दरी) मूलविद्या होती है, तब पञ्चदशी चक्रनायिका होती है। जब सप्तदशी मूलविद्या होगी, तब षोडशी चक्रनायिका होगी और जब अष्टादशी मूलविद्या होगी, तब सप्तदशी चक्रनायिका होगी।

अब यहाँ पर आम्नायक्रम को समष्टि में समन्वय कर अपनी-अपनी दीक्षा के अनुसार पूर्णाभिषेक से लेकर दिव्य साम्राज्य मेधातक क्रमशः पुष्पाञ्जलि लेकर पञ्चदशी, षोडशी आदि सभी विद्याओं की पूजा बिन्दु में ही की जाती है।

फिर, ऊपर जो 'समया विद्या', 'समया नित्या' आदि विद्याएँ हैं, वे सब निर्वाणोपासना में जाकर निर्वाणविद्या के रूप में परिणत हो जाती हैं और यथाक्रम एक दूसरे में लीन होकर अन्ततः एक निर्वाण-विद्या बन जाती हैं। यह सब क्रमोपासना से ही होता है।

उपासना-क्रम में ब्रह्ममुहूर्त से लेकर मध्यरात्रि तक अनेक क्रियाकलाप होते हैं। इनमें सबसे पहले की जाने वाली क्रिया प्रातः कृत्य है। पर प्रातः कृत्य आम्नायभेद से भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। पर सर्वाम्नायात्मक प्रातः कृत्य एक और भी होता है, जिसकी तालिका देखने से ठीक-ठीक पता चलेगा। प्रातः कृत्य में सबसे पहला चिन्तन है। चिन्तन में भी गुरुपादुका का चिन्तन सबसे पहले होता है। उसके बाद यथाक्रम चक्र, देवता आदि का चिन्तन किया जाता है। सर्वोत्तम क्रम में प्रातः कृत्य में चक्रों के चिन्तन के साथ आम्नायनायिकाओं का भी चिन्तन होता है और इसमें आश्रम-भेद से भी भेद होता है। प्रस्तुत क्रम में मूलविद्या चिन्तन के समय मूलाधार में 'वाग्भवकूट' एवं 'वागधीश्वरी' का हृदय में 'कामराजकूट' एवं 'कामेशी' का और आज्ञाचक्र में 'शक्तिकूट' एवं 'आदिशक्ति' का चिन्तन होता है। तब उसके बाद ब्रह्मरन्ध्र में मूलविद्या 'श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी' का ध्यान किया जाता है। साथ ही शरीर के षट्चक्रों में छहों आम्नायनायिकाओं का भी चिन्तन किया जाता है। अभेद-चिन्तन में मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त ही ब्रह्मविद्या की भावना की जाती है।

इसी प्रकार इस उपासना में मातृका, मालिनी, लघुषोढा, महाषोढा आदि कई प्रकार के न्यास बताए गये हैं, जिनके प्रयोग से साधक देवतास्वरूप और

उसका शरीर मन्त्रमय बन जाता है। पर इनमें से मूलन्यास और षोढान्यास पृथक्-पृथक् आम्नायक्रम की उपासना में पृथक्-पृथक् ही होते हैं।

उपासना के दो रूप—उपासना के भी मुख्य दो रूप हैं—एक 'वाह्य', दूसरा 'आभ्यन्तर', जिनको क्रमशः 'बहिर्याग' और 'अन्तर्याग' भी कहते हैं। आध्यात्मिक तत्त्वों को ही उपकरण मानकर मानसपूजा के रूप में ध्यान धारणा आदि के द्वारा जो आराधना की जाती है, उसको 'अन्तर्याग' कहते हैं। यह भावनात्मक होता है और इसके साधार एवं निराधार दो भेद होते हैं। बाहर के भौतिक उपकरण आदि से पूजा—आराधना की जाती है, उसको 'बहिर्याग' कहते हैं। यह क्रियात्मक होता है और इसके भी वैदिक एवं तान्त्रिक दो मुख्य भेद होते हैं। इसका सविस्तार वर्णन सूत संहिता आदि ग्रन्थों में भी पाया है।

इस प्रकार श्री यन्त्र में नित्य, नैमित्तिक काम्य एवं वहिर्याग, अन्तर्याग आदि के रूप में नाना प्रकार से श्रीविद्या की उपासना होती है। परन्तु इनमें से जब ध्यान योगात्मक आभ्यन्तर उपासना करनी होती है। तब वह शरीर में ही श्रीयन्त्र की भावना कर, श्रीयन्त्र के सम्पूर्ण क्रम को शरीरगत चक्रों में समन्वय कर ऐकात्म्यभाव से की जाती है। इसमें मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त अधरादि आम्नायों की तारा, भुवनेश्वरी आदि को यथाक्रम एक को दूसरे में उत्तरोत्तर लीन करके बालारूप में जाकर बाला को भी सर्वाम्नायेश्वरी श्रीमहा-त्रिपुर सुन्दरी में लीन करके तब एक रूप हो जाता है। यहीं पर आकर अन्त में दीक्षा का चौसठ का क्रम पूरा हो जाता है।

इस प्रकार श्रीविद्या के उपासनाक्रम में अधराम्नाय से लेकर ऊर्ध्वाम्नायतककी क्रमोपासना से उत्तरोत्तर शव्दयोग मन्त्रयोग, भक्तियोग, कर्मयोग एवं ज्ञानयोग प्राप्त होकर अन्त में कैवल्य मोक्षरूप परम पुरुषार्थ प्राप्त होता है। इनमें मन्त्र योग आदि सिद्ध होने पर अन्तराय-निवृत्ति, ऐहिक सुख प्राप्ति आदि भी अनायास ही होने लगते हैं और साधना निर्बाध आगे बढ़ने लगती है और क्रमशः आगे बढ़कर परम पुरुषार्थ प्राप्त करा देती है। यही इस उपासना का मुख्य फल है अन्य जितनी भी सिद्धियाँ इस उपासना-क्रम में प्राप्त होती हैं, वे एक प्रकार से सभी गौणफल हैं और केवल निर्वाण—साधना के मार्ग में सहयोगी के रूप में उपस्थित होते हैं; क्योंकि सच्चा उपासक यदि बीच में स्वतः उपस्थित होने वाली सिद्धियों को ही मुख्य फल समझने लगा तो वह अपने रास्ते से भटक जायेगा और चरम सिद्धि की प्राप्ति से वञ्चित ही रह जायेगा।

उपसंहार—इस प्रकार श्रीविद्या की उपासना अत्यन्त रहस्यमय एवं निगूढ़ विषय है जिसका वर्णन उन्हीं परब्रह्मस्वरूपिणी परमेश्वरी के सच्चे उपासक और कृपापात्र बड़े-बड़े सिद्ध भी नहीं कर पाते हैं, फिर हम जैसे नगण्य जीव की तो

बात ही क्या है। यह जानते हुए भी इस लेख के लेखक ने इसमें जो धृष्टता दिखायी है, वह केवल उन्हीं की प्ररणा से शिलोञ्छ रूप में इधर-उधर से बटोरे गये, उन्हीं के ज्योतिः प्रकाश के लेश से बिखरे हुए सूक्ष्म कण रूप तिल-चावल की वीरवली खिचड़ी तैयार कर, सभी के कल्याणार्थ अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायिका उन्हीं जगदम्बा की सेवा में नैवेद्य परोसने का दुःसाहस मात्र है। इसमें नमक-मिर्च का पानी या शहद-घी छिड़कने का काम जिज्ञासु भक्तों का है।

अन्त में हमारा मन्तव्य यह है कि जैसे नाना तत्त्वों से निर्मित इस पाञ्च-भौतिक शरीर का कहीं कोई अंग यदि अपूर्ण हो विकृत हो या विकल हो तो वह शरीर पूरा काम नहीं दे सकता, या किसी यन्त्र या मशीन का कोई पुर्जा न हो या बिगड़ गया हो तो उससे फलोत्पादन तो दूर ही रहे, स्वयं मशीन ही कभी-कभी तो पूर्णतया नाकाम व निश्चेष्ट हो जाती है, इसी प्रकार सभीक्रिया कलाप विशेषतः उपासना में कोई अङ्ग या क्रिया छूट जाय तो वह अपूर्ण ही रह जाती है और इस तरह की अपूर्ण उपासना से पूर्ण सिद्धि कभी प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिये श्री यन्त्र में जो कतिपय आम्नाय कतिपय क्रम और कतिपय क्रियाकलाप आदि द्वारा श्रीविद्या की उपासना होती है, उसमें केवल लेशमात्र भी यदि खण्डित हो जाय तो सम्पूर्ण उपासना ही अपूर्ण रह जाती है। अतः जिस प्रकार भी हो, सभी अङ्गों को ठीक-ठीक क्रम से पूरा करके उपासना करें, तभी उपासना पूर्ण होती है और उससे सिद्धि लाभ होता है। सामीप्यार्थक 'उप' उपसर्ग और उपवेशनार्थक 'आस्' धातु मिलकर बना इस 'उपासना' शब्द का अर्थ होता है समीप बैठाने वाला या समीप बैठाना, अर्थात् परिपूर्ण होने पर इष्टदेवता का 'सान्निध्य' प्राप्त हो, 'इष्टसिद्धि' हो, वही 'उपासना' है।



श्रीयन्त्र का संक्षिप्त विवरण

संहारक्रम

१- उत्तराम्नाय

मूलाधार—गणपति, शाकिनी, वर्णमातृका व-स अस्थिधातु, गुह्यस्थान।

विश्रान्तिचक्र—नायिका तारा, निर्वाणविद्या, उग्रतारा, नवात्मकेश्वर शाम्भव, अक्षोभ्यभैरव।

आम्नायनायिका—सृष्टि तारिणी, स्थिति एकजटा, संहार-नील सरस्वती, अनाख्या-महोग्रतारा, भासा उग्रतारा पादुका, महाषोढा।

शब्दयोगसिद्धि

२– पूर्वाम्नाय

स्वाधिष्ठान– ब्रह्मा, काकिनी, वर्णमातृका ब-ल, भेद धातु लिङ्ग मूल।

सृष्टिचक्र—नायिका भुवनेश्वरी, निर्वाणविद्या भुवनेश्वरी, द्वीपेश्वर-शाम्भव, सृष्टि-पाशुपत, सदाशिव-भैरव, पूर्वाम्नायपादुका, पूर्वाम्नाय-सर्वाधिकार, कामेश्वरी समया नित्या, संकेत अङ्क २४।

भूपुर—सृष्टि सृष्ट्यात्मकचक्र, त्रैलोक्यमोहनचक्र, सर्वसंक्षोमणीमुद्रा चार्वाकदर्शन, ई।शत्वादि प्रकटयोगिनी, अणिमासिद्धि, त्रिपुरा चक्रनायिका, आम्नायनायिका उन्मनी, प्रथम भूपुर में अणिमादि दशसिद्धि, द्वितीय भूपुर में ब्राह्मी आदि अष्टमातृका, तृतीय भूपुर में संक्षोभणी आदि दशमुद्रा।

त्रिवृत्त—सृष्टि-सृष्टि चक्र, त्रिवर्गसाधनचक्र, महायोनि मुद्रा, स्मार्तदर्शन, कालरात्रि आदि मातृकायोगिनी, गरिमा सिद्धि, चक्र नायिका त्रिपुरेशिनी, आम्नायनायिका उन्मनी। प्रथम वृत्त-कालरात्रि आदि २९ मातृका, द्वितीयवृत्त—अमृतादि १६ मातृका, तृतीयवृत्त—कामेश्वरी आदि १६ नित्या।

षोडशदल—सृष्टि-स्थित्यात्मकचक्र, सर्वाशापरिपूरकचक्र, सर्वविद्रा विणी-मुद्रा, बौद्धदर्शन, कामाकर्षिणी आदि गुप्तयोगिनी, लघिमा सिद्धि, चक्रनायिका

त्रिपुरेशी, आम्नाय नायिका अन्नपूर्णा या पूर्णेश्वरी, षोडशदल—कामाकर्षिणी आदि १६ कला।

अष्टदल—सृष्टि-संहारात्मकचक्र, सर्वसंक्षोमणचक्र, सर्वाकर्षिणी मुद्रा, गणपतदर्शन, अनङ्गकुसुमादि गुप्ततर-योगिनी, महिमासिद्धि, चक्रनायिका त्रिपुर-सुन्दरी, आम्नायनायिका भुवना, अष्टदल-अनङ्गकुसुमादि आठ देवी।

समष्टिचक्र—भूपुर से अष्ट्दलपर्यन्त—सृष्टि-अनाख्याचक्र चक्रनायिका भुवनेशी, आम्नायनायिका भुवनेशी।

समष्टिचक्र—भूपुर से अष्टदलपर्यन्त-सृष्टिभासाचक्र, चक्रनायिका भुवनेश्वरी, आम्नायनायिका भुवनेश्वरी। पादुका महाषोढा।

मन्त्रयोगसिद्धि

३—दक्षिणाम्नाय

मणिपूर—विष्णु, लाकिनी, वर्णमातृका ड-क, मांस धातु, नाभिस्थान।

स्थितिचक्र—नायिका विद्याराज्ञी दक्षिणकाली, निर्वाणविद्या, दक्षिण काली, संवर्त्तेश्वर शाम्भव, स्थिति पाशुपत, महाकाल भैरव, दक्षिणाम्नाय पादुका, दक्षिणाम्नाय सर्वाधिकार, भगमालिनी समयानित्या, सङ्केत-अङ्क २५।

चतुर्दशार—स्थितिसृष्ट्यात्मक चक्र, सर्वसौभाग्यदायकचक्र, सर्ववशंकरी मुद्रा, सांख्यदर्शन, संक्षोभणी आदि सम्प्रदाय योगिनी, ईशित्वसिद्धि, चक्रनायिका त्रिपुर वासिनी, आम्नायनायिका आद्याकाली, संक्षोभणी आदि शक्ति।

बहिर्दशार—स्थितिस्थित्यात्मक सर्वार्थसाधकचक्र, सर्वोन्मादिनी मुद्रा, वैदिक दर्शन, सर्वसिद्धिप्रदा आदि कुलकौलयोगिनी वशित्वसिद्धि, चक्रनायिका त्रिपुराश्री, आम्नायनायिका, परमाद्याकाली सर्वसिद्धिप्रदा आदि दस।

अन्तर्दशार—स्थिति संहारात्मक सर्वरक्षाकरचक्र, महांकुशमुद्रा, सौरदर्शन, सर्वज्ञानिगर्भयोगिनी, प्राकाम्यसिद्धि चक्रनायिका त्रिपुरमालिनी, आम्नायनायिका सिद्धिकाली सर्वज्ञा आदि दस।

समष्टिचक्र—चतुर्दशारतः अन्तर्दशारपर्यन्त—स्थिति अनाख्या चक्र, चक्र-नायिका श्यामाकाली, आम्नायनायिका श्यामाकाली।

समष्टिचक्र—चतुर्दशार से अन्तर्दशारपर्यन्त—स्थितिभासा चक्र, चक्र-नायिका विद्याराज्ञी दक्षिणकाली, आम्नाय नायिका विद्याराज्ञी दक्षिणकाली, पादुका, महाषोढा।

भक्तियोग सिद्धि

४—पश्चिमाम्नाय

अनाहत—शिव, राकिनी, वर्णमातृका क—ठ, असृग् धातु, हृदयस्थान।

सहारचक्र—नायिका कुब्जिका, निर्वाण विद्या, कुब्जिका, हंसेश्वर शाम्भव,

संहारपाशुपत, शिखास्वच्छन्द (कुब्जिकेश्वर) भैरव, पश्चिमाम्नायपादुका, पश्चिमाम्नाय सर्वाधिकार, वज्रेश्वरी समयानित्या, सङ्केत अङ्क ३२।

अष्टार—संहारसृष्टयात्मक सर्वरोगहरचक्र, खेचरीमुद्रा, वैष्णव दर्शन, वशिनी आदि रहस्ययोगिनी, मुक्तिसिद्धि चक्रनायिका त्रिपुरासिद्धा, आम्नायनायिका समय कुब्जिका, वशिनी आदि वाग्देवता।

त्रिकोण—संहारस्थित्यात्मक सर्वसिद्धिप्रदचक्र, बीजमुद्रा शाक्तदर्शन, कामेश्वरी आदि अतिरहस्ययोगिनी, इच्छासिद्धि, चक्रनायिका त्रिपुराम्बा, आम्नायनायिका घोर कुब्जिका। कामेश्वरी आदि देवतात्रय एवं परौध तथा नित्या (त्रिवृत्त की नित्या से भिन्न), अष्टार और त्रिकोण के अन्तराल में गुरुपंक्ति—दिव्यौध, सिद्धौध, महौध।

बिन्दु—संहारसंहारात्मक सर्वानन्दमयचक्र, सर्वयोनिमुद्रा, शैवदर्शन पञ्चदशी आदि परापररहस्ययोगिनी, प्राप्तिसिद्धि, चक्र नायिका त्रिपुरभैरवी, आम्नायनायिका, वीर कुब्जिका, बिन्दु—महात्रिपुरसुन्दरी।

समष्टिचक्र—अष्टार से बिन्दुपर्यन्त—संहारअनाख्याचक्र, चक्रनायिका वज्रकुब्जिका, आम्नायनायिका, वज्रकुब्जिका।

समष्टिचक्र—अष्टार से बिन्दुपर्यन्त—संहारभासाचक्र, चक्रनायिका अघोर कुब्जिका, आम्नाय नायिका अघोर कुब्जिका, पादुका, महाषोढा।

कर्मयोगसिद्धि—कर्मयोग की सिद्धि के निमित्त कर्मकुब्जिका की भी पूजा की जाती है।

५—उत्तराम्नाय

विशुद्ध—जीवात्मा, डाकिनी, वर्णमातृका अ—अः, त्वग्धातु, कण्ठस्थान।

अनाख्या चक्र—बिन्द्वादि-भूपुरपर्यन्तसमाष्टि, नायिका गुह्य काली, निर्वाणविद्या गुह्यकाली, विश्वेश्वरशाम्भव, अनाख्यापाशुपत, नृसिंहभैरव, उत्तराम्नायपादुका, उत्तराम्नाय सर्वाधिकार, वालामहात्रिपुरसुन्दरी समयानित्या। सङ्केत अङ्क ३६।

अनाख्या सृष्टिचक्र—चक्रनायिका भुवनेशी, आम्नाय नायिका तुम्बेश्वरी।

अनाख्या स्थितिचक्र—चक्रनायिका श्यामाकाली, आम्नायनायिका सिद्धि लक्ष्मी।

अनाख्यासंहार चक्र—चक्रनायिका वज्रकुब्जिका आम्नायनायिका भरतोपासिता गुह्यकाली।

अनाख्या अनाख्याचक्र—चक्रनायिका गुह्यकाली आम्नायनायिका रामोपासिता गुह्यकाली।

अनाख्याभासाचक्र— चक्रनायिका-कामकला, आम्नायनायिका कामकला काली, निर्वाणगुह्यकाली पादुका, महाषोढा, शामाव-विश्वेश्वरानन्द।
ज्ञानयोगसिद्धि —

चार उपाम्नाय

ईशाम्नाय— आम्नायनायिका महाकाली, दीक्षा सङ्केत अङ्क ३६।
आग्नेयाम्नाय—आम्नायनायिका महालक्ष्मी, दीक्षा संकेत अङ्क ३७।
नैर्ऋत्याम्नाय – आम्नायनायिका महासरस्वती, दीक्षासङ्केत अङ्क ३८।
वायव्याम्नाय आम्नायनायिका चामुण्डा, दीक्षासङ्केत अङ्क ३९।
६—ऊर्ध्वाम्नाय

आज्ञाचक्र-- परमात्मा या गुरु, हाकिनी, वर्णमातृका ह-क्ष, मज्जा धातु, स्थान भ्रूमध्य।

भासा चक्र— बिन्दु आदि भूपुरपर्यन्त समष्टि, नायिका, बाला निर्वाण विद्या, निर्वाण वाला, पद्मेश्वर शाम्भव, भासापाशुयत, त्रिपुर भैरव, ऊर्ध्वाम्नाय पादुका 'ऊर्ध्वाम्नाय सर्वाधिकार, वाला महात्रिपुरसुन्दरी समयानित्या, सङ्केत अङ्क ११७।

भासासृष्टिचक्र—चक्रनायिका भुवनेश्वरी, आम्नायनायिका, बाला त्रिपुरा, ४०।

भासा स्थितिचक्र चक्रनायिका दक्षिणकाली, बाला सुन्दरी ४१।
भासा संहारचक्र—चक्रनायिका कुब्जिका, बाला भैरवी ४२।
भासा अनाख्या चक्र चक्रनायिका, आम्नायनायिका वालात्रिपुर भैरवी।
भासा भासा चक्र—चक्रनायिका बालामहात्रिपुर सुन्दरी, पादुका, महा षोढा।

मोक्षयोग सिद्धि—

बिन्दु से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त की विद्या

बिन्दु—पञ्चदशी, अर्धचन्द्र षोडशी, रोधिनी-महाषोडशी, नाद-सप्तदशी, नादान्त-महासप्तदशी, शक्ति महाअष्टादशी, व्यापिका-निर्वाण सुन्दरी, समना-सर्वाधिकार, महाशाम्भवी, उन्मना महापादुका गुरुपद्म-अनुत्तरवादिनी, ब्रह्मरन्ध्र सर्वाम्नाय-सर्वाधिकार। महापादुका, महाषोढा।

चतुःसमया विद्या

कामेश्वरी, वज्रेश्वरी, भगमालिनी, त्रिपुर भैरवी।

पञ्च समया विद्या

श्रीविद्या (दशकूटात्मिका निर्वाण सुन्दरी), बगला, कालरात्रि जयदुर्गा, छिन्नमस्ता ।

पञ्चाम्नायसमया विद्या

भुवनेश्वरी, दक्षिणकाली, कुब्जिका, गुह्यकाली, बालामहात्रिपुर सुन्दरी ।

षडाम्नायसमया विद्या

उन्मनी, भोगिनी, कुब्जिका, चण्डयोगेश्वरी, बाला महात्रिपुर सुन्दरी, महात्रिपुरसुन्दरी ।

दश महाविद्या

काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, त्रिपुरभैरवी, धूमावती, बगलामुखी, मातङ्गी, कमला ।

पञ्चसिंहासन देवता

पूर्वसिंहासन—बाला भैरवी, सम्पत्प्रदाभैरवी, चैतन्य भैरवी, चैतन्य भैरवी (द्वितीया), कामेश्वरी भैरवी ।

दक्षिणसिंहासन—अघोर भैरवी, महाभैरवी, ललिताभैरवी, कामेशी भैरवी, रक्तनेत्राभैरवी ।

पश्चिमसिंहासन—षट्कूटा भैरवी, नित्यभैरवी, मृतसंजीवनी भैरवी मृत्युञ्जयपरा भैरवी, वज्रप्रसारिणी भैरवी ।

उत्तरसिंहासन—भुवनेशीभैरवी, कमलेशी भैरवी, सिद्धकौलेशी भैरवी डामरभैरवी, कामिनीभैरवी ।

ऊर्ध्वसिंहासन—प्रथमासुन्दरी, द्वितीयासुन्दरी, तृतीयासुन्दरी, चतुर्थीसुन्दरी पञ्चमीसुन्दरी ।

पञ्चपञ्चिका

पञ्चलक्ष्मी—श्री विद्यालक्ष्मी, एकाक्षरी लक्ष्मी, महालक्ष्मी, त्रिशक्तिलक्ष्मी सर्वसाम्राज्यलक्ष्मी ।

पञ्चकोशेश्वरी—श्रीविद्याकोशेश्वरी, परंज्योतिः कोशेश्वरी, परिनिष्कलाशाम्भवी, अजपा, मातृका ।

पञ्चकल्पलता—श्रीविद्याकल्पलता, परिजातेश्वरी, पञ्चबाणेशी, पञ्चकामेश्वरी, त्रिकूटाकुमारी ।

पञ्चकामदुधा—श्रीविद्याकामदुधा, अमृतपीठेशी, सुधासू, अमृतेश्वरी, अन्नपूर्णा ।

पञ्चरत्नेश्वरी—श्रीविद्यारत्नेश्वरी, सिद्धिलक्ष्मी, मातङ्गी, भुवनेश्वरी वाराही ।

नवरत्नसुन्दरी

कामसुन्दरी, तारासुन्दरी, रमासुन्दरी, मायासुन्दरी, वाक्सुन्दरी, दिव्य-सुन्दरी, परासुन्दरी, निर्वाणसुन्दरी, मोक्षसुन्दरी ।

नवरत्नकुब्जिका

अघोरकुब्जिका, वज्रकुब्जिका, समयकुब्जिका, घोरकुब्जिका, वीरकुब्जिका, जयकुब्जिका, सिद्धकुब्जिका, भोगकुब्जिका, मोक्षकुब्जिका ।

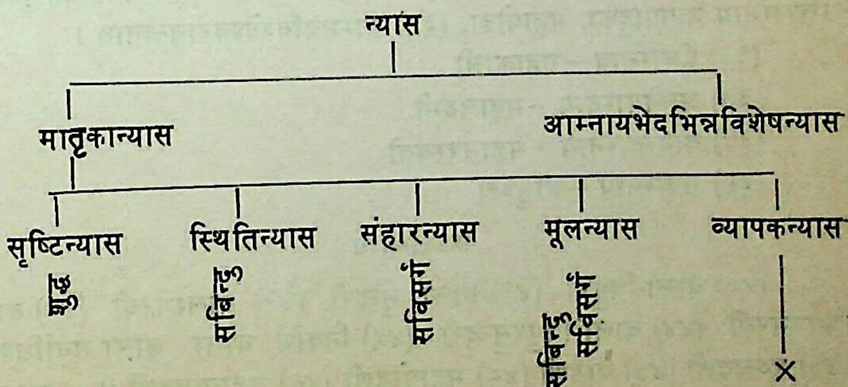
षोडशचक्रेश्वरी—तारा, त्रिपुरा, त्रिपुरेशिनी, त्रिपुरेशी, त्रिपुरसुन्दरी भुवनेश्वरी, त्रिपुरवासिनी, त्रिपुराश्री, त्रिपुरमालिनी दक्षिणकाली, त्रिपुरासिद्धा, त्रिपुराम्बा, त्रिपुरभैरवी, कुब्जिका गुह्यकाली, बालापञ्चदशी ।।

(सर्वमन्त्रेश्वरी)—५६ सर्वमन्त्रेश्वरी परदेवता अलेखनी—

सप्तपाशुपत—सृष्टिपाशुपत, स्थितिपाशुपत, संहारपाशुपत अनाख्या-पाशुपत, भासापाशुपत, निर्वाणपाशुपत, गुरुपाशुपत ।

सप्तशाम्भव विद्या ५५	**प्रतिविद्यासामान्य**
शाम्भव	मूल (मन्त्र)
महाशाम्भव	न्यास
तुरीया	ध्यान
महातुरीया	कवच
निर्वाण	हृदय वा उपनिषद
महानिर्वाण	स्तोत्र
सर्वाम्नायसर्वाधिकार	शतनाम
	सहस्रनाम

अलेखनी—६४



क्रमदीक्षा की तालिका

६४ क्रमदीक्षा की एक तालिका नीचे दी जा रही है। सरलता से समझने के लिये इसमें संख्या लगा दी गयी है।

अधराम्नाय-मूलाधार—(१) तारिणी (२) एकजटा (३) नीलसरस्वती (४) महोग्रतारा (५) उग्रतारा (६) निर्वाण तारा, अधराम्नाय-निर्वाण-सर्वाधिकार, महापादुका, महाषोढा (७) शाम्भवनवात्मकेश्वरानन्दनाथ।

सृष्टिचक्र-पूर्वाम्नाय—'स्वाधिष्ठान'

(८) उन्मनी (९) पूर्णेश्वरी (१०) भुवना (११) भुवनेशी (१२) भुवनेश्वरी (१३) निर्वाण भुवनेश्वरी, पूर्वाम्नाय सर्वाधिकार-सृष्टि-सुन्दरी पूर्वाम्नाय महापादुका, महाषोढा (१४) शाम्भव (नवात्मानन्दनाथ) दीपेश्वरानन्दनाथ।

स्थितिचक्र-दक्षिणाम्नाय— 'मणिपुर'

(१५) आद्याकाली (१६) परमाद्याकाली (१७) सिद्धिकाली (१८) श्यामाकाली (१९) दक्षिणाकाली (२०) निर्वाण दक्षिणाकाली—दक्षिणाम्नाय सर्वाधिकार स्थितिसुन्दरी, दक्षिणाम्नाय महापादुका, महाषोढा, (२१) शाम्भव (दीपेश्वरानन्दनाथ) संवर्तेश्वरानन्दनाथ।

संहारचक्र-पश्चिमाम्नाय— अनाहत—

(२२) समयकुब्जिका (२३) घोरकुब्जिका (२४) वीरकुब्जिका (२५) वज्रकुब्जिका (२६) अघोर कुब्जिका (२७) निर्वाण कुब्जिका पश्चिमाम्नाय सर्वाधिकार, संहारसुन्दरी, पश्चिमाम्नाय महापादुका, महाषोढा (२८) शाम्भव (संवर्तेश्वरावनन्दनाथ) हंसेश्वरानन्दनाथ।

अनाख्या चक्र-उत्तराम्नाय—विशुद्ध

(२९) तुम्बेश्वरी (३०) सिद्धिलक्ष्मी (३१) सिद्धिकराली (भरतोपासिता गुह्यकाली) (३२) सिद्धि करालिका (रामोपासिता गुह्यकाली) (३३) कामकला गुह्यकाली (३४) निर्वाण गुह्यकाली, उत्तराम्नाय सर्वाधिकार, अनाख्या सुन्दरी, उत्तराम्नाय महापादुका, महाषोढा, (३५) शाम्भवविश्वेश्वरानन्दनाथ।

(३६) ईशाम्नाय — महाकाली

(३७) आग्नेयाम्नाय — महालक्ष्मी

(३८) वायव्याम्नाय — महासरस्वती

(३९) उपाम्नाय—चामुण्डा

ऊर्ध्वाम्नाय

(४०) बाला-त्रिपुरा (४१) बाला सुन्दरी (४२) बालाभैरवी (४३) बाला त्रिपुरभैरवी (४४) बाला त्रिपुरसुन्दरी (४५) निर्वाण बाला, बाला सर्वाधिकार (४६) पञ्चदशी (४७) षोडशी (४८) महाषोडशी (४९) महासप्तदशी (५०) महाष्ट-

दशी, सर्वाधिकार (५१) लघुपाशुपत (५२) मध्यपाशुपत (५३) महापाशुपत (५४) निर्वाणसुन्दरी, ऊर्ध्वाम्नाय सर्वाधिकार, भासा-सुन्दरी (५५) महाशाम्भव-षडाम्नायेश्वरानन्दनाथ।

(५६) सर्वमन्त्रेश्वरी परदेवता (५७) वगला-समय-विद्या (५८) कालरात्रि समय विद्या (५९) जयदुर्गा-समय-विद्या (६०) छिन्नमस्त-समय विद्या (६१) दश-कूटात्मिका—निर्वाण सुन्दरी (६२) पञ्चसिंहासन देवता (६३) पञ्चपञ्चिका (६४) अलेखनी अनुत्तरवादिनी।

श्रीविद्या के वहुत से क्रम होते हैं। कादि, हादि और सादि एवं पञ्च-पञ्चिका, पञ्चसिंहासन आदि ये भिन्न-भिन्न साधकों के क्रम हैं।

सप्तशती वर्णित दुर्गा के दो क्रम हैं—पहले क्रम में (१) एकाक्षरी दुर्गा (२) अष्टाक्षरी दुर्गा (३) जय दुर्गा (४) नवार्ण और (५) पञ्चदशी। तथा दूसरे क्रम में (१) महाकाली (२) महालक्ष्मी (३) महासरस्वती (४) उग्रचण्डा और (५) पञ्च-दशी। यह सभी मिलकर महापूर्ण क्रम हो जाता है।



कादि और हादि विद्याओं का स्वरूप

कादि, हादि (एवं आदि, कहादि) विद्या का उल्लेख अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है। ऋग्वेदीय 'बह्वृचोपनिषद्' में कहा गया है कि 'एकमात्र देवी ही सृष्टि के पूर्व थीं। उन्होंने ही ब्रह्माण्ड की सृष्टि की। वे कामकला के नाम से विख्यात हैं। वे ही शृङ्गारकला कहलाती हैं। उन्हीं से ब्रह्मा उत्पन्न हुए, विष्णु प्रकट हुए, रुद्र प्रादुर्भूत हुए। × × × × वे ही अपरा शक्ति हैं, वे ही शाम्भवी विद्या, कादि-विद्या, हादि-विद्या या सादि विद्या कहलाती हैं। वे ही रहस्यरूपा है। वे ही प्रणववाक्य-अक्षरतत्त्व हैं। ॐ अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूपा वे वाणीमात्र में प्रतिष्ठित हैं। उसी उपनिषद में और भी कहा है—'ऋचाएँ एक अविनाशी परम आकाश में प्रतिष्ठित हैं, जिसमें सारे देवता भली-भाँति निवास करते हैं उनको जानने का प्रयास जिसने नहीं किया है, वह ऋचाओं के अध्ययन से क्या कर सकता है?

शाक्त सम्प्रदाय के कादि और हादि के आद्यस्वरूप का ज्ञान इसी से उपलब्ध होता है। ललिता और दुर्गा का परब्रह्म के रूप में चिन्तन उपनिषद् में किया गया है। शक्ति के मूल पञ्चदशाक्षरी-मन्त्र में 'क' वर्ण और 'ह' वर्ण के आदित्व से इन मतों के स्वरूप बनते हैं।

विद्या के विषय में श्रीदेवीमाहात्म्य में कहा गया है—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः

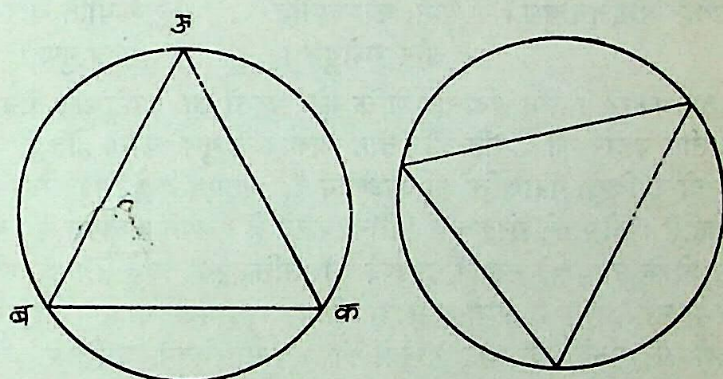
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।।

(मार्कण्डेय० दुर्गा० ११/६)

शाक्त साधनों में मन्त्र प्रधान साधन समझा जाता है। मन्त्र की वाचक-शक्ति और विमर्श-शक्ति—यह शक्ति का मूलरूप है। मन्त्र की वाचक शक्ति 'वाच्य देवता को प्रकाशित करती है और यही है—शाक्त साधना का प्रयोजन। शाक्तमत में भोग और मोक्ष, उभय की एक वाक्यता निरूपित की गयी है। सांख्य और वेदान्त की तरह त्याग और वैराग्य को विशेष महत्त्व नहीं दिया

गया है। स्त्री जाति की प्रतिष्ठा और वन्दनीयता के विषय में इस सम्प्रदाय में बड़ा उच्च स्थान है। धर्म साधना में स्त्री सहायक है, ऐसा इन लोगों का स्पष्ट मन्तव्य है और इसे ये व्यावहारिक स्वरूप भी देते हैं। वाचक-तन्त्र जब वाक्य देवता को स्पष्ट करे, तब वह 'विद्या' नाम धारण करता है। कहा भी है कि 'विद्या शरीरवत्ता मन्त्र रहस्यम्।' (प्रत्यभिज्ञा) अर्थात् 'विद्यामय शरीरयुक्त होना ही मन्त्र का रहस्य है।'

मूल परादेवता अर्थात् शक्तितत्त्व का स्वरूप चिन्मय और आनन्दमय है एवं उस मध्य आनन्दघन चेतन से तीन रेखाएँ प्रकट होती हैं। मध्य केन्द्र पर बिन्दु का प्रधान देवता कहलाता है और उससे जो तीन छोटे बिन्दु प्रकट होते हैं वे ज्ञान, क्रिया और इच्छा के तीन 'अपर बिन्दु' कहलाते हैं। इस मध्य केन्द्र से बल प्राप्त करके जो कोण बिन्दु होते हैं उनको जोड़ने वाली रेखाओं से स बिन्दु त्रिकोण मुख्य चिदाकाश में प्रकट होता है। वह विमर्श शक्ति का आद्यसूचक यन्त्र है। यथा—शाक्त पर बिन्दु का स्वरूप।

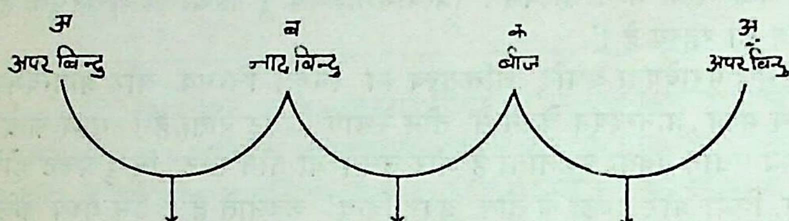


तान्त्रिक, मीमांसक, वैयाकरण एवं योगी, अर्थ शब्द के बीच अनादि प्रकाश्य-प्रकाशक सम्बन्ध मानते हैं। तान्त्रिक सम्प्रदायानुसार देवता का शरीर बीजों से अर्थात् बीजाक्षरों में प्रकट होता है। पर देवता अर्थात् परशिव का शक्तिमय रूप परब्रह्म या नादब्रह्म का आश्रय लेकर साधक के चित्त में प्रकट होता है। साधकेच्छित परिणाम उस प्रकटीकरण का साक्ष्य है।

उल्लिखित त्रिकोण यन्त्र में परबिन्दु को शून्य संज्ञा दी जाती है; किन्तु उसका अर्थ शून्य नहीं है। सच्चिदानन्द के वैभव से युक्त मूलतत्त्व अपनी अन्तर्गता शक्ति को बाहर निकालने में अभी उद्युक्त नहीं हुआ है, इसी से वह 'शून्य' है। यह शून्य 'बिन्दु' महाकाल की कला से अर्थात् 'अहं' भाव से विभिन्न होकर उदीयमान भावयुक्त होता है और अपने स्वरूप को पहचानने वाला होता है, तब

वह स बिन्दु वर्तुल होता है। वही कार्यविन्दु है और वही 'स्वरूपस्य कलनात्' 'काली' कहा जाता है। उसी का अन्य नाम 'आद्या' अथवा 'विद्याराज्ञी' है। क्योंकि मन्त्रोदय में उसके प्राकट्य का क्रम प्रथम है।

(त्रिकोण के अनुसार) शक्ति का प्रसरण रेखा द्वारा होता है।



रौद्री शक्ति, रुद्र पुरुष, ज्ञान शक्ति का प्राधान्य, संहारकर्म अग्निज्योति और तमोगुण।	ज्येष्ठाशक्ति, ब्रह्मा पुरुष, इच्छाशक्ति का प्राधान्य, उत्पत्ति कर्म, सोमज्योति और रजोगुण।	वामाशक्ति, विष्णु-पुरुष, क्रियाशक्ति का प्राधान्य, पालन कर्म सूर्यज्योति और सत्त्व गुण।

इस प्रकार से तीन अवान्तर शक्ति और पुरुषों का आविर्भाव तीन प्रकार के कर्म, तीन प्रकार की ज्योति और तीन प्रकार के गुण व्यक्त होते हैं और उन पर एक ही परबिन्दु, पराशक्ति का आध्यक्ष्य है; अतएव वह 'त्रिपुराम्बा' के नाम से कीर्तित है। कोण को संस्कृत में 'योनि' कहते हैं। अपने अन्तर्गत वेग को वहिर्गामी करने के समय की उसकी सामर्थ्य को 'शक्तितत्त्व' कहते हैं। इस शक्तितत्त्व के वीज के साथ प्रणव के सम्बन्ध से या शिव तत्त्वात्मक नाद के क्षोभ से अकारादि वर्ण और उनसे पदों और वाक्यों की रचना सचेतन व्यक्ति के द्वारा होती है। इस शाक्त बीज में से जिन-जिन मन्त्रों की प्राप्तियाँ, उदय के क्रम के अनुसार, अनुभवी उपासकों को हुई हैं, उन्हीं को तन्त्र-सम्प्रदाय में 'दशविद्या' कहते हैं।

इन दस की रचना-व्यवस्था पुनः दो कुलों में की जाती है—

(१) काली कुल, (२) श्री कुल। अतएव शाक्त-सम्प्रदाय की दृष्टि से 'श्रीयन्त्र' के दो प्रकार हैं—

(१) कादि-विद्यानुसार, (२) हादि-विद्यानुसार। (एक तृतीय प्रकार भी है जो 'कहादि' विद्या कहा जाता है, इसकी योजना पीछे से की गयी है।) 'कादि' विद्या के महामन्त्र का प्रारम्भ 'क' कार से होता है और 'हादि' का 'ह' कार से। दोनों विद्याओं में पञ्चदशाक्षर हैं। कादि-विद्या का महामन्त्र यह है—'क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं' और हादि विद्या का महामन्त्र है—'ह स क ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं।

कार्यबिन्दु में से तीन अवान्तर परिणाम प्रकट होते हैं—(१) अपर बिन्दु, (२) नाद, (३) बीज। उनमें अपरबिन्दु चेतनामय है, नाद जडाजड है और बीज जड है। अपरबिन्दु का दूसरा नाम 'शब्द ब्रह्म' है। उल्लिखित त्रिकोण की उत्पत्ति तीन रेखाओं से हुई है, उसी को 'त्रिपुर बीज'—ऐसा नाम मन्त्रियों द्वारा दिया गया है। निम्नलिखित कोष्ठक से उसका स्वरूप अधिक स्पष्ट होता है।

कादि विद्या के उपासक—अगस्त्य ऋषि हैं और हादि विद्या की उपासिका हैं—अगस्त्य मुनि की पत्नी लोपामुद्रा। तान्त्रिक आगमों में 'काम ही परम शिव का नाम है'—'ऐसा कहा गया है। 'कादि-विद्या' के प्रति श्रद्धान्वित होने वाले प्रथम आचार्य हैं—श्री परमशिव, दुर्वासा, हयग्रीव (विष्णु) और अगस्त्य। कादि-विद्या मुख्य है और हादि गौण।

ब्रह्माण्डपुराणान्तर्गत 'श्री ललितासहस्रनाम' की प्रशंसा प्रसिद्धि तन्त्र-साम्प्रदायिक उपासको में उच्चकोटि की है। उसमें उपोद्घाताख्या प्रथमा कला में (श्लोक संख्या १७) में कहा है—

तन्त्रेषु ललितादेव्यास्तेषु मुख्यमिदं मुने।
श्रीविद्यैव तु मन्त्राणां तत्र कादिर्यथा परा॥

इसके ऊपर सर्वतन्त्रस्वतन्त्र तान्त्रिकप्रवर श्री भास्कराचार्य जी प्रणीत 'सौभाग्य-भास्कर' नामक भाष्य में कहा गया है कि—पुन्देवत्यामन्त्राः स्त्रीदेवत्या विद्या इति मन्त्र विद्ययोर्लक्षणभेदोऽप्यस्याः शिवशक्ति समरस्यरूपत्वादुभवात्भतेति द्योतनाय मन्त्राणां मध्ये विद्येत्युक्तम्। एतदेव देवताध्याने ऐच्छिको विकल्पः स्मर्यते। 'पुंरूपं वा स्मरेद्देवीं स्त्रीरूपं वा विचिन्तयेत्। अथवा निर्गुणं ध्याये-त्सच्चिदानन्द लक्षणम्।' इति मालामन्त्रेऽपि स्त्रीपुंसभेदेन भेदः। ××× कादि ककारः आदिर्यस्यां सा कादिः कालीशक्तिः—इति तन्त्रराजप्रसिद्धकादिनामशक्त्या-भिन्ना वा। अतएव 'कादिसंज्ञाभवद्रूपा सा शक्तिः सर्वसिद्धये' इत्यादि। तत्रैव देवीं प्रति शिववाक्यम्। सा च 'कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मात-रिश्वाभ्रमिन्द्रः। पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्यैषा विश्वमातादिविद्योम्। इत्याथर्वणै पठ्यमानत्रैपुरसूक्तस्थायाभृच्युद्धृता। आगे चलकर उसी स्थान में भास्कराचार्य कहते हैं—'ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं जगदद्यापि दृश्यते'। इत्यादेर्गुरु-मुखैकवेद्यो रहस्यार्थो न हादिविद्यासु समञ्जसः। 'चत्वार ईं विभ्रति क्षोभयन्तः' इत्यत्रापि कादिपक्ष एवं स्वरस इति लोके। हादिपक्षेऽपि तुल्यं तु रहस्यम्। ×× ×× तन्त्रराजे तु तृतीय कूटस्यैव प्रथममुद्धारेण तत्रैवैकाक्षर निवेशेनान्ययोः कूटयोः लाघवेनोद्धाराय हादि विद्यैवादृता इतिज्ञेयम्। अतएव त्रैपुरसूक्ते 'षष्ठं

सप्तमथ वह्निसारथिम्' इत्युक्त्वा कादेः पश्चादेव हादेरुद्धारः कृतः। 'शिवः शक्तिः कामः' इति। सौन्दर्य लहरीस्थश्लोकद्वयं द्वेधापि व्याख्यायते इति दिक्।

(ललिता सहस्रनाम पृष्ठ ९-१०)

भगवान् शंकराचार्यजी ने समय—मतानुसारेण शाक्तसम्प्रदाय के मन्त्रों के स्वरूप और उनके उद्धार का दिग्दर्शन चमत्कार जनक शैली में किया है। उनकी सुप्रसिद्ध रचना 'सौन्दर्य लहरी' के अनुसार श्रीविद्या को 'कादि' मत कहा गया है। उल्लिखित सौभाग्यभास्कर में निर्दिष्ट श्लोकद्वयक के क्रमाङ्क हैं—३२ और ३३। इनमें ३२ वाँ श्लोक जैसा कि ऊपर कहा है—इस प्रकार निम्नलिखितानुसार है—

शिवः शक्तिः कामः क्षितिरथ रविः शीतकिरणः
स्मरो हसं शक्रस्तदनु च परामार हरयः।
अमी हृल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिता
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामावयवताम्॥

इस श्लोक के विषय में विवेचन करते हुए आनन्दलहरी के सुप्रसिद्ध अँग्रेजी अनुवादक पं० श्री आर० अनन्तकृष्ण शास्त्री महोदय ने लिखा है—

There are two Vidyas, Kadi and Hadi. Lakshmidhara holds that this Mantra refers to the Kadi Vidya, while others of repute say that it applies to the Hadi Vidya. Lakshmidhara is followed by many in Southern India and the other view prevails in the North.

इस मन्त्र के प्रयोगानुष्ठान के लिए चित्रात्मक यन्त्र उसी संस्करण में दिया गया है और निर्देशरूप में कहा गया है कि सुवर्णनिर्मित पत्र पर इस मन्त्र के बीजाक्षर 'ॐ' को लिखकर ४५ दिनों तक प्रतिदिन इस मन्त्रस्वरूप श्लोक के एक हजार, जप करने से रससिद्ध (Alchemical power) प्राप्त होती है। स्थानाभाव से कैवल्याश्रम, लक्ष्मीधर और अरुणामोदिनी टीकाओं के अनुसार इस श्लोक द्वारा सूचित 'कादि' और 'हादि' विद्यानुसार मन्त्रोद्धार का स्वरूप यहाँ उद्धृत नहीं किया है। शक्तिसङ्गतमन्त्र में कादि और हादि विद्याओं के विषय में चर्चा यथास्थान की गयी है। यथा—

कादिक्रमे महेशानि कथ्यते शृणु साम्प्रतम्॥१२३॥
सर्वव्यापकरूपं च शाक्तिज्ञान महेश्वरि।
परम्परात् परं देवि तच्च देवि द्विधा मतम्॥१२४॥

काद्यं हाद्यं महेशानि काद्यं कालीमतं भवेत् ।
हाद्यं श्रीत्रिपुराख्यं च कहाख्यं तारिणीमतम् ।।१२५।।

(षष्ठ पटल)

इसके अनुसार काद्य को कालीमत, हाद्य को श्रीत्रिपुरामत और कहाद्य को तारिणीमत कहा गया है । इसी शक्तिसङ्गम तन्त्र के सप्तम पटल में इन तीनों सम्प्रदायों की दीक्षा और उनके उपासना क्रम के विषय में सविस्तार वर्णन किया गया है ।

५३ शक्ति पीठ

संख्या	स्थान	अङ्ग तथा आभूषण	शक्ति नाम	भैरव नाम
१.	हिङ्गुला	ब्रह्मरन्ध्र	कोट्वीशा	भीमलोचन
२.	शर्करार	चक्षुत्रय	महिषमर्दिनी	क्रोधीश
३.	सुगन्धा	नासिका	सुनन्दा	त्र्यम्बक
४.	काश्मीर	कष्ठ देश	महामाया	त्रिसन्ध्येश्वरं
५.	ज्वालामुखी	महाजिह्वा	सिद्धिदा	उन्मत्त भैरव
६.	जालन्धर	स्तन	त्रिपुरमालिनी	भीषण
७.	वैद्यनाथ	हृदय	जयदुर्गा	वैद्यनाथ
८.	नेपाल	जानु	महामाया	कपाली
९.	मानस	दक्षिण हस्त	दाक्षायणी	अमर
१०.	विरजाक्षेत्र	नाभि देश	विमला	जगन्नाथ
११.	गण्डकी	गण्ड स्थल	गण्डकी	चक्रपाणि
१२.	वहुला	वाम वाहु	वहुला	भीरुक
१३.	उज्जयिनी	कूर्पर	मङ्गल चण्डिका	कपिलाम्वर
१४.	त्रिपुरा	दक्षिण पाद	त्रिपुर सुन्दरी	त्रिपुरेश
१५.	चट्टल	दक्षिण बाहु	भवानी	चन्द्रशेखर
१६.	त्रिस्रोता	वामपाद	भ्रामरी	भैरवेश्वर
१७.	कामगिरि	योनि देश	कामाख्या	उमानन्द
१८.	प्रयाग	हस्ताङ्गुलि	ललिता	भव
१९.	जयन्ती	वाम जङ्घा	जयन्ती	कमदीश्वर
२०.	युगाद्या	दक्षिणाङ्गुष्ठ	भूतधात्री	क्षीरखण्डक
२१.	कालीपीठ	दक्षिण पादाङ्गुलि	कालिका	नकुलीश
२२.	किरीट	किरीट	विमला	संवर्त

२३.	वाराणसी	कर्ण कुण्डल	विशालाक्षी-मणिकर्णी	कालभैरव
२४.	कन्याश्रम	पृष्ठ	शर्वाणी	निमिष
२५.	कुरुक्षेत्र	गुल्फ	सावित्री	स्थाणु
२६.	मणिबन्ध	दो मणिबन्ध	गायत्री	सर्वानन्द
२७.	श्रीशैल	ग्रीवा	महालक्ष्मी	शम्बरानन्द
२८.	काञ्ची	अस्थि	देवगर्भा	रुरु
२९.	कालमाधव	नितम्ब	काली	अमिताङ्ग
३०.	शोण देश	नितम्बक	नर्मदा	भद्रसेन
३१.	रामगिरि	अन्य स्तन	शिवानी	चन्द्रभैरव
३२.	वृन्दावन	केश पाश	उमा	भूतेश
३३.	शुचि	ऊर्ध्वदन्त	नारायणी	संहार
३४.	पञ्चसागर	अधोदन्त	वाराही	महारुद्र
३५.	करतोयातट (पञ्चसागर)	तल्प	अपर्णा	वामन भैरव
३६.	श्रीपर्वत	दक्षिण गुल्फ	श्रीसुन्दरी	सुन्दरानन्द भैरव
३७.	विभास	वाम गुल्फ	कपालिनी	सर्वानन्द
३८.	प्रभास	उदर	चन्द्रभागा	वक्रतुण्ड
३९.	भैरव पर्वत	ऊर्ध्व ओष्ठ	अवन्ती	लम्ब कर्ण
४०.	जनस्थल	दोनों चिबुक	भ्रामरी	विकृताक्ष
४१.	सर्वशैल	वामगण्ड	शाकिनी	वत्सनाभ
४२.	गोदावरी तट	गण्ड	विश्वेशी	दण्डपाणि
४३.	रत्नावली	दक्षिण स्कन्ध	कुमारी	शिव
४४.	मिथिला	वाम स्कन्ध	उमा	महोदर
४५.	नलहाटी	नला	कालिका	योगेश
४६.	कर्णाट	कर्ण	जय दुर्गा	अभीरु
४७.	वक्रेश्वर	मन	महिष मर्दिनी	वक्रनाथ
४८.	यशोर	पाणिपद्म	यशोरेश्वरी	चण्ड
४९.	अट्टहास	ओष्ठ	फुल्लरा	विश्वेश
५०.	नन्दिपुर	कण्ठहार	नन्दिनी	नन्दिकेश्वर
५१.	लङ्का	नूपुर	इन्द्राक्षी	राक्षसेश्वर
५२.	विराट	पादाङ्गुलि	अम्बिका	अमृत
५३.	मगध	दक्षिण जङ्घा	सर्वानन्दकरी	व्योमकेश

१०८ शक्ति तीर्थ

संख्या	स्थान	देवता
१.	वाराणसी	विशालाक्षी
२.	नैमिषारण्य	लिङ्धारिणी
३.	प्रयाग	ललिता
४.	गन्धमादन	कामुकी
५.	दक्षिण मानस	कुमुदा
६.	उत्तर मानस	विश्वकामा
७.	गोमन्त	गोमती
८.	मन्दर	कामचारिणी
९.	चैररथ	मदोत्कटा
१०.	हस्तिनापुर	जयन्ती
११.	कान्यकुब्ज	गौरी
१२.	मलय	रम्भा
१३.	एकाग्र	कार्तिभती
१४.	विश्व	विश्वेश्वरी
१५.	पुष्कर	पुरुहूता
१६.	केदार	सन्मार्ग दायिनी
१७.	हिमवतपृष्ठ	मन्दा
१८.	गोकर्ण	भद्रकर्णिका
१९.	स्थानेश्वर	भवानी
२०.	विल्वक	बिल्वपत्रिका
२१.	श्री शैली	माधवी
२२.	भद्रेश्वर	भद्रा
२३.	वराहशैल	जया
२४.	कमलालय	कमला
२५.	रुद्रकोटि	रुद्राणी
२६.	कालिञ्जर	काली
२७.	शालग्राम	महादेवी
२८.	शिवलिङ्ग	जलप्रिया
२९.	महालिङ्ग	कपिला
३०.	माकोट	मुकुटेश्वरी
३१.	मायापुरी	कुमारी

३२.	सन्तान	ललिताम्बिका
३३.	गया	मङ्गला
३४.	पुरुषोत्तम	विमला
३५.	सहस्राक्ष	उत्पलाक्षी
३६.	हिरण्याक्ष	महोत्पला
३७.	विपाशा	अमोघाक्षी
३८.	पुण्ड्रवर्धन	पाटला
३९.	सुपार्श्व	नारायणी
४०.	त्रिकटु	रुद्रसुन्दरी
४१.	विपुल	विपुला
४२.	मलयाचल	कल्याणी
४३.	सह्याद्रि	एकनीरा
४४.	हरिश्चन्द्र	चन्द्रिका
४५.	रामतीर्थ	रमणी
४६.	यमुना	मृगावती
४७.	कोटितीर्थ	कोटवी
४८.	मधुवन	सुगन्धा
४९.	गोदावरी	त्रिसन्ध्या
५०.	गङ्गाद्वार	रतिप्रिया
५१.	शिवकुण्ड	शुभानन्दा
५२.	देविका तट	नन्दिनी
५३.	द्वारावती	रुक्मिणी
५४.	वृन्दावन	राधा
५५.	मथुरा	देवकी
५६.	पाताल	परमेश्वरी
५७.	चित्रकूट	सीता
५८.	विन्ध्याचल	विन्ध्यवासिनी
५९.	करवीर	महालक्ष्मी
६०.	विनायक	उमादेवी
६१.	वैद्यनाथ	आरोग्या
६२.	महाकाल	महेश्वरी
६३.	उष्णतीर्थ	अभया
६४.	विन्ध्यपर्वत	नितम्बा

६५.	माण्डव्य	माण्डवी
६६.	माहेश्वरीपुर	स्वाहा
६६	छगलङ्ग	प्रचण्डा
६८.	अमरकण्टक	चण्डिका
६९.	सोमेश्वर	वरारोहा
७०.	प्रभास	पुष्करावती
७१.	सरस्वती	देवमाता
७२.	तट	पारावारा
७३.	महालय	महाभागा
७४.	पयोष्णी	पिङ्गलेश्वरी
७५.	कृतशौच	सिंहिका
७६.	कार्त्तिक	अतिशांकरी
७७.	उत्पलावर्तक	लीला-लोला
७८.	शोण सङ्गम	सुभद्रा
७९.	सिद्धवन	लक्ष्मी
८०.	भरताश्रम	अनङ्गा
८१.	जालन्धर	विश्वमुखी
८२.	किष्किन्धा पर्वत	तारा
८३.	देवदारुवन	पुष्टि
८४.	काश्मीरमण्डल	मेधा
८५.	हिमाद्रि	भीमा
८६.	विश्वेश्वर	तुष्टि
८७.	शङ्खोद्धार	धरा
८८.	पिण्डारक	धृति
८९.	चन्द्रभागा	कला
९०.	अच्छोद	शिवधारिणी
९१.	वेणा	अमृता
९२.	वदरी	उर्वशी
९३.	उत्तरकुरु	ओषधि
९४.	कुशद्वीप	कुशोदका
९५.	हेमकूट	मन्मथा
९६.	कुमुद	सामवादिनी
९७.	अश्वत्थ	वन्दनीया

९८.	कुवेरालय	निधि
९९.	वेदवदन	गायत्री
१००.	शिवसन्निधि	पार्वती
१०१.	देवलोक	इन्द्राणी
१०२.	ब्रह्मामुख	सरस्वती
१०३.	सूर्यबिम्ब	प्रभा
१०४	मातृमध्य	वैष्णवी
१०५.	सतीमध्य	अरुन्धती
१०६.	स्त्रीमध्य	तिलोत्तमा
१०७.	चित्रमध्य	ब्रह्मकला
१०८.	समग्रप्राणिवर्ग	शक्ति

श्री यन्त्र के नव चक्र और वर्ण

(१) सर्वानन्दमय	केन्द्रस्थ रक्तविन्दु
(२) सर्वासिद्धिप्रद	पीत त्रिकोण
(३) सर्वरक्षाकर	हरित वर्ण के आठ त्रिकोण
(४) सर्वरोगहर	काले रङ्ग के दस त्रिकोण
(५) सर्वार्थसाधक	लाल रङ्ग के दस त्रिकोण
(६) सर्वसौभाग्यदायक	नीले रङ्ग के चौदह त्रिकोण
(७) सर्व संक्षोभण	गुलावी रङ्ग के आठ दलों का कमल
(८) सर्वाशा परिपूरक	पीले रंग के सोलह दलों का कमल
(९) त्रैलोक्य मोहन	हरे रङ्ग का वाह्यस्थल

विज्ञातव्य

यम—सत्य-अहिंसा-अस्तेय (चोरी न करना) ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह-अर्थात् भोग्य सामग्री का संग्रह न करना।

नियम—पवित्रता, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान।

त्रियोग—कर्म-ज्ञान और भक्ति योग।

योग चतुष्टय—हठ, लय, मन्त्र और राजयोग।

द्विविधा प्रकृति—परा और अपरा।

त्रिविध पुरुष—क्षर-अक्षर और पुरुषोत्तम।

वेदान्त के चार वाक्य—अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, प्रज्ञानं ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म।

ज्ञान की सप्तभूमिकाएं—शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थभाविनी, तुर्यगा।

साधन चतुष्टय—नित्यानित्य वस्तु विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति (शमद्रम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा और समाधान) मुमुक्षुत्व।

त्रिविध नरक द्वार—काम, क्रोध, लोभ।

त्रिविध ज्ञान के द्वार - श्रद्धा, तत्परता, इन्द्रिय संयम।

भक्ति के चार महावाक्य – कृष्णस्तु भगवान् स्वयं, मत्तः परतरं नान्यत्, ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्, मामेकं शरणं व्रज।

द्विविधा भक्ति—अपरा-गौणी अथवा परा और रागानुगा।

नवधा भक्ति—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन-वन्दन दास्य, सख्य, आत्म निवेदन।

पञ्चभाव—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर।

अष्टसात्त्विक भाव—स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभंग, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय।

प्रेम की तीन अवस्थाएँ—पूर्वराग, मिलन और वियोग।

त्रिविध विरह—भूत, वर्तमान, भावी।

विरह की दश दिशाएँ—चिन्ता, जागरण, उद्वेग, कृशता, मलिनता, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, मोह और मृत्यु।

चतुर्विध भाव—भावोदय, भावसन्धि, भावशावल्य, भावशान्ति।

द्विविध महाभाव—रूढ़ और अधिरूढ़।

द्विविध अधिरुढ़ महाभाव—मोदन और मादन (मोहन)।

षट् कर्म—धौति, कपालभाति, गजकरणी, वस्ति, नौलि, नेति; कोई-कोई त्राटक समेत ७ मानते हैं।

प्राणायाम—पूरक, कुम्भक एवं रेचक।

चतुर्विध पातञ्जलोक्त प्राणायाम—आभ्यन्तर और बाह्य और दो प्रकार के केवल प्राणायाम।

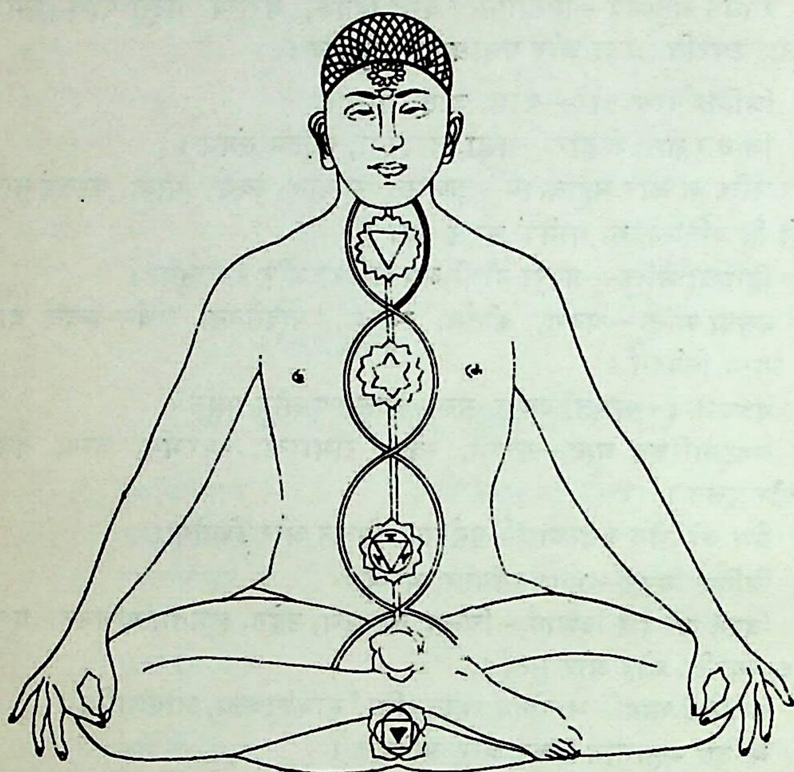
अष्टविध प्राणायाम—सूर्य भेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली मस्तिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और प्लाविनी; कुछ लोग अनुलोम, विलोम को जोड़कर ६ मानते हैं।

दैनिक श्वास—२१६००

तीन नाड़ियां—इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना।

दस वायु—प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल देवदत्त और धनञ्जय।

योग के षट्चक्र—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा। सातवाँ सहस्रार, आठवाँ तालु में चक्र तथा नवाँ ब्रह्मरन्ध्र में गुरुचक्र।



षोडश आधार—(१) दाहिने पैर का अँगूठा (२) गुल्फ (३) गुदा (४) लिङ्ग (५) नाभि (६) हृदय (७) कण्ठकूप (८) तालुमूल (९) जिह्वामूल (१०) दन्तमूल (११) नासिकाग्र (१२) भ्रूमध्य (१३) नेत्रमण्डल (१४) ललाट (१५) मस्तक और (१६) सहस्रार।

तीन ग्रन्थियां—ब्रह्म ग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि, रुद्र ग्रन्थि।

त्रिमार्ग—पिपीलिका मार्ग, दार्दुर मार्ग और विहंगम मार्ग।

त्रिशक्ति—ऊर्ध्व शक्ति (कण्ठ में) मध्य शक्ति (नाभि में) और अधः शक्ति (गुदा में)।

पञ्चभूत—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश।

पञ्चाकाश—आकाश, महाकाश, पराकाश, तत्त्वाकाश और सूर्याकाश।

वर्ण—अ से ह तक (५०)।

चर्तुविध वाणी—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैरवरी।

योग के आठ अङ्ग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

नियम—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान।

संयम—धारणा, ध्यान, समाधि।

क्रियायोग—तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान।

द्विविध ध्यान—भेदभाव से और अभेद भाव से।

द्विविध समाधि—सम्प्रज्ञात या सबीज, असम्प्रज्ञात या निर्बीज।

असम्प्रज्ञात के दो भेद—भव प्रत्यय, उपाय प्रत्यय।

पञ्च वृत्तियाँ—मूढ, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध।

पञ्च क्लेश—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश।

सप्तसाधन—शोधन, दृढ़ता, स्थैर्य, धैर्य, लाघव, प्रत्यक्ष और निर्लिप्तता।

योग के विघ्न—व्याधि, संशय, प्रमाद, आलस्य, विषय, तृष्णा भ्रान्ति, फल में सन्देह, चित्त की अस्थिरता, दुःख, मन का मालिन्य, देह की चञ्चलता, अनियमित श्वास-प्रश्वास, अनियमित और उत्तेजक आहार, अनियमित निद्रा, ब्रह्मचर्य का नाश, अनुकृत (नकली) गुरु का शिष्यत्व, सच्चे गुरु का अपमान, भगवान पर अविश्वास, सिद्धियों की चाह, अल्पसिद्धि में पूर्ण सफलता मानना, विषयानन्द, पूजा करवाना, गुरु बनना और (दम्भ करना)।

आठ महासिद्धियाँ—अणिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और यत्रकामावसायित्त्व। कुछ लोग गरिमा सहित ९ मानते हैं।

चर्तुविध साधन—मृदु, मध्य, अधिमात्र और अधिमात्रतम।

चार अवस्थाएं—जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय।

सप्त का महत्त्व—पृथ्वी की सात धातुएँ, सप्तपदी, सप्तस्वर, अग्निकलाएँ, सात चमड़ी के सातपर्त, सप्ताह।

ज्ञान की सप्त भूमिकाएं—शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थभावनी और तुर्यगा।

चौथा अध्याय

शाक्त प्रमोदानुसार श्री श्रीयन्त्र पूजानुक्रम

अथ मन्त्रोद्धारः

आदौ लज्जां समुच्चार्य्यं कएईल तत ~ परम् ।। पुनश्च लज्जामुच्चार्य्यं हसकहल तु तत्परम् ।।१।। ततो लज्जाम्पुन ~ प्रोच्य लज्जान्तं सकलन्तत ।। षोडशाक्ष रमन्त्रोऽयं षोडश्यास्समुदाहृतः ।। इयन्तु सुन्दरी विद्या देवानामपि दुर्ल्लभा ।। गोपनीया प्रयत्नेन सर्व्वसम्पत्करी मता ।।३।।

अथ मन्त्रः

ह्रींकएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ।।

अथ पूजाविधिः

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय शय्यायामेव स्थित्वा शिरसि महासहस्रदलकमले श्री-गुरुन्ध्यायेत्-द्विनेत्रन्द्विभुजं शान्तङ्गुरुम्पद्मासनस्थितम् ।। यथावर्णं सुखासीनम्मुक्त-म्भास्वररूपिणम् ।। वराभयकरम्ब्रह्मविष्णुशङ्कररूपिणम् ।। वामेनोत्पलधारिण्या शक्त्या वामाङ्गसँय्युतमिति ध्यात्वा । अखण्डमण्डलाकारँ व्याप्तँ य्येन चराचरम् ।। तत्पदन्दर्शितँ य्येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।। अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनश-लाकया ।। चक्षुरुन्मीलितँ य्येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।। नमोस्तु गुरवे तस्मै इष्टदेव-

---

० 'शाक्त प्रमोद' में वर्णित विधि के अनुसार श्री यन्त्र (श्रीविद्या) की पूजा विधि में सर्व प्रथम मन्त्रोद्धार बताते हैं कि लज्जा (ह्रीं) का उच्चारण करके "क ए ई ल" कहे तदनन्तर पुनः लज्जा (ह्रीं) कहे तदनन्तर "ह स क ह ल" कहे, पुनः लज्जा (ह्रीं) का उच्चारण करे तत्पश्चात्—'स क ल ह्रीं' कहे। इस प्रकार श्री यन्त्र, षोडशी विद्या, श्रीविद्या एवं श्री ललिता देवी का मन्त्र इस प्रकार हुआ—"ह्रीं क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं। अब श्री यन्त्र का पूजा विधान कहते हैं—ब्राह्म मुहूर्त में उठकरशय्या में ही बैठे हुए अपने शिर में स्थित सहस्रदल कमल में श्री गुरुदेव का ध्यान करे। द्विनेत्रं

स्वरूपिणे ।। यस्य वागमृतं हन्ति विषसंसारसङ्कलम् ।। अनन्तरात्मागुरुन्नमस्कृत्य अन्तर्व्भावनाङ्कुर्य्यात् । मूलमष्टोत्तरशतञ्जपेत् ।। समुद्रमेखले देवि पर्व्वतस्तन-मण्डले ।। विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यम्पादस्पर्शङ्क्षमस्व मे इतिपठन् वामपादपुरस्स-रम्भूमिं स्पृशेत् ।। तत्र मन्त्रः । लसहह्लीं एँकइल्कीं स इतिस्मृत्वा । तत्र चासन-मास्तीर्य्योपविश्य मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तम्मूलविद्यां विचिन्तयेत् । उद्यतादित्य सङ्काशान्तडित्कोटिसमप्रभाम् ।। तत्प्रभापटलव्याप्तन्देहं सुपरिचिन्तयेत् ।। षट्चक्र-भेदनङ्कुर्य्यात् ।। तद्यथा । गुदलिङ्गान्तरे 'वंशंषंसं' इतिचतुर्दलम्पीतवर्णम्मूलाधा-रम् अत्रदेवता डाकिनी गणेशश्चतुर्द्दन्तस्त्रिकोणविद्युद्वर्णन्तन्मध्ये विसतन्तुतनीसी शेषाव्वर्तनिभां सार्द्धत्रिवलान्वितम्प्रसुप्तभुजगाकारां सोमसूर्य्याग्निरूपिणीङ्कुण्ड-लिनीं शक्तिं हूंकारेण मनोमयदण्डेनाहत्योत्थाप्य हंसइति जप्त्वा ।।१।। लिङ्गमूले बंभंमंयंरंलमिति रक्तं स्वाधिष्ठानम् तत्र डाकिनी देवी ब्रह्माच ।।२।। नाभौडं-ढंणंतंथंदंधंनंपंफमिति नीलं मणिपूरम् तत्र लाकिनी देवी विष्णुश्च ।।३।। हृदये कंखंगंघंङं चंछंजंझंञं टंठमिति द्वादश दलन्धूम्रमनाहतचक्रम् तत्र काकिनी देवी रुद्रश्च ।।४।। कण्ठे अंआंइंईंउंऊंऋंॠंऌंॡं एंऐंओंऔंअंअः इतिषोडशदलं पिङ्गलवर्णं विशुद्धचक्रम्, तत्र हाकिनी देवी शिवात्मा ।।५।। भ्रूमध्ये हंलमिति द्विदलमाज्ञाचक्रम् तत्र हाकिनी देवी परात्मा च ।।६।। एवं षट्चक्रम्भित्त्वा सहस्रदलकमलकर्णिण-कान्तर्गतबिन्दुरूपे परमशिवे संय्योज्य लक्षाभयरमामृतेन कुण्डलिनीं सन्तर्प्य ।।

से लेकर विष संसार संकुलम्" तक गुरुदेव को अन्तःकरण से स्मरण करे। तत्पश्चात् १०८ बार मूलमन्त्र का जप करे। फिर समुद्र मेखले० मन्त्र को पढ़कर पृथ्वी में अपना बाँया पैर रखे, उस समय "ल स ह ह्लीं एँ क इ क्लीं स" इस मन्त्र का स्मरण करे। फिर आसन में बैठकर ब्रह्मरन्ध्र में ध्यान लगाकर मूल विद्या का चिन्तन मूल मन्त्र पढ़ते हुए करे तथा "उद्यतादित्य० मन्त्र पढ़कर श्री विद्या का ध्यान करे। तत्पश्चात् छहों चक्रों का भेदन करे। गुदा और लिंग के मध्य में "वं शं षं सं" इन चार दल वाले पीले वर्ण के मूलाधार देवता डाकिनी गणेश चार दाँतों वाले विद्युत के समान प्रकाशमान त्रिकोण के मध्य में त्रिवलि युक्त सोते हुए सर्प के आकार की सोम सूर्य अग्नि रूपिणी कुण्डलिनी शक्ति को मनोमय दण्ड द्वारा 'हूँ' कहकर जगावे और हं सः" इस मन्त्र का जप करे ।।१।। लिंग के मूल में "वं भं मं यं रं लं" कह-कर रक्तिम स्वरूप देखे और डाकिनी देवी एवं ब्रह्माजी का स्मरण करे ।।२।। नाभि में "डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं" इस मन्त्र को पढ़े तथा नीलमणि के समान वर्ण वाली लाकिनी देवी एवं विष्णु भगवान का ध्यान करे ।।३।। तदनन्तर हृदय में 'कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं" मन्त्र पढ़कर द्वादश-दल वाले धूम्रवर्ण के अनाहत चक्र में काकिनी देवी एवं रुद्र का ध्यान

पुनराज्ञाविशुद्धानाहतन्त्रिपुरस्वाधिष्ठानम्मूलाधारन्नयेत् ।। इतिभावना देवीन्ध्यात्वा मानसोपचारैस्सम्पूज्य जप्त्वा स्तुत्वा नत्वा आवश्यकशौचादिकङ् कृत्वा दन्तधावनङ् गृहीत्वा क्लींसर्व्वंजनप्रियायै रतिकामस्वरूपायै नम इतिमन्त्रेण दन्तधावनङ्कुर्य्यात् । ततो मूलेन मुखप्रक्षालनङ् कृत्वा यथाकाले जलाशयङ्गत्वा सूर्य्याभिमुखम्मुसलवदेकवारन्निमज्ज्य पुरतश्चतुर्हस्तप्रमाणञ्चतुरस्रम्प्रकल्प्य तन्मध्ये त्रिकोणँ व्विलिख्य सूर्य्यमण्डलादङ्कुशमुद्रया तीर्त्थमानयेत् । ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।। नर्म्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिङ्कुरु ।। वमिति धेनुमुद्राम्प्रदर्श्य मूलमष्टधा जपित्वा ।। कलशमुद्रया मूलेन सप्तधा शिरस्सिञ्चयेत् । सप्तच्छिद्राणि निरुध्य त्रिधा निमञ्जयेत् । पापप्रोक्षणङ् कृत्वा सन्ध्याङ्कुर्य्यात् ।। प्राणायामत्रयङ् कृत्वा वमिति धेनुमुद्रया जलममृतीकृत्य त्रिभिः शिरो मूलेनाभ्युक्ष्य नवधाऽऽचम्य तञ्जलन्दक्षिणकरे कृत्वा लंवंरंयंहमिति पाञ्चभौतिकमन्त्रमष्टधा जपित्वा मूलन्दशधा जपेत् । वामहस्तानामिकाङ्गुष्ठाभ्याञ्छोटिकायोगेन त्रिः शिरोभ्युक्ष्यावशिष्टजलं व्वामहस्तेईडया अन्तर्ग्गतम्मत्वा तेनैव निश्शेषकलुषन्दग्धं व्विचिन्त्य पिङ्गलायाम्बहिर्गतँ व्विभाव्य तञ्जलन्दक्षिणकरे कृत्वा तत्र पापपुरुषँ विचिन्त्य वामभागे भूमौ वज्रशिलान्ध्यात्वा तत्र नि-क्षिप्य पापपुरुषञ्चर्णितम्भावयेदित्यधमर्षणम् । ततो देवादीन् यथाविधि सन्तर्प्य । ॐ गणेशन्तर्प्पयामि, सर्व्वान्पितृगणांस्तर्प्पयामि, सर्व्वान्मातृगणांस्तर्प्पयामि, सर्वान्मनुष्यगणां-

---

करे ।।४।। तत्पश्चात् कण्ठ में "अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः" इस मन्त्र का षोडश दल, पिंगल वर्ण विशुद्ध चक्र में शाकिनी देवी शिवात्माका ध्यान करे ।।५।। दोनों भृकुटियों (भौंहों) द्विदल का आज्ञा चक्र है, उसमें हाकिनी देवी व परात्मा का निवास है ।।६।। इस प्रकार छहों चक्रों का भेदन कर सहस्रदलकमलकर्णिका के अन्तर्गत बिन्दु रूप में परम शिव का संयोजन कर लक्षाभयरमामृत से कुण्डलिनी को तृप्त करे, फिर आज्ञा विशुद्ध अनाहतत्रिपुर स्वाधिष्ठान मूलाधार को जाये, इस भावना से देवी का ध्यान करके मानस पूजा द्वारा जप स्तुति एवं प्रणाम पूर्वक आवश्यक शौचादि कर्मों से निवृत्त होकर दातून करे। क्लीं सर्वं जनप्रियायै० मन्त्र पढ़े। फिर मूलमन्त्र से मुख प्रक्षालन कर जलाशय में जाकर सूर्य की ओर मुखकर मूसल की भाँति एक बार जल में डूबकर अपने सामने चार हाथ का चतुर्भुज खींचकर और उसके मध्य में त्रिकोण बनाकर सूर्य मण्डल से अंकुश मुद्रा के द्वारा तीर्थों का आकर्षण करे। ॐ गंगे च यमुने चैव० मन्त्र पढ़े। धेनुमुद्रा प्रदर्शित करते हुए आठ बार 'वं' कहे। कलश मुद्रा से मूल मन्त्र पढ़कर सात बार अपने सिर का संमार्जन करे। सातों छिद्रों का अवरोधकर तीनबार निमज्जन करे। पाप प्रोक्षण कर सन्ध्या करे। तीन बार प्राणायाम कर धेनु-

स्तर्प्पयामि, सर्व्वान्तर्य्यामि मूलमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुर सुन्दरीन्तर्प्पयामि नम इति-त्रिवाररन्तर्प्पयित्वा ऐंआत्मतत्त्वंशोधयामि, क्लींविद्यातत्त्वं शोधयामि, सौंशिवतत्त्वं शोधयामि, ऐंक्लींसौंसर्व्वतत्त्वं शोधयामि । ततो जलादुत्थाय धौतवाससी परिधाय मूलेन तिलकङ्कृत्वा गन्धपुष्पाक्षतैरर्घ्यं सम्पाद्य ओं ऐं ह्रीं श्रीं कुलमार्तण्डभैरवाय तिथिवारनक्षत्रयोगकरणप्रकाशशक्तिसहिताय एषोऽर्घ्योनम इतिमन्त्रेण सूर्य्यार्घ्यन्दत्त्वा यथाशक्ति देवतागायत्रीञ्जपेत् । क्लींकामेश्वरीं विद्महे वागीश्वरीन्धीमहि तन्न ऽ क्लिन्ना प्रचोदयात् । रात्रौ चन्द्रार्घ्यन्दत्त्वा । क्षीरोदार्ण्णवसम्भूत अत्रिगोत्रसमुद्भव ।। गृहाणार्घ्यमिदन्देव रोहिण्या सहित प्रभो ।। इति चन्द्रार्घ्यन्दद्यात् । एवं सन्ध्याकालत्रयेऽपि कुर्य्यात् । ततो दिक्पतीन्नमस्कृत्य पूजागृहद्वारमागत्य हस्तौ पादौ प्रक्षाल्याचम्य अस्त्रायफट्नम इतिद्वारं सम्प्रोक्ष्य पूजयेत् । वामेशाखायां गंगणेशायनमः, दक्षिणे क्षंक्षेत्रपालायनमः, ऊर्द्ध्वे द्रांद्वारश्रियैनमः, देहलीमध्ये देहल्यैनमः, वामपाश्श्र्वे क्लींकामदेवायनमः, रंरत्यैनमः, वांवसन्तायनमः प्रींप्रीत्यैनमः ॐशङ्खनिधयेनमः, दक्षपाश्श्र्वे पद्मनिधयेनमः सरस्वत्यैनमः श्रियैनमः मायायैनमः दुर्ग्गायैनमः भद्रकाल्यैनमः स्वाहायैनमः शुभकर्य्यैनमः गौर्य्यैनमः लोकधात्र्यैनमः वागीश्वर्य्यैनमः, दक्षपादपुरस्सरमङ्गानि सङ्कोचयन् गृहान्तऽप्रविशेत् । ततो गृहान्तर्प्पयेत् ।। ऐशान्याम्पूजयेत् ।। ॐ वास्तुपुरुषायनमः ॐ ब्रह्मणेनमः ।। ततः अपसर्प्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः ।। ये भूता विघ्नकर्त्तारस्ते नश्यन्तु

मुद्रा से जल को अमृत समझ कर तीन बार शिर का सम्मार्जन मूल मन्त्र से करे। नव बार आचमन करे। जल लेकर (दाहिने हाथ में) लं वं रं यं हं इस पाँच भौतिक मन्त्र को आठ बार जपने के पश्चात् मूल मन्त्र का १० बार जप करे। बाँयें हाथ की अनामिका और अंगुष्ठ से तीन बार सिरपर जल छिड़के शेष जल को बाँयें हाथ में ईडा के अन्तर्गत मानकर बचे हुए पापों को जला हुआ समझकर पिंगला में वहिर्गत की भावना से जल को दाहिने हाथ में लेकर तथा उसमें पाप पुरुष की परिकल्पना करे और बाँयीं ओर वज्रशिला का ध्यान कर जल छोड़ दे। पाप पुरुष नष्ट हो गया इस प्रकार की भावना करे। यह अघमर्षण विधि हुई। फिर देवों का तर्पण करे 'ॐ गणेशं तर्प्पयामि०' इत्यादि मन्त्रों से तीन बार तर्पण करे। फिर तत्व शोधन 'ॐ आत्मतत्त्वं०' आदि से करे। फिर जल से बाहर आकर धोती आदि बस्त्रों को पहन कर मूल मन्त्र से अपने तिलक करे। गन्ध पुष्पाक्षत से ओं ऐं० इत्यादि मन्त्र से सूर्य को अर्घ्य दे। यथाशक्ति देवता गायत्री मन्त्र का जप करे देवतागायत्री मन्त्र 'क्लीं कामेश्वरी० इत्यादि है। रात्रि में चन्द्रमा को अर्घ्य 'श्री रोदार्णव०' मन्त्र से दे। ऐसा तीनों सन्ध्याओं में करे। फिर दिक्पालों को प्रणामकर पूजा गृह के द्वार में जाये हाथ पैर धोकर, आचमन करे। 'अस्त्रायफट्' कहकर

शिवाज्ञया ।। इति तण्डुलांश्चतुर्दिक्षु विकिरेदिति भूता पसारणम् ।। ऊद्ध्वोंद्ध्वं-तालत्रयन्दत्त्वा त्रिविध्नान् वामपादत्रिघातादुत्सारयेत् ।। ततो व्याघ्राजिनरक्त कम्बलाद्यासनमास्तीर्य्यासिनन्धृत्वा पठेत् ।। अस्यासनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलञ्छन्द ॅ कूर्मो देवता आसनोपवेशने विनियोगः ।। ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं व्विष्णुना धृता ।। त्वञ्च धारय मान्नित्यम्पवित्रङ्कुरु चासनम् ।। तत ॅ पूजयेत् । कूंकूर्म्मासनायनमः, आधारशक्तिकमलासनायनमः, ऐं ह्रीं श्रीं सर्व्वशक्तिकमलासनायनमः, ॐ पृथिव्यैनमः ।। ततस्स्वस्तिकाद्यासनेनोपविश्य ऐंह्रींश्रीं अमृतार्ण्णवात्मकायनमः इतिपादयोः, ऐंह्रींश्रीं श्वेताम्बुजासनायनम इति जान्वोः, ऐं ह्रीं श्रीं देव्यासनायनम इतिपाश्श्वर्वयोः, ऐं ह्रीं श्रीं चक्रासनायनम इतिगुह्ये, आसनस्य चतु ॅ कोणेषु पूजयेत् । ॐ गणपतयेनमः, दुर्ग्गायैनमः, बटुक-भैरवायनमः, क्षेत्रपालायनमः, इति वायव्यादि नैर्ऋत्यन्तम् । तत ॅ ह्लींकएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं गंगणपतयेनमः, पृष्ठे क्षेत्रपालायनमः, सम्मुखे श्रीमहात्रि-पुरसुन्दर्य्यैनमः ।। अथ भूतशुद्धिः ।। स्वाङ्के उत्तानौ हस्तौ कृत्वा सोहमिति मन्त्रेण मूलाधारे यथोक्तरूपाङ्कुण्डलिनीं हूँकारेण मनोमयदण्डेनाहत्योत्थाप्य स्वाधीनमणि-पूरानाहतप्रदीपकलिकाकारं जीवात्मानन्तथा सह विशुद्धाख्यचक्रम्भित्वा सहस्र-दलकमलान्तर्गत बिन्दुरूपे परमशिवे सँयोज्य शरीरं शून्यँ व्विचिन्त्य कुक्षौ पापपुरुषन्ध्यायेत् ।। वामकुक्षौ स्थितम्पापपुरुषङ्कज्जलप्रभम् ।। ब्रह्महत्याशिरस्क-

---

द्वारपूजा करे। द्वार पूजन के मन्त्र-'वामेशाखायां गणेशाय नमः' से लेकर 'वागीश्वर्यैं नमः' तक हैं । फिर दाहिने पैर को आगे कर अपने अंगों को संकुचित करते हुए पूजा गृह में प्रवेश करे। फिर पूजा गृह की पूजा करे। ऐशान्य दिशा में 'ॐ वास्तु पुरुषायनमः ॐ ब्रह्मणे नमः' कहे। फिर अपर्सपन्तु मन्त्र से भूत निःसारणार्थ चारों दिशाओं में अक्षत छोड़े । ऊपर-ऊपर, तीन बार तालियाँ बजाकर तीनों प्रकार के विघ्नों को अपने बायें पैर के तीन बार के धमाके से भूतो त्सारण करे। तब व्याघ्राजिन, रक्तकम्बल आदि के आसन में बैठने के पूर्व विनियोग करे, पृथ्वी से प्रार्थना करे। 'कूं कूर्मासनाय नमः से पृथि० यै नमः' तक मन्त्र पढ़े। स्वस्ति मन्त्र पढ़कर ऐं ह्रीं से पैरों, जंघाओं पार्श्व, गुह्य आदि का शोधन करे। आसन के चारों कोनों की पूजा करे उपरिलिखित मन्त्र पढ़े। **अथ भूत शुद्धि**—अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर 'सोहं' मन्त्र से मूलाधार में कुण्डलिनी को हूँकार के द्वारा मनोमय दण्ड से मारकर उठाये और स्वाधिष्ठान मणिपूरक जीवात्मा अनन्ता के साथ विशुद्ध चक्र को भेदकर सहस्रदलकमल के अन्तर्गत बिन्दु रूप में परम शिव का संयोजन करे। अपने शरीर को शून्य समझकर अपनी कुक्षि में पाप पुरुष का ध्यान

ञ्चस्वर्ण्णस्तेयभुजद्वयम् ।। सुरापानहृदा युक्तङ्गरुतल्पकटिद्वयम् ।। तत्संयोगिपद-द्वन्द्वमङ्गप्रत्यङ्गपातकम् ।। उपपातकरोमाणं रक्तश्मश्रुविलोचनम् ।। अचेतनम-धोवक्त्रन्दग्धपादपसन्निभम् ।। खड्गचर्म्मधरङ्क्रूरम्पापकुक्षौ विचिन्तयेत् ।। इति ध्यात्वा तेन सह शोषणादिकङ्कुर्य्यात् ।। वामनासापुटेन यमिति वायुबीजन्धूम्र-वर्ण्णं षोडशवारञ्जपन् वायुमुत्तोल्य नाभौ दशदले नियोज्य समस्तशरीरम्पाप-पुरुषेण संशोषयेत् । नासापुटौ धृत्वा रमिति बीजं रक्तवर्ण्णञ्चतुः षष्टिवारान् जपन् कुम्भकयोगेन शरीरन्तेन सह भस्मीकुर्य्यात् । वायुमुत्तोल्य हृदि द्वादशदले नियोज्य वमिति वरुणबीजं शुक्लवर्ण्णन्द्वात्रिंशद्वारञ्जपन् अमृतधाराम्पातयित्वा चमिति चन्द्रबीजञ्चतुः षष्टिवराञ्जपन् अमृतवृष्टया कुम्भकयोगेनाप्लाव्य लमिति भूमिबीजम्पीतवर्ण्णम्मूलाधारस्तम्भूमण्डले नियोज्य समस्तशरीरम्पुनर्द्देवतारा-धनयोग्यं शरीरन्दृढीकुर्व्वन् हंस इति मन्त्रेण जीवात्मानं हृदयचक्रे नयेत् ।। कुण्डलिनीम्मूलचक्रन्नयेत् ।। इति भूतशुद्धिः ।। ततो हृदि हस्तन्दत्त्वा प्राणप्रतिष्ठा-ङ्कुर्य्यात् । अस्य प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्यब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऋषयः ऋग्यजुः सामानि च्छन्दांसि चैतन्यशक्ति ~ परमात्मा देवता प्राणप्रतिष्ठायाँ व्विनियोगः । आँ ह्रीं क्रीं यँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ हँ लँ क्षँ हँ सः मम प्राणाः मम जीव इह स्थितः ।।१५।। ममेह सर्व्वेन्द्रियाणि ।।१५।। मम वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रघ्राणत्वग्रसनाप्राणा इहा-गत्य सुखञ्चिरन्तिष्ठन्तु स्वाहा ।। अथ प्राणायामः ।। वामनासापुटन्धृत्वा कएईल-

---

करे । 'वामकुक्षौ० से पाप कुक्षौ विचिन्तयेत्' तक । इसके उपरान्त वायुबीज 'यं' १६ बार कहकर वामनासापुट से वायु को साधकर नाभि से दशदल तक लावे इस प्रकार समस्तशरीर को पाप पुरुष से संशोषित करे तदनन्तर दोनों नासापुटों को बन्दकर 'रं' इस बीज मन्त्र से रक्तवर्ण का ध्यान करते हुए ६४ बार जप करे । जप करते हुए कुम्भकयोग के द्वारा शरीर को भस्म करे । फिर वायुसाधकर 'वं' इस वरुण बीज मन्त्र से शुक्लवर्ण का ध्यान करते हुए ३२ बार जप करे । अमृत धारा का पात समझते हुए 'चं' चन्द्र बीज से ६४ बार जप करते हुए अमृत वर्षा से कुम्भक योग से आप्लावित कर 'लं' भूमि बीज मन्त्र से पीतवर्ण का ध्यान करते हुए अपने शरीर को पुनः देवाराधन योग्य दृढ़ करके "हं सः" इस मन्त्र से जीवात्मा को हृदय चक्र में धारण करे। कुण्डलिनी को भूल चक्र में ले जाये । यह भूत शुद्धि हुई । फिर अपने हृदय में हाथ रखकर प्राण प्रतिष्ठा करे, अस्य प्राण प्रतिष्ठा० से चिरन्तिष्ठन्तु स्वाहा तक ।

अथ प्राणायाम—बायीं नासिका के छिद्र को दबाकर 'क ए ई ल ह्रीं' इस मन्त्र को १६ बार जपे वायु को धीरे-धीरे पूर्ण कर पूरक करे । दोनों नासा

ह्लीं मिति षोडशवारञ्जपन् वायुना शनैः शनैः पूरयेदिति पूरकः। नासापुटौ धृत्वा हसकहलह्लीं इतिचतुःष्षष्टिवारञ्जन् वायुङ्कुम्भयेत् ।। इति कुम्भकः। सकलह्लींमिति बीजन्द्वात्रिंशद्वारञ्जपन् वायुन्दक्षनासापुटेन शनैः रेचयेत् ।। इतिरेचकः एवम्प्राणायामत्रयङ्कुर्य्यात्। [अथ मातृकान्यासः।] अस्य श्रीमातृका न्यासमन्त्रस्य ब्रह्मर्षिग्गायत्रीछन्दो वर्ण्णजननी मातृकादेवता हलोबीजानि स्वराः शक्तयः कर्म्मसाद्गुण्ये विनियोगः ।। ब्रह्मर्षयेनमः शिरसि, गायत्री छन्दसेनमः मुखे, वर्ण्णजननी मातृकादेवतायैनमः हृदि, हल्बीजेभ्योनमः गुह्ये, स्वरेभ्यः शक्तिभ्योनमः गुदे, कर्म्मसाद्गुण्ये विनियोगः पादयोः। मातृकान्ध्यायेत्। पञ्चाशल्लिपिभिर्व्विभक्तसुखदोष्कामध्यवक्षः स्थलां भासन्मौलिनिबद्धचन्द्रसकलामापीनपिङ्गस्तनीम् ।। अद्रामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं विद्यां सुहस्ताम्बुजे बिभ्राणां व्विशद प्रभान्त्रिनयनाँ व्वाग्देवतामाश्रये ।। अंनमः ललाटे। आंनमः मुखवृत्ते। इंनमः दक्षनेत्रे ईंनमः वामनेत्रे उंनमः दक्षकर्ण्णे। ऊंनमः वामकर्ण्णे। ऋंनमः दक्षनासापुटे। ॠंनमः वामनासापुटे। लृंनमः दक्ष गण्डे। लॄंनमः वामगण्डे। एं नमः ओष्ठे। ऐं नमः अधरे। ओं नमः ऊर्द्ध्वदन्तपङ्क्तौ। औं नमः अधोदन्तपङ्क्तौ। अं नमः शिरसि। अः नमः मुखे। दक्षवाहुपञ्चसन्ध्यग्रेषु—कँ नमः खँ नमः गँ नमः घँ नमः ङँ नमः। वामबाहुपञ्चसन्ध्यग्रेषु—चँ नमः छँ नमः जँ नमः झँ नमः ञँ नमः। दक्षपादपञ्चसन्ध्यग्रेषु—टँ नमः ठँ नमः डँ नमः ढँ नमः णँ नमः। वामपादपञ्चसन्ध्यग्रेषु—तँ नमः थँ नमः दँ नमः धँ नमः नँ नमः। दक्षपाश्र्वे—पँ नमः फँ नमः। वामपाश्र्वे—बँ नमः पृष्ठे। भँ नमः नाभौ। मँ नमः उदरे। यँ नमः हृदये। रँ नमः दक्षांसे। लँ नमः ककुदि। वँ नमः वामांसे। शँ नमः हृदयादिदक्षहस्ते। षँ नमः हृदयादिवामहस्ते। सँ नमः हृदयादिदक्षपादे। हँ नमः हृदयादिवामपादे। लँ नमः हृदयादिउदरे। क्षँ नमः हृदयादिमुखे। इति मातृकान्यासः ।। [अथान्तर्म्मातृकान्यासः] कण्ठे षोडशस्वरान् रक्तवर्ण्णान्। हृदि कादि-ठान्तान् सिन्दूरवर्णान्।

रन्ध्रों को रोककर "ह स क ह ल ह्लीं" इस मन्त्र को ६४ बार जप कर वायु का कुम्भक करे। फिर "स क ल ह्लीं" इस बीज मन्त्र को ३२ बार जपते हुए दाहिने नासापुट से शनैः शनैः वायु का रेचन करे। इस प्रकार प्राणायाम विधि समाप्त हुई। अथ मातृ का न्यास—अस्य श्री मातृ का न्यास मन्त्रस्य० से विनियोग करे। शिर-मुख हृदय-गुह्य गुदा में न्यासोपरान्त मातृका का ध्यान करे पञ्चाशल्लिपि० से। फिर अपने प्रत्येक अंग में न्यास करे।

• **अथ अन्तर्मातृका न्यास**—कण्ठ में रक्तवर्ण का ध्यान करते हुए "अँ आँ इँ ईँ उँ ऊँ ऋँ ॠँ लृँ लॄँ एँ ऐं ओं औं अँ अः" इन सोलह स्वरों का उच्चारण करे। हृदय में कँ खँ गँ घँ ङँ चँ छँ जँ झँ ञं झँ ट ठँ सिन्दूरवर्ण। नाभि में डँ ढँ णँ तँ थँ दँ धँ नँ पँ फँ नीलवर्ण। लिंग में बँ भँ मँ यँ रँ लँ तडिद्वर्ण

नाभौ डादि-फान्तान्नीलवर्णान् । लिङ्गे बादि-लान्तान्तडिद्वर्ण्णान् । गुदे वादि-सान्तान् रक्तवर्ण्णान् । भ्रूमध्ये हँ क्षँ विमलवर्णान् । सहस्रारे सहस्रदले अकारादि-क्षकारान्ताँ ल्लाक्षारसवर्ण्णान् पञ्चाशद्वर्ण्णान् । एवङ्क्रमेण द्विरावृत्तौ तृतीया-वृत्तौ च विंशत्यावृत्तिपर्य्यन्तं सहस्रधा न्यसेत् । मूलाधारमारभ्य सहस्रदलपर्य्यन्तं सर्व्वत्र सर्व्वदलेषु मूलमन्त्रन्न्यसेत् । प्रतिदलम्प्रतिकमलम्प्रतिचक्रङ्कुण्डलिन्या गतागतेन एकविंशतिशतं जपम्प्रतिश्वासान्भावयेदित्यजपा ॥ अन्तर्म्मातृकान्यासश्च सदा सावधानेन कर्त्तव्यः ॥ इत्यन्तर्म्मातृकान्यासः ॥ [अथ कुलुकान्यासः ।] ऐं क्लीं ह्लीं श्रीं भगवतिमहात्रिपुरसुन्दरिस्वाहा । इति कुलुकां शिरसि ओं हृदि सेतुं ह्लीं महासेतुं कण्ठे ह्लींमहासेतुं सहस्रारे ओं श्रीं अँ एँ क्लीं सौं ऐं अँ आँ इँ ईँ उँ ऊँ ऋँ ॠँ लृँ लॄँ एँ ऐं ओं औं अँ अः कँ खँ गँ घँ ङँ चँ छँ जँ झँ ञँ टँ ठँ डँ ढँ णँ तँ थँ दँ धँ नँ पँ फँ बँ भँ मँ यँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ हँ ळँ क्षँ इति निर्व्वाणनाभौ लिङ्गे कामबीजं जिह्वायाँ मूलविद्याँ व्विचिन्त्य यथा शक्ति जपेत् । इति कुलुकान्यासः ॥ [अथ पीठन्यासः] ललाटे अँकामरूपपीठाय, नमः सर्व्वत्र । मुखवृत्ते आँवाराणसी-पीठाय, दक्षनेत्रे इँनेपालपीठाय, वामनेत्रे ईँपौण्ड्रवर्द्धनपीठाय, दक्षकर्ण्णे उँपुरस्तिर-पीठाय, वामकर्ण्णे ऊँकालिकुब्जिपीठाय, दक्षिणनासिकायां ऋँपूर्ण्णशैलपीठाय, वामनासापुटे ॠँअर्ब्बुदपीठाय, दक्षगण्डे लृँआम्रातकेश्वरपीठाय, वामगण्डे लॄँएका-म्रपीठाय, ओष्ठे एँत्रिस्रोतपीठाय, अधरे ऐंकामकोटपीठाय, ऊद्र्ध्वदन्तपङ्क्तौ ओं केदारपीठाय, अधोदन्तपङ्क्तौ औंगुप्तनगरपीठाय, शिरसि अँचन्द्रपुरपीठाय, मुखे अः श्रीपीठाय, दक्षकरपञ्चसन्ध्यग्रेषु कँओंकारपीठाय, खँजालन्धरपीठाय, गँमान-पीठाय, घँभद्रकोटपीठाय, ङँदेवीकोटपीठाय ॥ वामकरपञ्चसन्ध्यग्रेषु चँगोकर्ण-पीठाय, छँमारुतेश्वरपीठाय, जँमङ्गलकोटपीठाय, झँअट्टहासपीठाय, ञँविरज-पीठाय ॥ दक्षपादपञ्चसन्ध्यग्रेषु टँराजगृहपीठाय, ठँमहापथपीठाय, डँकोणगिरि-पीठाय, ढँऐलापुरपीठाय, णँरामेश्वरपीठाय ॥ वामपादपञ्चसन्ध्यग्रेषु तंजपती-पीठाय, थंउज्जयिनीपीठाय, दंचरित्रीपीठाय, धंक्षीरिकापीठाय, नंहस्तिनापुर-

---

गुदा में वं शं षं सं रक्त वर्ण। भ्रूमध्य में हं क्षं विमलवर्ण। सहस्रदल सह-स्रार में अ से लेकर क्ष तक ५० लाक्षावर्ण। इस प्रकार द्वितीयावृत्ति तृतीया-वृत्ति करते हुए बीस आवृत्ति करके १००० बार न्यास करे। मूलाधार से लेकर सहस्रदल-पर्यन्त सर्वत्र सब दलों में मूलमन्त्र से न्यास करे। प्रतिदल प्रतिकमल प्रतिचक्र में कुण्डलिनी द्वारा २१०० बार प्रतिश्वास से अजपा जप करे। अन्तर्मातृकान्यास बड़ी ही सावधानी से करे। इतिमातृका न्यास। अब कुलुना न्यास ऐं क्लीं: मन्त्र का जप करे।

० **तत्पश्चात् पीठन्यास करे**—ललाटे अँ काम रूप पीठाय नमः से लेकर सर्व्व-व्यापक पीठाय नमः तक पीठन्यास करे।

पीठाय ।। दक्षपाश्श्र्वे पंउड्डीशपीठाय, वामपाश्श्र्वे फंप्रयागपीठाय, पृष्ठे बँषष्ठीशपीठाय, नाभौ भँमायापुरपीठाय, उदरे मँनिर्ज्जनपीठाय, हृदये यँभलयपीठाय, दक्षांसे रंश्रीशैलपीठाय, ककुदि लंमहामेरुपीठाय, वामांसे वंगिरिपीठाय ।। हृदयादिदक्षहस्तपर्य्यन्ते शंमहेन्द्रपीठाय, हृदयादिवामहस्तपर्य्यन्तं षंरसेनपीठाय ।। हृदयादि दक्षपादपर्य्यन्तं सँबदरीपीठाय, हृदयादिवामपादपर्य्यन्तं हंमहालक्ष्मीपुरपीठाय, हृदयादिउदरपर्य्यन्तं ळँउड्डीमानपुरपीठाय, हृदयादिमुखपर्य्यन्तं क्षँसौम्यपीठाय नमः । ततो मूलाधारे ध्यानपीठानमः स्वाधिष्ठाने कामपीठायनमः मणिपूरे ज्ञानपीठायनमः अनाहते विदेहपीठायनमः विशुद्धौ नन्दिनीपीठाय० आज्ञायां नन्दापीठाय० ।। ततः सहस्रदलेषु क्षीरनिधिपीठाय० कल्पवनपीठाय० चिन्तामणिपीठाय० पर्य्यङ्कपीठाय० शिवासनपीठाय० मूर्त्तिमयपीठाय० सर्व्वव्यापकपीठाय० ।। इतिपीठन्यासः ।। [अथ रहस्यन्यासः] अस्य श्रीरहस्यन्यासमन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऋषयः ऋग्यजुस्सामानि च्छन्दांसि चैतन्यशक्तिमहात्रिपुरसुन्दरी देवता कृताकृतन्यासपूर्णतासिद्धये विनियोगः पादयोः । ऐं क्लीं सौं क्लीं ऐं श्रीं ह्रीं हं सः सोहं सदाशिवासनायै महात्रिपुरसुन्दर्य्यै नमः इति मूलाधारे ।।१।। ऐं क्लीं सौं सौं क्लीं ऐं श्रीं ह्रीं हं सः सोहं रतिप्रियायै महात्रिपुरसुन्दर्य्यै नमः इतिस्वाधिष्ठाने ।।२।। ऐं क्लीं सौं सौं क्लीं ऐं श्रीं ह्रीं हं सः सोहं ज्ञानस्वरूपायै महात्रिपुरसुन्दर्य्यैनमः इतिमणिपूरे ।।३।। ऐं क्लीं सौं सौं क्लीं ऐं श्रीं ह्रीं हंसः सोहंध्यानस्वरूपायै महात्रिपुरसुन्दर्य्यैनमः इतिअनाहते ।।४।। ऐं क्लीं सौं सौं क्लीं ऐं श्रीं ह्रीं हंसः सोहं विशुद्धस्वरूपायै महात्रिपुरसुन्दर्य्यैनमः इतिविशुद्धौ ।।५।। ऐं क्लीं सौं सौं क्लीं ऐं श्रीं ह्रीं हंसः सोहं स्वतन्त्रस्वरूपायै महात्रिपुरसुन्दर्य्यैनमः इत्याज्ञायाम् ।।६।। ऐं क्लीं सौं सौं क्लीं ऐं श्रीं ह्रीं हंसः सोहं आनन्दस्वरूपायै महासुन्दर्य्यैनमः इतिसहस्रारे न्यसेत् ।। इति रहस्यन्यासः ।। [अथ कामन्यासः] ह्रींकामायनमः, क्लींमन्मथाय०, ऐंकन्दर्प्पयाय०, क्लूंमकरध्वजायनमः स्त्रींमीनकेतवेनमः ।। तत ऐंहृदयायनमः, क्लींशिरसेस्वाहा, सौंशिखायैवषट्, ऐंकवचायहुम्, क्लींनेत्रत्रयायवौषट्, सौं अस्त्रायफट् । इतिद्विरावृत्य मन्त्रेण करयोर्व्विन्यसेत् ।। इतिकामन्यासः ।। [अथ रत्यादिन्यासः] लिङ्गे ऐंरत्यैनमः हृदि क्लीं प्रीत्यैनमः भ्रूमध्ये सौंमनोभवायै० भ्रूमध्ये सौं अमृताश्यै० हृदि क्लींयोगिन्यै० लिङ्गे ऐंविश्योन्यैनमः ।। इतिरतिन्यासः ।। [अथ मनोभवन्यासः] शिरसि हसौंईशानाय मनोभवायनमः, मुखे

---

० अथ रहस्यन्यास—'अस्य श्रीं रहस्यन्यास मन्त्रस्य' से लेकर 'महासुन्दर्यै नमः' तक मूलाधार स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार में रहस्यन्यास उपरिलिखित क्रम से करे।

० अथ कामन्यास—'ह्रीं कामाय नमः' से 'सौंअस्त्राय फट्' तक। इस प्रकार दो बार मन्त्रों से काम न्यास करे।

ह्सौंतत्पुरुषाय मकरध्वजायनमः, हृदि स्हृंअघोरकुमाराय कन्दर्प्पाय०, गुह्ये- ह्स्रींवामदेवाय मन्मथाय०, पादयोः ह्स्रूंसद्योजाताय कामदेवायनमः, ऊर्द्ध्वे वक्त्रे मस्तके ह्स्त्रौंईशानाय मनोभवाय०, पूर्व्ववक्त्रे भाले ह्स्त्रौंतत्पुरुषाय मकर- ध्वजाय०, दक्षिणवक्त्रे दक्षकर्ण्णे ह्स्रूंअघोरकुमाराय कन्दर्प्पाय०, उत्तरवक्त्रे वामकर्ण्णे ह्स्रींवामदेवाय मन्मथाय०, पश्चिमवक्त्रे चूडाधः ह्स्रूंसद्योजाताय कामदेवायनमः ।। इति मनोभवन्यासः ।। [अथ बाणन्यासः] ह्लांक्षोभणबाणायनमः, ह्लींद्रावणबाणाय०, क्लींआकर्ष्षणबाणाय०, ल्कूंमोहनबाणायनमः, सःउन्मादनबा- णायनमः ।। इति अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तङ्करयोर्न्यसेत् ।। इति बाणन्यासः ।। [अथ स्वतन्त्रन्यासः] अस्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीस्वतन्त्रन्यासस्य आनन्द भैरव ऋषिर्द्दैवी गायत्रीच्छन्दः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी देवता ऐंबीजं सौः शक्तिः क्लींकीलकं धर्म्मार्त्थकाममोक्षार्थे विनियोगः ।। आनन्दभैरवऋषयेनमः शिरसि, दैवीगायत्री छन्दसेनमः मुखे, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीदेवतायै नमः हृदये, ऐं बीजाय नमः नाभौ, सौः शक्तयेनमः स्वाधिष्ठाने, क्लींकीलकायनमः मूलाधारे धर्म्मार्थिकाममोक्षार्त्थे विनियोगः पादयोः । ऐं ह्रीं क्लीं अंगुष्ठाभ्यान्नमः क्लीं श्रीं सौः ऐं तर्ज्जनीभ्यां स्वाहा, सौः औं ह्रीं श्रीं मध्यमाभ्यां व्वषट् ऐंकएलह्रीं हसकहल्ह्रीं अनामिका- भ्यांहूम्, क्लींसकलह्रीं कनिष्ठिकाभ्यांवौषट्, सौ सौः ऐंक्लींह्रींश्रीं करतलकर पृष्ठाभ्याम्फट्, ऐंह्रींश्रींऐंकएलह्रीं सर्व्वज्ञायै महात्रिपुरसुन्दर्य्यै हृदयायनमः ऐंह्रीं- श्रीं सौः सकलह्रीं अनादिबोधायै महात्रिपुरसुन्दर्य्यै शिखायैवषट् ऐंह्रींश्रींकएलह्रीं स्वतन्त्रायै महात्रिपुरसुन्दर्यै कवचायहुम् ऐंह्रींश्रींक्लींहसकहलह्रीं नित्यमलुप्तशक्तये महात्रिपुरसुन्दर्य्यै नेत्रत्रयायवौषट् ऐंह्रींश्रीं सौः सकलह्रीं अनन्तायै महात्रिपुर- सुन्दर्य्यै अस्त्रायफट् हःअस्त्रायफट् इतिदिग्बन्धः ।। इतिस्वतन्त्रन्यासः ।। [अथ चतुर्द्दशारचक्रन्यासः] ऐंशिरसि, क्लीं सौः भ्रुवोः ऐंललाटे, क्लीं सौः श्रोत्रयोः, ऐंभ्रूमध्ये, क्लीं सौः नेत्रयोः, ऐंशिरसि, क्लीं सौः नासिकयोः, ऐंचिबुके, क्लीं सौः

अथ रत्यादिन्यास—"लिंग ऐं रत्यै नमः" से "ऐं विश्व योन्यै नमः" तक रतिन्यास करे।

अथ मनोभव न्यास—"शिरसि ह्सौं ईशानय' मनोभवायनमः" से लेकर "कामदेवाय नमः तक" मनोभवन्यास करे।

अथ बाण न्यास—"ह्लांक्षोभबाणाय नमः" से "सः उन्मादन बाणाय नमः" तक अंगुष्ठ से कनिष्ठिका तक बाणन्यास करे।

अथ स्वतन्त्र न्यास—"अस्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी स्वतन्त्र न्यासस्य०" से विनि- योग कर अंग न्यास पूर्वक दिग्बन्ध करे।

अथ चतुर्दशार चक्र न्यास—"ऐं शिरसि०" इत्यादि कहकर अंग न्यास करे।

ओष्ठयोः, ऐं नासिकायाम्, क्लीं सौः गण्डयोः, ऐंगले, क्लीं सौः बाहुमूलयोः, ऐंकण्ठे, क्लीं सौः बाह्वोः, ऐंचिबुके क्लीं सौः स्तनयोः, ऐंहृदये, क्लीं सौः पार्श्वयोः, ऐं नाभौ, क्लींसौः स्तनयोः, ऐंहृदये, क्लींसौः करयोः, ऐंलिङ्गे, क्लींसौः त्रिकयोः, ऐंपृष्ठे, क्लींसौः नितम्बयोः, ऐंक्लींसौः भूलञ्च सर्व्वाधारायनमः इति मूलाधारे ।। इति चतुर्द्दशारन्यासः ।। [ततोऽङ्गदेवतान्यासः ।।] अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः क्लींरसिनीवाग्देवतायैनमःशिरसि, कं खं गं घं ङं क्लीं-कामेश्वरीवाग्देवतायैनमः ललाटे, चं छं जं झं ञं श्रीमोदनीवाग्देवतायैनमः मुखे, टं ठं डं ढं णं कुंविमलाननावाग्देवतायैनमः कण्ठे, तं थं दं धं नं श्रींअव्ययावाग्देव-तायैनमः हृदये, पं फं बं भं मं श्रींजयिनीवाग्देवतायैनमः नाभौ, यं रं लं वं क्ष्मीं-वाग्देवतायैनमः मूलाधारे, शं षं सं हं ळं सं क्षं हं क्ष्मींकौलिनीवाग्देवतायैनमः इतिपादयोः इत्यङ्गदेवतान्यासः ।। [अथ मन्त्रन्यासः] प्रथमबीजं शिरसि । द्वितीय बीजं मुखे । तृतीयबीजं हृदये । ततः समस्तमूलमन्त्रं शिरस्तऽपादपर्य्यन्तन्नियसेत् ।। इति मन्त्रन्यासङ्कृत्वा पीठन्यासङ्कुर्य्यात् । प्रथमं हृदये ऐं आधारशक्ति कमलासनायनमः ऐंअनन्तायनमः ऐंपृथिव्यैनमः ऐंरससमुद्रायनमः ऐंरत्नद्वीपायनमः ऐंकल्पवृक्षायनमः ऐंरत्नमण्डपायनमः दक्षस्कन्धे धर्म्मायनमः वामस्कन्धे ज्ञानायनमः दक्षोरौ वैरासनायनमः वामोरौ ऐश्वर्य्यायनमः मुखे अधर्म्मायनमः दक्षपार्श्वे ज्ञाना-यनमः वामपार्श्वे अनैश्वर्य्यायनमः नाभौ अवैराग्यायनमः हृदये अनन्तायनमः पद्मा-यनमः ॐ अर्कमण्डलायनमः ॐ सोममण्डलायनमः मँवह्निमण्डलायनमः सँसत्त्वा-यनमः रँरजसेनमः तँतमसेनमः हैंहेछौंहसौः चक्रासनायनमः सत्त्वमन्त्रासनायनमः साध्यसिद्धासनायनमः ।। ततो हृत्पद्मचक्रन्ध्यात्वा तदुपरिवेदीङ्गन्धपुष्पाक्षतैऽ करकच्छपमुद्राम्बद्ध्वा ध्यायेत् ।। सकुङ्कुममित्यादि । बालार्क्कमण्डलाभासा-ञ्चतुर्व्वाहुन्त्रिलोचनाम् । पोशाङ्कुशौ शरांश्चापन्धारयन्तीं शिवां श्रये ।। शिरसि पुष्पन्दत्त्वा गुरुभ्योनमः । परमगुरुभ्योनमः परात्परगुरुभ्योनमः परमेष्ठि-

---

अङ्ग देवता न्यास—'अं आं इं ईं०' मन्त्र को पढ़ते हुए अङ्गन्यास करे ।

मन्त्र न्यास—प्रथम बीजं शिरसि० को पढ़ते हुए मन्त्र न्यास करे ।

पीठ न्यास—'प्रथमं हृदये० से साध्य सिद्धासनाय नमः' तक अंगन्यास पूर्वक पीठ न्यास करे ।

इसके पश्चात् हृदयस्थ कमल चक्र का ध्यान करे और उसके ऊपर बनी हुई वेदी को गन्ध पुष्पाक्षत से पूजा करे । इस अवसर पर कच्छप मुद्रा प्रदर्शित करे ।

कुंकुम चढ़ावे । 'बालार्कमण्डलाभासां०' मन्त्र से भगवती का ध्यान करे और शिर में पुष्प रखकर गुरुपरम गुरु, परात्पर गुरु और परमेष्ठि गुरुओं को प्रणाम करे । फिर मन में देवी की पूजा कर आवाह्न मुद्रा एवं योनि मुद्रा का

गुरुभ्योनमः। मनसा देवीं सम्पूज्य आवाहनमुद्रां य्योनिमुद्राम्प्रदश्र्य ततोर्घ्यं-स्थापनङ्कुर्य्यात्। सौः अस्त्रायफट्इति शङ्खम्प्रक्षाल्य भूमौ त्रिकोणमण्डलङ्कृत्वा ॐ आधारशक्त्यैनमः कूर्म्मायनमः अनन्तायनमः पूजयेत्। तदुपरि नमइति प्रक्षालितान्त्रिपदीन्निधाय तदुपरि शङ्खन्निधाय त्रिधा मूलेनापूर्य्य दूर्व्वाक्षतादि निःक्षिप्य मदंशकलात्मने सूर्य्यमण्डलाय नमइति त्रिपदीं सम्पूज्य अँद्वादशकलात्मने वह्निमण्डलायनमः इतिजले पूजयेत्। उँसोममण्डलायषोडशकलात्मनेनमः। ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति॥ नर्म्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिङ्कुरु॥ इति सूर्य्यमण्डलात्तीर्थमङ्कुशमुद्रयानीय अवगुण्ठनमुद्रयावगुण्ठ्य मूलमष्टधा जप्त्वा योनि मुद्राम्प्रदश्र्य अमृतीकृत्य धेनुमुद्रया पुनर्म्मूलमष्टधा जपित्वा तेनोदकेनाभ्युक्ष्य स्थापयेदिति। ततो विशेषार्घ्यस्थापनम्। स्वपुरतः किञ्चिद्वामभागे सामान्यार्घ्यस्य तोयेनाभ्युक्ष्य त्रिकोणवृत्तगर्भितवृत्तात्मकं षट्कोणवृत्तचतुरस्रमण्डलङ्कृत्वा अग्न्यादिकोणचतुष्टये पूजयेत्। ॐ उड्डीयानश्रीपादुकाम्पूजयामिनमः जांजालन्धरश्रीपादुकाम्पूजयामिनमः पूंपूर्ण्ण शैलश्रीपादुकाम्पूजयामिनमः कांकामरूप श्रीपादुकाम्पूजयानिमः। मूलेन नामोच्चार्य्य आधारमण्डलायनम इत्याधारं सम्पूज्य सौः अस्त्राययफट्नम इति त्रिपदीं सम्पूज्य मण्डले स्थापयित्वा पूज्यते। भँवह्निमण्डलाय दशकलात्मनेनमः। ततः सौः अस्त्रायफट्नम इतिशङ्खम्प्रक्षाल्य स्थापयित्वा अंसूर्य्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्य्यर्घ्यपात्रायनम इतिशङ्खे सम्पूज्य उंसोममण्डलाय षोडशकलात्मने श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्य्यार्घ्यमृतायनम इतिजलेनापूर्य्य तत्र जले दूर्व्वाक्षतादि दत्त्वा ऊँ गङ्गे च यमुने चैवेत्यादिना सूर्य्यमण्डलादङ्कुशमुद्रया तीर्त्थमावाह्य धेनुमुद्रयामृतीकृत्य योनिमुद्राम्प्रदश्र्य तदुपरि मूलमष्टधा जपित्वा दक्षाङ्गुष्ठेन जलं स्पृष्ट्वा मूलं स्मृत्वा

प्रदर्शन करे तब अर्घ्य स्थापित करे। 'सौः अस्त्राय फट्' कहकर शंख को धोकर स्वच्छ करले फिर भूमि में त्रिकोण मण्डल बनाकर आधार शक्ति कूर्म एवं अनन्त की पूजा के मन्त्र पढ़े। तथा शंख को स्वच्छ त्रिपदी के ऊपरस्थापित करे और शंख में तीन वार मूल मन्त्र पढ़कर दूर्वा अक्षत और जल छोड़े। 'मन्दशकलात्मने नमः' कहकर त्रिपदी की पूजा करें। 'अंद्वादश कलात्मने०' कहकर जल में पूजा करे। 'ॐ सोममण्डलाय' आदि कहकर सूर्य मण्डल से समस्त-तीर्थों को अंकुश मुद्रा से लाकर अवगुण्ठन मुद्रा से अवगुण्ठित करे। मूल मन्त्र को ८ बार जपे। योनि मुद्रा का प्रदर्शन करे जल को अमृत मानकर धेनु मुद्रा दिखावे तथा पुनः ८ बार मूल मन्त्र का जप करे फिर उस जल से भूमि को अभिषिक्त कर अर्घ्यस्थापित करे।

विशेषार्घ्य स्थापन—अपने आगे बाईं ओर सामान्य अर्घ्य के जल से अभिषिंचित कर भूमि में वृत्त गर्भितवृत्तात्मक षट्कोण वृत्त चौकोर मण्डल के अन्दर

अर्घ्यंजलस्य आग्नेयकोणमारभ्य विन्यसेत् । हृदयायनमः शिरसे स्वाहा शिखायै-वौषट् अस्त्रायफट् ।। इतिचतुर्द्दिक्षु विन्यस्य 'ह्रीं' इतिमन्त्रेण सम्पूज्य पञ्चरत्नानि विन्यसेत् । ग्लूं श्लूं प्लूं म्लूं ज्लूमिति पञ्चरत्नानि स्वर्ग्गमर्त्त्यपातालगमनरत्नानि विन्यसेत् । मत्स्यमुद्रयाच्छाद्य संरक्षणमुद्रया संरक्ष्य अवगुण्ठनमुद्रया अवगुण्ठ्य अमृतीकरणमुद्रया अमृतीकृत्य प्रवोधनमुद्रया प्रबोध्य मूलं स्मृत्वा । अकुलस्थामृ-ताकरे सिद्धिज्ञानकरे परे । अमृतत्वनिधं त्वस्मिन् वस्तुनि क्लिन्नरुपिणि ।। इति-जलमभिमन्त्र्य तज्जलेनात्मानम्पूजोपकरणञ्चाभ्युक्ष्य पीठपूजामारभेत् । ऐंह्रींनम इतिकुशजलेन भूमिं शोधयित्वा त्रिपदीमारोप्य पूजयेत् । ऐंआधारशक्ति कमला-सना सनायनमः कुर्म्मायनमः अनन्तायनमः पृथिव्यै रसाम्बुधयेनमः रत्नद्वीपायनमः नन्दनोद्यानायनमः रत्नमण्डपायनमः रत्नवेदिकायैनमः रत्नसिंहासनायनमः श्री-चक्रायनमः । ततो ह्रमितिमन्त्रेण ताम्रपीठँ व्विशोध्य श्रीयन्त्रं स्थापयित्वा पीठस्य आग्नेयादिकोण चतुष्टयम्पूजयेत् । धर्मायनमः ज्ञानायनमः वैराग्यायनमः ऐश्वर्य्याय-नमः । तत ~ पूर्व्वादिचतुर्द्दिक्षु । अधर्म्मायनमः अज्ञानायनमः अवैराग्यायनमः । अनैश्वर्य्यायनमः । पीठस्योपरि-आनन्द कन्दायनमः सँव्विन्नालायनमः सर्व्वतत्त्वानु-कम्पायनमः । पञ्चाशद्वर्ण्णकर्णिकायैनमः विकारमयकेसरेभ्योनमः प्रकृतिमयपत्रे-भ्योनमः । मंवह्निमण्डलायनमः, ॐ सूर्य्यमण्डलाय नमः अँसोममण्डलायनमः संस-त्त्वायनमः रंरजसेनमः तंतमसेनमः आं आत्मनेनमः अंअन्तरात्मनेनमः पंपरमात्म-नेनमः ह्रींज्ञानात्मनेनमः ऐंकामरूपपीठायनमः ।। ऐंपूर्णगिरिपीठायनमः ऐंजालन्धर-पीठायनमः ऐंउड्डीयानपीठायनमः ।। इतिसम्पूज्य ।। ऐंत्रिपुरेश्वरी मध्यमाभ्यान्न-नमः । क्लींत्रिपुरेश्वरी अनामिकाभ्यान्नमः । सौंत्रिपुरेश्वरी कनिष्ठाभ्यान्नमः । ऐंत्रिपुरेश्वरी अंगुष्ठाभ्यान्नमः । क्लीं त्रिपुरेश्वरी तर्ज्जनीभ्यान्नमः । सौः त्रिपुरेश्वरी करतलकरपृष्ठाभ्यान्नमः । ह्रीं क्लीं सौः देव्यासनायनमः । चक्रासनायनमः सर्व्व-मन्त्रासनायनमः साध्यसिद्धासनायनमः । ऐंत्रिपुरेश्वरी हृदयायनमः क्लींत्रिपुरेश्वरी

कर अग्निकोण आदि चारों कोणों की पूजा करे । तत्पश्चात् 'उड्डीयान श्री पादुकां पूजयामि०' कहकर आधार की पूजा करे । त्रिपदी की पूजा करे । मंडल में अर्घ्या को स्थापित करे । 'मं वह्नि मंडल० से अस्त्राय फट्' तक मन्त्र पढ़ कर शंख को स्वच्छ करे । शंख में अर्घ्यपात्र का पूजन करे । जल छोड़े दूर्वा अक्षत अर्पित करे । 'ॐ गंगे च यमुने चैव० कहकर सूर्य मंडल से अंकुश मुद्रा दिखाकर तीर्थों का आवाहन करे । धेनु मुद्रा से जल को अमृत बनावे योनि मुद्रा का प्रदर्शन करे । आठ बार मूल मन्त्र का जप करे । दाहिने अंगुष्ठ से जल का स्पर्श करे । मूल का स्मरण कर अर्घ्या जल के आग्नेय कोण में विशेष अर्घ्या की स्थापना करे । 'हृदयायनमः से अस्त्रायफट्' तक चतुर्दिङ्न्यास

शिरसेस्वाहा। सौः त्रिपुरेश्वरी शिखायैवषट्। ऐंत्रिपुरेश्वरी कवचायहूम्। क्लीं-त्रिपुरेश्वरी नेत्रत्रयायवौषट् सौः त्रिपुरेश्वरी अस्त्रायफट्। ततो ध्यात्वा पुष्पाञ्ज-लिना देवितेजः समानीय यन्त्रे कल्पितमूर्तौ आवाह्नमुद्रया आवाह्य स्थापनमुद्रया सँस्थाप्यत्रिखण्डमुद्राम्बद्ध्वा। महापद्मवनान्तस्थे करुणामय्यविग्रहे॥ सर्व्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि॥ अमृतीकरणपरमीकरणमुद्राम्प्रदर्श्य मूलमुच्चार्य्य श्री महात्रिपुरसुन्दरी प्राणा इह सुप्रतिष्ठिता भवन्तु। मूलमुच्चार्य्य पाद्यन्नमः मूल-मर्घ्योनमः मूलङ्गन्धोनमः। मूलम्पुष्पन्नमः मूलन्धूपोनमः मूलन्दीपोनमः मूलन्नैवे-द्यन्नमः। लम्पृथिव्यात्मकङ्गन्ध समर्प्पयामिनमः हंआकाशात्मकम्पुष्पंसमर्प्पयामि-नमः यंव्वाव्वात्मकन्धूपंसमर्प्पयामिनमः रंवह्न्यात्मकन्दीपंसमर्प्पयामिनमः वं अंबात्मकममृतंसमर्प्पयामिनमः। इतिपञ्चोपचारान्निवेद्य। श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि तवाज्ञाम्प्राप्य परिवारानर्च्चयामि। आज्ञाम्प्राप्य पूजयेत्। मध्ये ह्लीं श्रींकामेश्व-र्य्यैनमः भगमालिन्यैनमः क्लिन्नाय० भेरुण्डायै० विन्ध्यवासिन्यै० महाविद्येश्वर्य्यै० शिवदूत्यै० त्वरितायै० नित्यायै० नीलपताकायै० विजयायै० श्रियै० सर्व्वमङ्गलायै० ज्वालांशुमालिन्यै० ह्लीं श्रींविचित्रायैनम इतिसम्पूज्य। पूर्व्वद्वारे गङ्गणपतयेनमः। पश्चिमद्वारे वम्बटुकायनमः। उत्तरद्वारे ह्लींदुर्ग्गायैनमः। दक्षिणद्वारे क्षंक्षेत्रपाला-यनमः। बाह्यचतुरस्रस्य बाह्ये रेखायां पश्चिमादिद्वारचतुष्ट्ये ह्लीं श्रीं अणिमादि-सिद्धिश्रीपादुकांपूजयामिनमः। लघिमासिद्धिम्पूजयामिनमः। महिमासिद्धिम्पूज-यामिनमः। ईशसिद्धिम्पूजयामिनमः। बाह्यादिकोणचतुष्टये वशित्वसिद्धिश्रीम्पूज-यामिनमः। प्राकाश्यसिद्धिश्रीम्पूजयामिनमः। भक्तिसिद्धि श्रीम्पूजयामिनमः। इच्छासिद्धिश्रीम्पूजयामिनमः। अधस्थात्प्राप्तिसिद्धिश्रीम्पूजयामिनमः। ऊर्द्ध्वं

करे। 'ह्लीं' कहकर उस अर्घ्यपात्र में पंचरत्न छोड़े। ग्लूं मन्त्र पढ़े। मत्स्य मुद्रा से आच्छादित एवं संरक्षण मुद्रा से संरक्षित, अवगुण्ठन मुद्रा से अव-गुण्ठित, अमृतीकरणमुद्रा से अमृतीकरण और प्रवोधनमुद्रा से प्रवोधित करे। मूलकामरण करे। 'अकुलस्था०' से जल को अभिमन्त्रित कर अपने ऊपर व पूजन सामग्री के ऊपर छिड़ककर पीठपूजा प्रारम्भ करे। 'ऐं ह्लीं नमः' कहकर कुश जल से पृथ्वी को शोधित कर त्रिपदी रखकर पूजा करे। 'ऐं आधार-शक्तये०' मन्त्र पढ़कर ताम्रपात्र के ऊपर श्री यन्त्र की स्थापना करे। आग्ने-यादि चारों कोणों की पूजा करे। तदनन्तर पूर्वादि चारों दिशाओं की पूजा करे। फिर अधर्मायनमः आदि मन्त्र पढ़कर पीठ पूजा करे। फिर अंग न्यासादि करे। फिर श्री विद्या का ध्यान करे पुष्पांजलि लेकर यन्त्र में कल्पित मूर्ति का आवाहन मुद्रा से आवाहन कर स्थापन मुद्रा से स्थापित करे। त्रिखण्ड मुद्रा बाँधकर प्राण प्रतिष्ठा करे। मूलमन्त्र से अर्घ्य गन्ध-धूप-दीप-नैवेद्य समर्पित करे। फिर महासुन्दरी से आज्ञा लेकर परिवार

सर्व्वकामसिद्धिम्पूजयामिनमः। मध्य चतुरस्रस्य पश्चिमादिद्वारचतुष्टये। ह्रीं श्रीं आं ब्राह्मैनमः। इंमाहेश्वर्य्यैनमः। उँकौमारीश्री पादुकाम्पूजयामिनमः। ऋंवैष्ण-वी श्री०। मध्यचतुरस्रस्य बाह्यादिकोणे ह्रीं श्रीं लृं वाराहीश्री० ऐंइन्द्राणीश्री० औंचामुण्डाश्री० अः महालक्ष्मी श्री०। अभ्यन्तरचतुरस्रस्य पश्चिमादिद्वारचतुष्टये। त्रिखण्डाक्षमुद्राश्री० ह्रीं सर्व्वसङ्क्षोभिणीमुद्रा श्री० ह्रीं सर्व्वविद्राविणीमुद्रा श्री० क्लींसर्व्वाकर्षिणीमुद्राश्री०। अभ्यन्तरचतुरस्रस्य बाह्यादिकोणचतुष्टये ल्कुंसर्व्वा-वेशकरीमुद्राश्री० सर्व्वोन्मादकरीमुद्राश्री० क्रौंमहाङ्कुशामुद्राश्रीपादु० ल्कुंखेचरी-मुद्राश्री० ततस्त्रिवलये बीजमुद्राश्री० योनिमुद्राश्री० चार्व्वाकदर्शनायनमः। ततो हस्तेनार्घ्यजलङ्गृहीत्वा। अत्र त्रैलोक्यमोहनचतुरस्रचक्रे श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीस-मधिष्ठिते एता ईशित्वाद्याः प्रकटयोगिन्यः समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः सर्व्वोपचारैस्सम्पूजितास्सन्तु इति मूलेनार्प्पयेत्। ततः षोडशदलेषु पश्चिमदलादारभ्य देव्या ~ प्रदक्षिणाक्रमेण पूजयेत्। ह्रीं श्रीं अंकामाकर्षिणी नित्याकलाश्री० आंबुद्धयाकर्षिणी नित्याकलाश्री० इंअहङ्काराकर्षिणी नित्याकला श्री० ईंशब्दाकर्षिणी नित्याकलाश्री० उंरूपाकर्षिणी नित्याकलाश्री० ऊँस्पर्शा-कर्षिणी नित्याकलाश्री० ऋंरसाकर्षिणी नित्याकलाश्री० ॠंगन्धाकर्षिणी नित्याकलाश्री० लृं चिन्ताकर्षिणी नित्याकलाश्री० लॄं धैर्य्याकर्षिणी नित्याकला श्री एंस्मृत्याकर्षिणी नित्याकलाश्री० ऐंनामाकर्षिणी नित्याकलाश्री ओंबीजाक-र्षिणी नित्याकला श्री० अंअमृताकर्षिणी नित्याकलाश्री० अः शरीराकर्षिणी नित्याकलाश्री रेखायाम्बौद्धदर्शनायनमः। ततो हस्तेनार्घ्यजलङ्गृहीत्वा। अत्र सर्व्वाशापरिपूरके षोडशदलचक्रे श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीसमधिष्ठिते एता ~ कामाक-र्षिण्याद्या गुप्तयोगिन्यः समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः सर्व्वोपचारैः पूजितास्सन्तु। इतिमूलमन्त्रेण देव्यै निवेदयेत्। ततोऽष्टदलचक्रे पूर्व्वदलेषु ह्रीं

की पूजा करे। मध्य में ह्रीं श्रीं कामेश्वर्यै नमः इत्यादि मन्त्रों से, पूर्व द्वार में 'गंगणपतये नमः' से, पश्चिम उत्तर दक्षिण द्वारों की पूजा करे। वाह्य चतुरस्र की वाहरी रेखा में पश्चिमादि द्वार चतुष्टयों की पूजा करे। उपरिलिखित क्रम से नीचे ऊपर मध्य आदि की पूजा कर बाह्य आभ्यन्तर चतुरस्र की पूजा करे। फिर षोडशदलों में पश्चिम दल से आरम्भ कर देवी की प्रदक्षिणाक्रम से पूजा करे। फिर हाथ में अर्घ्यजल लेकर समस्त आशाओं के परिपूरक षोडशदल चक्र में श्रीमहात्रिपुर सुन्दरी के साथ गुप्त योगिनी समुद्र सिद्धि सायुध सवाहन सपरिवार की सम्पूर्ण अर्चा करे मूलमन्त्र से पूजा देवी को समर्पित करे, फिर अष्टदल चक्र में पूर्व दलों में 'ह्रीं श्रीं कं खं गं०' इत्यादि मन्त्र पढ़े, पूजा करे और देवी को मूल मन्त्र से समर्पित करे। फिर सौभाग्यदायक चतुर्दशचक्र में भगवती की सपरिवार सायुध पूजा करे मूल मन्त्र से समर्पित करे। फिर बाह्य दशारचक्र में पश्चिम

श्रीं कँ खँ गँ घँ ङँ अनङ्गकुसुमादेवीश्री० चँ छँ जँ झँ ञँ अनङ्गमेखलादेवी श्री० टँ ठँ डँ ढँ णँ अनङ्गमदनादेवीश्री० तँ थँ दँ धँ नँ अनङ्गमदनातुरा-देवीश्री० पँ फँ बँ भँ मँ अनङ्गरेखादेवीश्री० यँ रँ लँ वँ अनङ्गवेगिनीदेवीश्री० शँ षँ सँ हँ अनङ्गकुशादेवीश्री० ळँ क्षं अनङ्गमालिनीदेवी श्रीपादुकाम्पूजयामिनमः। अत्र सङ्क्षोभकरेऽष्टदलचक्रे श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी समधिष्ठिते एता अनङ्गकुसुमाद्या गुप्ततरा योगिन्यः समुद्रास्ससिद्धयः सायुधास्सवाहनास्सपरिवारास्सर्व्वोपचारै- पूजितास्सन्तु इत्यर्घ्यजलेन देव्यै समर्प्पयेत्। ह्रीं श्रींसर्व्वसङ्क्षोभिणीशक्ति श्री० सर्व्वद्राविणिशक्तिश्रीपादुकाम्पूजयामिनमः सर्व्वाकर्षिणीशक्तिश्रीपादुकाम्पूजयामि-नमः सर्व्वाह्लादिनीशक्तिश्री० सर्व्वमोहिनीशक्तिश्री० सर्व्वस्तम्भिनीशक्तिश्री० सर्व्व-ज्जृम्भणीशक्तिश्री० सर्व्ववशङ्करीशक्तिश्री० सर्व्वरञ्जिनीशक्तिश्री० सर्व्वोन्मादिनी-शक्तिश्री० सर्व्वार्त्थसाधनीशक्तिश्री० सर्व्वाशापरिपूरणीशक्तिश्री० सर्व्वमन्त्रमयीशक्ति श्री० सर्व्वद्वन्द्वक्षयङ्करीशक्तिश्री० वह्निः साङ्ख्यनैय्यायिकदर्शनेभ्योनमः। अत्र सौभाग्यदायके चतुर्द्दशचक्रे श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीसमधिष्ठिते एतास्सङ्क्षोभिण्या-द्याश्शक्तयः सम्प्रदाययोगिन्यः समुद्रास्ससिद्धयः सायुधास्सवाहनास्सपरिवारास्स-र्व्वोपचारैस्सम्पूजितास्सन्तु। इत्यर्घ्यजलेन मूलन्देव्यै समर्प्प येत्॥ ततो वहिर्द्द-शारचक्रे पश्चिमादिदशान्तं पूजयेत्। ह्रीं श्रींसर्व्वसिद्धिप्रदादेवी श्री० सर्व्वसम्पदा-देवीश्री० सर्व्वप्रियङ्करीशङ्करीदेवीश्री० सर्व्वमङ्गलकारिणीदेवीश्री० सर्व कामप्रदा-देवीश्री० सर्व्वदु ःखविमोचनीदेवीश्री० सर्वाङ्गसुन्दरीदेवीश्री० सर्व्वमृत्युविना-शिनीदेवीश्री० सर्व्वदुःखविनाशिनी देवीश्री० सर्वसौभाग्यदायिनीदेवीश्री०। अत्र सर्व्वाशापरिपूरके चक्रे श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीसमधिष्ठिते एतास्सर्व्वसिद्धिप्रदाद्यादेव्य-ःकुलकौलिनीयोगिन्यः समुद्रास्ससिद्धयस्सायुधास्सवाहनास्सपरिवारास्सर्व्वोपचा-रैस्सम्पूजितास्सन्तु। इत्यर्घ्यजलेन मूलेन देव्यै समर्प्पयेत्। ततोऽन्तर्द्दशारचक्राग्राद्द

से पूजा प्रारम्भ करे। फिर मूल मन्त्र से देवी को समर्ति करे। फिर अन्तर्दशार चक्राग्र से दक्षिण तक 'ह्रीं श्रीं सर्वज्ञा देवी श्री०' इत्यादि मन्त्र पढ़े। फिर मूल मन्त्र से देवी को पूजा अर्पित करे फिर अष्टारचक्र में चक्र से पश्चिमादि दक्षिण दिशा तक पूजा करे। 'ह्रीं श्रीं अं आं०' इत्यादि मन्त्र पढ़कर सर्वरोगहर अष्टारचक्र में श्रीं महात्रिपुरसुन्दरी देवी की पूजाकर अर्घ्यजल देवी को समर्पित करे। फिर अभ्यन्तर कोण त्रय में तीन बार पुष्पाञ्जलि दे। चक्र के मध्य में दक्षिण की ओर बायें, नीचे, दक्षिण आगे की पूजा मन्त्रों से करे। फिर त्रिकोण के मध्य में ईकार रूपाकाम कला का ध्यान करे। फिर ब्रह्म विष्णु रुद्र ईशान सदाशिव पंचप्रेतों व नवग्रहों का पूजन कर माला लेकर यथा शक्ति जप करे। जप अर्पितकर यथा शक्ति स्तोत्रों से स्तुति करे। प्रदक्षिणा

क्षिणान्तंय्यावत्पूजयेत् । ह्रीं श्रींसर्व्वज्ञादेवीश्री० सर्व्वशक्तिमयीदेवीश्री० सर्व्वैश्वर्य्यप्रदादेवीश्री० सर्व्वज्ञानमयीदेवीश्री० सर्व्वव्याधिविनाशिनीदेवीश्री सर्व्वाशापरिपूरणीदेवीश्री० सर्व्वपापहरादेवीश्री० सर्व्वानन्दमयीदेवीश्री० सर्व्वान्तिकामरूपिणीदेवीश्री० सर्व्वेप्सितफलप्रदादेवीश्री० अत्र सर्व्वरक्षाकरे अन्तर्द्दशारचक्रे त्रिपुरमालिनी श्रीत्रिपुरसुन्दरीसमधिष्ठते एतास्सर्व्वज्ञाद्यानिर्ब्भययोगिन्यस्समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैस्सम्पूजिताः सन्तुः । इत्यर्ग्घ्यजलेनमूलेन देव्यै समर्पयेत् । ततोऽष्टारचक्रे चक्रात्पश्चिमादिदक्षिणान्तं यावत्पूजयेत् । ह्रीं श्रीं अँ आँ इँ ईं उँ ऊँ ऋँ ॠँ लृँ ॡँ एँ ऐं ओं औं अँ अः वशिनीवाग्देवताश्री० कँ खँ गँ घँ ङँ कामेश्वरीवाग्देवताश्री० चँ छँ जँ झँ ञँ मोदिनीवाग्देवताश्री० टँ ठँ डँ ढँ णँ विमलावाग्देवताश्री० तँ थँ दँ धँ नँ अव्ययावाग्देवताश्री० पँ फँ बँ भँ मँ जयिनीवाग्देवताश्री० यँ रँ लँ वँ सर्वेश्वरीवाग्देवताश्री० शँ षँ सँ हँ क्षँ कौलिनीवाग्देवताश्री० ।। अत्र सर्व्वरोगहरे अष्टारचक्रे श्रीमहात्रिपुरसुन्दरींसमधिष्ठिते एता वशिन्याद्या रहस्ययोगिन्यः समुद्राः ससिद्धयस्सायुधास्सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजितास्सन्तु । इत्यर्ग्घ्यजलेन मूलेन देव्यै समर्प्पयेत् । अभ्यन्तरकोणत्रये पुष्पाञ्जलिं व्वारत्रयन्दद्यात् । चक्रमध्ये दक्षिणे उत्तमबाणायनमः । वामे मोहधनुषेनमः । तदधः कर्क्कशायनमः । दक्षिणे स्तम्भाङ्कुशायनमः । अग्रे क्लीं कामेश्वर्य्यैनमः । आंचक्रिण्यैनमः ऐंभगशालिन्यैनमः । मूलेन श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्य्यैनमः । ततः त्रिकोणमध्ये कामकलाभीकाररूपां ध्यायेत् । ततो ब्रह्मविष्णुरुद्रेशानसदाशिवेभ्यः पञ्जप्रेतेभ्योनमः नवग्रहेभ्योनम इत्यभ्यर्च्चर्य मालाङ्गृहीत्वा यथाशक्ति जपेत् । ततः गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वङ्गृहाणास्मत्कृतञ्जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ।। इति जलेन देव्या वामहस्ते समर्प्पयेत् । जपन्देव्या गृहीतन्तेजोमयँ व्विभाव्य । विधिहीनङ्क्रियाहीनम्भक्तिहीनञ्च यद्भवेत् ।। पूर्णं भवतु तत्सर्व्वं त्वत्प्रसादात्त्रिलोचने ।। इति यथाशक्ति स्तुत्वा प्रदक्षिणन्त्रि ~ प्रणम्य कृतार्त्थमात्मानम्भावयेत् । योनिमुद्राम्प्रदर्श्शयेत् । संहारमुद्रया विसर्ज्जयेत् । निर्माल्यङ्गृहीत्वा ऐशान्यान्त्रिकोणमण्डलङ्कृत्वा ऐंचँचण्डेश्वर्य्यैनमः इत्यभ्यर्च्चर्य निर्म्माल्यं शिरसि धृत्वा यथासुखँ व्विहरेत् । श्रीविद्याज्ञानमात्रेण सर्व्वसिद्धिः प्रजायते ।। अतो विद्या प्रदातव्या नामक्ताय कदाचन । इति पूजापद्धतिः ।।

करे और तीन बार प्रणाम करे। योनि मुद्रा का प्रदर्शन कर संहार मुद्रा से विसर्जन करे। निर्माल्य को लेकर ऐशान्य दिशा में त्रिकोण मण्डल बनाकर 'ऐं चं चण्डेश्वर्य्यैनमः' कहकर निर्माल्य को अपने मस्तक में रखकर यथा सुख विहार करे। श्री विद्या के ज्ञान मात्र से समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, इसलिये यह विद्या अभक्त को कभी न बतानी चाहिए। इति पूजा पद्धतिः ।।

पाँचवाँ अध्याय

श्री श्रीयन्त्र का बृहत् पूजा विधान

श्री विद्या (श्री यन्त्र) के पूजन का विस्तृत विधान 'मन्त्रमहोदधि' में मिलता है। साधकों के कल्याणार्थ हम उसे भी प्रस्तुत करते हैं—

तारं मायां च कमलामादौ बीजत्रयं पठेत्।
ब्रह्मझिण्टीशगोविन्दधरा मायेति चादिमम् ।।१।।
आकाशभृगुचक्र्यभ्रमांसमायाद्वितीयकम् ।
हंसधात्रीक्षमामाया तृतीयं बीजमीरितम् ।।२।।
वाक्काभशक्तिसंज्ञं तु क्रमाद्बीजत्रयं भवेत्।
इयं षडर्णा श्रीमायाकामवाक्छक्तिसम्पुटा ।।३।।
अनेक पुण्यसम्प्राप्या श्रीविद्याषोडशाक्षरी।

षोडशी मन्त्र का उद्धार—(कूटत्रय के) आदि में तार (ॐ) माया (ह्रीं) एवं कमला (श्रीं) ये तीनों बीज बोलने चाहिए। ब्रह्म (क) झिंटीश (ए) गोविन्द (ई) धरा (ल) एवं माया (ह्रीं) अर्थात् 'कएईलह्रीं' यह प्रथम कूट है। आकाश (ह) भृगु (स) चक्री (क) अभ्र (ह) मांस (ल) तथा माया (ह्रीं) अर्थात् 'हसकहलह्रीं'—यह द्वितीय कूट है। हंस (स) धाता (क) क्षमा (ल) एवं माया (ह्रीं) अर्थात् 'सकलह्रीं' यह तृतीय कूट है। इन तीनों में से प्रथम वाग्बीज, द्वितीय कामबीज तथा तृतीय शक्ति बीज कहलाता है।

इस षोडशाक्षरा (ॐ ह्रीं श्रींकएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं) विद्या को श्रीमाया, काम, वाग्, एवं शक्ति—इन पाँचों बीजों से सम्पुटित करने पर अनेक पुण्यों से प्राप्त होने वाली षोडशाक्षरी श्रीविद्या बनती है।

मूल षोडशी मन्त्र—श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः ॐ ह्रीं श्रीं कएईल ह्रीं हसकहल ह्रीं सकल ह्रीं सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं।

मुनिः स्याद्दक्षिणामूर्तिः पंक्तिश्छन्दः समीरितम् ।।४।।
देवताजगतामादिः श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी।
बीजमैं भृगुरौः शक्तिः कामबीजं तु कीलकम् ।।५।।

मूर्द्धास्यहृद्गुह्यपादे नाभौ भुन्यादिकान्न्यसेत् ।

टिप्पणी=विनियोग—अस्य श्री त्रिपुरसुन्दरी मन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिऋंषिः पंक्तिश्छन्दः श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी देवता ऐं बीजं सौः शक्तिः क्लीं कीलकं ममाभीष्ट सिद्धये जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यास—

दक्षिणामूर्तये नमः—मूर्ध्नि ।
पंक्तिच्छन्दसे नमः—मुखे ।
त्रिपुरसुन्दर्य्यै देवतायै नमः—हृदि ।
ऐं बीजाय नमः—गुह्ये ।
सौः शक्तये नमः—पादयोः ।
क्लीं कीलकाय नमः—नाभौ ।

न्यासान्सर्वान्प्रकुर्वीत मायाश्री बीजपूर्वकान् ।।६।।
मध्यानामाकनिष्ठासु ज्येष्ठयोस्तर्जनीद्वयो. ।
तले पृष्ठे च करियोर्विन्यसेद्द्विष्क्रमादिमान् ।।७।।
श्री कण्ठानन्तंसौवर्णान् बिन्दु सर्गसमन्वितान् ।
नमोन्तान्करशुद्ध्याख्यो न्यासोयं परिकीर्तितः ।।८।।

करशुद्धिन्यास—(इस महाविद्या के) सभी न्यास प्रारम्भ में माया एवं श्रीबीज लगाकर करने चाहिये । बिन्दुसहित श्रीकण्ठ एवं अनन्त (अं आ) तथा विसर्ग सहित 'सौ' (सौः) इन वर्णों के अन्त में 'नमः' लगाकर क्रम से मध्यमा, अनामिका एवं कनिष्ठिका तथा फिर अंगुष्ठ तर्जनी एवं करतल के पृष्ठ में न्यास करना चाहिये । यह कर शुद्धि न्यास कहलाता है

करशुद्धिन्यास—

ह्रीं श्रीं अं मध्यमाभ्यां नमः ।
ह्रीं श्रीं आं अनामिकाभ्यां नमः ।
ह्रीं श्रीं सौः कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
ह्रीं श्रीं अं अंगुष्ठाभ्यां नमः ।
ह्रीं श्रीं आं तर्जनीभ्यां नमः ।
ह्रीं श्रीं सौः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

आसनः—माया (ह्रीं) काम (क्लीं) एवं शक्ति (सौः) को प्रथम आसन के साथ लगाकर, वियदारूढ वाग् (हैं) काम (क्लीं) एवं शक्ति (सौः) को द्वितीय आसन के प्रारम्भ में लगाकर, इन्हीं बीजों को तृतीय आसन के प्रारम्भ में लगाकर तथा माया (ह्रीं) काम (क्लीं) एवं भग तथा 'बिन्दु सहित फान्त मांस (ब्लें) को चतुर्थ आसन के प्रारम्भ में लगाकर करना चाहिए ।

आसन न्यास—

ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं सौः देव्यासनाय नमः—पादयोः ।
ह्रीं श्रीं हैं क्लीं सौः चक्रासनाय नमः—जंघयोः ।
ह्रीं श्रीं हैं क्लीं सौः सर्वमन्त्रासनाय नमः—जान्वोः ।
ह्रीं श्रीं हैं क्लीं ब्लें साध्यसिद्धासनाय नमः—लिङ्गे ।
ततः षडंगं कुर्वीत पञ्चभिस्त्रिभिरेकतः ।
एकेनैकेपंचार्णैर्मन्त्रस्य क्रमतः सुधीः ॥९॥

षडङ्गन्यास—

श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः हृदयाय नमः ।
ॐ ह्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा ।
कएईल ह्रीं शिखायै वषट् ।
हसकहल ह्रीं कवचाय हुम् ।
सकल ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट् ।
सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं अस्त्राय फट् ।

मूलविद्यां समुच्चार्य्यं प्रणवादिनमोंतिकाम् ।
मंध्यमानामिकाभ्यां तु ब्रह्मरन्ध्रे प्रविन्यसेत् ॥१०॥
सुधां स्रवन्तीं वर्णेभ्यः प्लावयन्तींनिजां तनुम् ।
प्रदीपकलिकाकारां महासौभाग्यदां स्मरेत् ॥११॥
मुद्रां कृत्वावामकर्णे परसौभाग्यदण्डिनीम् ।
वाममूर्द्धादिपादान्तं तथा मूलं प्रविन्यसेत् ॥१२॥
त्रिखण्डया मुद्रया तु भाले मूलं न्यसेत्तथा ।
त्रैलोक्यस्पाखिलस्याहं कर्त्तेतिस्वं विचिन्तयेत् ॥१३॥
रिपुजिह्वाग्रहां मुद्रां दर्शयन्सर्वविद्विषः ।
निगृह्णामीति संचिन्त्यपादमूले तथान्यसेत् ॥१४॥
मुखे संवेष्टयन्न्यस्येत्पुनर्दक्षिणकर्णतः ।
विन्यस्य वामकर्णान्तं कण्ठाद्वक्त्रं ततो न्यसेत् ॥१५॥
तारसंपुटितां विद्यां सर्वाङ्गेविन्यसेत्पुनः ।
योनि मुद्रां मुखेबद्ध्वा नमेत्त्रिपुरसुन्दरीम् ॥१६॥

जगद्वशीकरण न्यास—मन्त्राक्षरों से अमृत बरसाती हुई और उससे अपने शरीर को आप्लावित करती हुई, प्रदीप कलिका के समान आकार वाली, ब्रह्मरन्ध्र में स्थित, सौभाग्यदा देवी का ध्यान करते हुए मूलमन्त्र के प्रारम्भ में 'प्रणव' तथा अन्त में 'नमः' लगाकर मध्यमा एवं अनामिका से शिर में न्यास करना चाहिए ।

फिर बाँयें कान में परसौभाग्यदण्डिनी मुद्रा करके बाँयी ओर शिर से पैर तक प्रणवादि एवं नमः अन्त वाले मूलमन्त्र का न्यास करना चाहिए।

'सब लोगों का कर्त्ता मैं हूँ'—ऐसा विचार करते हुए त्रिखण्डा मुद्रा से प्रणवादि एवं नमोन्त मन्त्र का ललाट में न्यास करना चाहिए।

रिपुजिह्वाग्रहा मुद्रा को दिखाते हुए तथा 'मैं सब शत्रुओं का निग्रह कर रहा हूँ'—इस भावना से प्रणवादि नमोन्त मूलमन्त्र का पादमूल में न्यास करना चाहिये।

फिर मुख में सँवेष्टित करते हुए प्रणवादि नमोन्त मूलमन्त्र का न्यास करना चाहिए। तत्पश्चात् दाहिने कान से बाँये कान तक उसी प्रकार न्यास कर कण्ठ से मुख तक उसी प्रकार न्यास करना चाहिए।

फिर प्रणवपुटित विद्या का सर्वाङ्ग में न्यास करना चाहिये। और फिर मुख पर योनि मुद्रा बाँधकर त्रिपुरसुन्दरी देवी को प्रणाम करना चाहिये।

त्रिखण्डा मुद्रा—

परिवर्त्य करौ स्पष्टावङ्गुष्ठौ कारयेत् समौ।
अनामान्तर्गतेकृत्वा तर्जिन्यौ कुटिलाकृति ॥१७॥
कनिष्ठिके नियुज्जीत निजस्थाने महेश्वरि।
त्रिखण्डेयं समाख्याता त्रिपुराह्वान कर्मणि ॥१८॥

योनि मुद्रा—

मिथः कनिष्ठिके बद्ध्वा तर्जनीभ्यामनामिके।
अनामिकोर्ध्वं संश्लिष्ट दीर्घमध्यमयोरधः॥
अंगुष्ठाग्र द्वयं न्यस्येद् योनिमुद्रेयमीरिता ॥१९॥

पर सौभाग्यदण्डिनी मुद्रा—

वामे मुष्टिं दृढं बद्ध्वा तर्जनीं प्रविसारयेत्।
भ्रामयेद् वामकर्णान्तं मुद्रा सौभाग्यदण्डिनी ॥२०॥

रिपुजिह्वाग्रहण मुद्रा—

अंगुष्ठगर्भितां मुष्टिं बध्नीयात् दक्षपाणिना।
रिपुजिह्वाग्रहाख्येयं मुद्रोक्ता शत्रुनाशिनी ॥२१॥
ब्रह्मरन्ध्रेहस्तमूले भाले विद्यां प्रविन्यसेत्।
अंगुष्ठानामिकाभ्यां तु न्यासः सम्मोहनाभिधः ॥२२॥
जगद्वश्यकराख्योयं न्यासः संकीर्तितो मया।
संस्मरन्नरुणामूलं सुन्दरीप्रभया जगत् ॥२३॥

सम्मोहन न्यास—देवी की आभा से लालवर्ण वाले विश्व का ध्यान करते हुए, अंगुष्ठ एवं अनामिका द्वारा ब्रह्मरन्ध्र, मणिबन्ध एवं ललाट में मूल विद्या का न्यास करना चाहिए। यह न्यास सम्मोहन संज्ञक है।

पादयोर्जङ्घयोर्न्यस्येज्जान्वोश्चकटिभागयोः ।
लिङ्गे पृष्ठे नाभिदेशे पार्श्वयोःस्तनयोरपि ॥२४॥
अंसयोः कर्णयोर्ब्रह्मरन्ध्रे वक्त्रे च नेत्रयोः ।
कर्णयोः कर्णवेष्टेपिमूलस्यैकैकमक्षरम् ॥२५॥
संहारन्यासउक्तोयं ततो वाग्देवतां न्यसेत् ।

अक्षरन्यास (संहार न्यास)—दोनों पैर, जंघा, जानु, कटिभाग, लिङ्ग, पीठ, नाभि, बगल, स्तन, कन्धे, कान, ब्रह्मरन्ध्र, मुख, नेत्र, कान एवं कर्णशष्कुली में यथा—क्रमेण मन्त्र के एक-एक अक्षर का न्यास करना चाहिए। यह संहारसंज्ञक न्यास कहा गया है।

अक्षर न्यास विधि—

श्रीं नमः—पादयोः ।
ह्रीं नमः—जंघयोः ।
क्लीं नमः—जान्वोः ।
ऐं नमः—कठिभागयोः ।
सौः नमः—लिङ्गे ।
ॐ नमः—पृष्ठे ।
ह्रीं नमः—नाभि देशे ।
श्रीं नमः—पार्श्वयोः ।
कएईलह्रीं नमः—स्तनयोः ।
हसकहलह्रीं नमः—अंसयोः ।
सकलह्रीं नमः—कर्णयोः ।
सौः नमः—ब्रह्मरन्ध्रे ।
ऐं नमः—मुखे ।
क्लीं नमः—नेत्रयोः ।
ह्रीं नमः—कर्णयोः ।
श्रीं नमः—कर्णवेष्टे ।

तासां बीजानि नामानि न्यासस्थानानि च ब्रुवे ॥२६॥
अग्नि भूधर मांसाढ्योर्घीशोबीजंशशाङ्कयुक् ।
षोडशस्वरबीजाढ्यां वशिनीं शिरसि न्यसेत् ॥२७॥
क्रोधीशमांसयुङ्माया द्वितीयं बीजमीरितम् ।
कवर्गपूर्वबीजाद्यां भाले कामेश्वरीं न्यसेत् ॥२८॥

दीर्घखड्गीशरान्ताढ्यशान्तिबिन्दुसमन्विताम् ।
चवर्गतद्बीजयुतां भ्रूमध्ये मोहिनीं न्यसेत् ।।२९।।
अर्घीशोवायुमांसस्थोबिन्द्वाढ्यस्तत्तुरीयकम् ।
टवर्गबीजपूर्वां तु विमलां विन्यसेद्गले ।।३०।।
शूलि वैकुण्ठरेफस्थं वामनेत्रंसविन्दुतत् ।
तवर्ग बीज संयुक्तांविन्यसेदरुणांहृदि ।।३१।।
वामकर्णो वियद्धंसमांसवालानिलेन्दुयुक् ।
पवर्ग तद्बीज पूर्वांजयिनींनाभितोन्यसेत् ।।३२।।
पाशीतन्द्री रेफवायुसयुतादीपिकेन्दुयुक् ।
यवर्ग बीजाद्यां मूलाधारे सर्वेश्वरीं न्यसेत् ।।३३।।
संवर्तकमहाकालरेफास्थाशान्तिरिन्दुयुक् ।
कौलिनीशादिबीजाद्यांन्यसेत्पादान्तभ्रूरुतः ।।३४।।
वाग्देवतायैहार्दान्तं नामान्ते प्रोच्चरेत्पदम् ।
उक्तोवाग्देवतान्यासः सृष्टिन्यासमथाचरेत् ।।३५।।

वाग्देवतान्यास—संहार के बाद वाग्देवतान्यास करना चाहिए। उसके बीजों के नाम एवं स्थान इस प्रकार हैं—

अग्नि, भूधर, भांसल एवं शशाङ्क सहित अर्धीश (ब्लूं) के पहले १६ स्वर लगाकर वशिनी का शिर पर न्यास करना चाहिये।

क्रोधीश एवं मांस के साथ माया (कलह्रीं) द्वितीय वीज कहलाता है। इसके पहले कवर्ण लगाकर इसके साथ कामेश्वरी का ललाट पर न्यास करना चाहिए।

दीर्घ, खड्गीश एवं रान्त के साथ शान्ति एवं बिन्दु लगाने से 'न्ब्लीं' बीज बनता है। चवर्ग एवं इस बीज के साथ मोहनी का भ्रूमध्य में न्यास करना चाहिए।

वायु एवं मांस सहित सबिन्दु अर्धीश (य्लूं) चतुर्थ बीज कहलाता है। टवर्ग और इस बीज के साथ विमला का कण्ठ में न्यास करना चाहिए।

शूली, वैकुण्ठ एवं रेफ सहित सबिन्दु वामनेत्र (ज्म्रीं) यह पञ्चम बीज है। तवर्ग एवं इस बीज के साथ अरुण का हृदय में न्यास करना चाहिये।

वियद्, हंस, मांस, बाल एवं अनिल के साथ सबिन्दु वामकर्ण (हस्ल्व्यूं) यह षष्ठ बीज है। पवर्ग एवं इस बीज के साथ जयिनी का नाभि में न्यास करना चाहिए।

पाशी, तन्द्री, रेफ एवं वायु के साथ सबिन्दु दीपिका (झ्म्र्यूं) सप्तम बीज है। यवर्ग एवं इस बीज के साथ सर्वेश्वरी का मूलाधार में न्यास करना चाहिए।

संवर्तक, महाकाल एवं रेफ के साथ सबिन्दु शान्ति (क्ष्म्रीं) यह अष्टम बीज है। शवर्ग एवं इस बीज के साथ कौलिनी का ऊरु से पैरों तक न्यास करना चाहिए।

'वाग्देवतायै' तथा अन्त में हार्द (नमः) पद प्रत्येक नाम के बाद लगाना चाहिए। (इस प्रकार) वाग्देवता न्यास कहा गया है।

वाग्देवता न्यास विधि—

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः ब्लूं वाशिनी वाग्देवतायै नमः—शिरसि

कं खं गं घं ङं कलह्रीं कामेश्वरी वाग्देवतायै नमः—ललाटे

चं छं जं झं ञं न्ब्ली मोहिनी वाग्देवतायै नमः—भ्रूमध्ये

टं ठं डं ढं णं य्लूं विमला वाग्देवतायै नमः—कण्ठे

तं थं दं धं नं ज्म्रीं अरुणा वाग्देवतायै नमः—हृदि

पं फं बं भं मं ह्स्ल्व्यूं जयिनी वाग्देवतायै नमः—नाभौ

यं रं लं वं झ्म्य्रूं सर्वेश्वरी वाग्देवतायै नमः—मूलाधारे

शं षं सं हं लं क्षं क्ष्म्रीं कौलिनी वाग्देवतायै नमः ऊर्वादिपादान्तम्।

ब्रह्मरन्ध्रे ललाटे च नेत्रयोः कर्णयोर्नसोः।
गण्डदन्तोष्ठजिह्वासुमुखकूपे च पृष्ठतः॥३६॥
सर्वाङ्गे हृदये न्यस्येत्स्तनकुक्षिध्वजेषु च।
एकैकार्णमथो मूर्ध्नि सर्वेण व्यापकं चरेत्॥३७॥

सृष्टि न्यास—ब्रह्मरन्ध्र, ललाट, नेत्र, कान, नासिका, गण्ड, दाँत, ओष्ठ, जिह्वा, मुख, पीठ सर्वाङ्ग हृदय स्तन कुक्षि एवं लिंग पर क्रम से एक-एक वर्ण का न्यास करना चाहिए। तथा समस्त मन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिए।

सृष्टि न्यास विधि—

श्रीं नमः—ब्रह्मरन्ध्रे।

ह्रीं नमः—ललाटे।

क्लीं नमः—नेत्रयोः।

एं नमः—कर्णयोः।

सौः नमः—नासोः।

ॐ नमः—गण्डे।

ह्रीं नमः—दन्तेषु।

श्रीं नमः—ओष्ठयोः।

कएईल ह्रीं नमः—जिह्वायाम्।

ह्सकहल ह्रीं नमः—मुखमध्ये।

सकल ह्रीं नमः—पृष्ठे ।
सौः नमः—सर्वाङ्गे ।
ऐं नमः—हृदि ।
क्लीं नमः—स्तनयोः ।
ह्रीं नमः—कुक्षौ ।
श्रीं नमः—लिङ्गे ।

स्थिति न्यास विधि—

श्रीं नमः—अंगुष्ठयोः ।
ह्रीं नमः—तर्जन्योः ।
क्लीं नमः—मध्यमयोः ।
ऐं नमः—अनामिकयोः ।
सौः नमः—कनिष्ठिकयोः ।
ॐ नमः—ब्रह्मरन्ध्रे ।
ह्रीं नमः—मुखे ।
श्रीं नमः—हृदि ।
कएईलह्रीं नमः—नाभ्यादिपादान्तम् ।
हसकहलह्रीं नमः—कण्ठादिनाभ्यन्तम् ।
सकलह्रीं नमः—ब्रह्मरन्ध्रात् कण्ठान्तम् ।
सौः नमः—पादांगुष्ठयोः ।
ऐं नमः—पादतर्जन्योः ।
क्लीं नमः—पादमध्यमयोः ।
ह्रीं नमः—पादानामिकयोः ।
श्रीं नमः—पादकनिष्ठयोः ।

अथ पञ्चविधं न्यासं वक्ष्ये सर्वेष्टसिद्धिदम् ।
मन्त्रपञ्चावृत्तिरूपं येन तद्रूपतां व्रजेत् ।।३८।।
मूर्ध्निवक्त्रे दृशोः श्रुत्योर्नसोर्गण्डोष्ठयोरपि ।
वक्त्रमध्ये दन्तपंक्तयोर्वदनेविन्यसेत्क्रमात् ।।३९।।
एकैकवर्ण विद्यायाइत्येको न्यासईरितः ।
शिखाशिरोललाटंभ्रूघ्राणवक्त्रे षडर्णकान् ।।४०।।
करसन्धिषुसाग्रेषु दशेतिस्याद्द्वितीयकः ।
शिरोललाटनेत्रास्येजिह्वायां षण्न्यसेत्पुनः ।।४१।।
पादसन्धिषुसाग्रेषु दशेतिस्यात्तृतीयकः ।
स्वरस्थाने चतुर्थस्तुललाटे च गले हृदि ।।४२।।

नाभौ च मूलाधारेपि ब्रह्मरन्ध्रे मुखे गुदे।
आधारे हृद्ब्रह्मरन्ध्रे करयोः पादयोर्हृदि ।।४३।।
एवं पञ्चविधं कृत्वा विद्यां प्रणवसम्पुटाम्।
सर्वस्मिन्व्यापयेदंगे नमोन्तां तां हृदि न्यसेत् ।।४४।।

पंचावृत्ति न्यास—अब सर्वेष्टसिद्धिदायक पञ्चावृत्ति रूपी पञ्चविध न्यास का वर्णन है जिससे साधक तद्‌रूपता प्राप्त कर लेता है।

शिर, मुख, नेत्र, कान, नासिका, गण्ड, ओष्ठ, मुखकूप, दन्तपंक्तियाँ तथा मुख से सक्रम विद्या के एक-एक वर्ण का न्यास करना चाहिए। यह प्रथम न्यास कहलाता है।

शिखा, शिर, ललाट, भ्रू, नासिका एवं मुख में मन्त्र के ६ वर्णों का तथा दोनों हाथों की सन्धि एवं अग्रभाग में शेष वर्णों का न्यास करना चाहिए। यह द्वितीय न्यास कहलाता है।

शिर, ललाट, दोनों नेत्र, मुख एवं जिह्वा पर मन्त्र के ६ वर्ण तथा दोनों पैरों की सन्धियों एवं उनके अग्रभाग पर शेष वर्णों का न्यास करना चाहिए यह तृतीय न्यास है।

मातृका न्यास में बतलाये गये स्वरस्थानों में मन्त्र के १६ वर्णों का न्यास करना चतुर्थ न्यास कहलाता है।

ललाट, कण्ठ, हृदय, नाभि, मूलाधार, ब्रह्म रन्ध्र, मुख, गुदा, आधार, हृदय, ब्रह्मरन्ध्र, दोनों हाथ, पैर तथा हृदय में मन्त्र के एक-एक वर्ण का न्यास करना चाहिए—यह पञ्चम न्यास है।

इस प्रकार पञ्चविधि न्यास करने के बाद प्रणव सम्पुटित विद्या को सब अंगों में व्यापक करना चाहिए तथा मूलविद्या के बाद 'नमः' लगाकर हृदय में न्यास करना चाहिए।

टिप्पणी—इस न्यास में मूलमन्त्र की ५ आवृत्तियाँ होने के कारण यह पञ्चावृत्ति न्यास कहलाता है। यह न्यास पाँच प्रकार का होता है। यथा—

प्रथम न्यास—

श्री नमः मूर्ध्नि।	कएईल ह्रीं नमः दक्षिणगण्डे।
ह्रीं नमः वक्त्रे।	हसकहल ह्रीं नमः वामगण्डे।
क्लीं नमः दक्षिणनेत्रे।	सकल ह्रीं नमः ऊर्ध्वोष्ठे।
ऐं नमः वामनेत्रे।	सौः नमः अधरोष्ठे।
सौः नमः दक्षिणकर्णे।	ऐं नमः वक्त्रमध्ये।
ॐ नमः वामकर्णे।	क्लीं नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ।
ह्रीं नमः दक्षनासायाम्।	ह्रीं नमः अधोदन्तपंक्तौ।
श्रीं नमः वामनासायाम्।	श्रीं नमः वदने।

द्वितीय न्यास—

(१) श्रीं नमः शिखायाम् । (२) ह्रीं नमः शिरसि ।
(३) क्लीं नमः ललाटे । (४) ऐं नमः भवोः ।
(५) सौः नमः नासायाम् । (६) ॐ नमः वक्त्रे ।
(७) ह्रीं नमः दक्षिणबाहुमूले । (८) श्रीं नमः कूर्परे ।
(९) कएईल ह्रीं नमः दक्षिणमणिबन्धे ।
(१०) हसकहलह्रीं नमः दक्षिण अंगुलिमूले ।
(११) सकलह्रीं नमः दक्षिण अंगुल्यग्रे ।
(१२) सौः नमः वामबाहुमूले ।
(१३) ऐं नमः वामकूर्परे ।
(१४) क्लीं नमः वाममणिबन्धे ।
(१५) ह्रीं नमः वामअंगुलिमूले ।
(१६) श्रीं नमः वामअंगुल्यग्रे ।

तृतीय न्यास—

(१) श्रीं नमः शिरसि । (२) ह्रीं नमः ललाटे ।
(३) क्लीं नमः दक्षिणनेत्रे । (४) ऐं नमः वामनेत्रे ।
(५) सौः नमः मुखे । (६) ॐ नमः जिह्वायाम् ।
(७) ह्रीं नमः दक्षपादमूले । (८) श्रीं नमः दक्षगुल्फे ।
(९) कएईलह्रीं नमः दक्षाणंघायाम् ।
(१०) हसकहल ह्रींनमः दक्षपादांगुलिमूले ।
(११) सकलह्रीं नमः दक्षपादांगुल्यग्रे ।
(१२) सौः नमः वामपादमूले । (१३) ऐं नमः वामगुल्फे ।
(१४) क्लीं नमः वामजंघायाम् । (१५) ह्रीं नमः वामपादांगुलिमूले ।
(१६) श्रीं नमः वामपादांगुल्यग्रे ।

चतुर्थ न्यास—

श्रीं नमः ललाटे । कएईलह्रीं नमः दक्षगण्डे ।
ह्रीं नमः मुखवृत्ते । हसकहलह्रीं नमः वामगण्डे ।
क्लीं नमः दक्षनेत्रे । सकल ह्रीं नमः ऊर्ध्वोष्ठे ।
ऐं नमः वामनेत्रे । सौः नमः अधरे ।
सौः नमः दक्षकर्णे । ऐं नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ ।
ॐ नमः वामकर्णे । क्लीं नमः अधोदन्तपंक्तौ ।
ह्रीं नमः दक्षनासायाम् । ह्रीं नमः ब्रह्मरन्ध्रे ।
श्रीं नमः वामनासायाम् । श्रीं नमः मुखे ।

पञ्चम न्यास—

(१) श्रीं नमः ललाटे । (२) ह्रीं नमः कण्ठे ।
(३) क्लीं नमः हृदि । (४) एं नमः नाभौ ।
(५) सौः नमः मूलाधारे । (६) ॐ नमः ब्रह्मरन्ध्रे ।
(७) ह्रीं नमः मुखे । (८) श्रीं नमः गुदे ।
(९) कएईल ह्रीं नमः आधारे । (१०) हसकहल ह्रीं नमः हृदि ।
(११) सकलह्रीं नमः ब्रह्मरन्ध्रे । (१२) सौः नमः दक्षिण हस्ते ।
(१३) ऐं नमः वाम हस्ते । (१४) क्लीं नमः दक्षिणपादे ।
(१५) ह्रीं नमः वामपादे । (१६) श्रीं नमः हृदि ।

इस प्रकार पञ्चावृत्ति न्यास 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः ॐ ह्रीं श्रीं कएईल-ह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्री' मन्त्र का सब अङ्गों में व्यापक न्यास तथा इस मन्त्र के अन्त में 'नमः' लगाकर हृदय में न्यास करना चाहिए ।

षोढान्यासादयोन्यासाः कार्याः सौभाग्यवाञ्छया ।
नोच्यन्ते विस्तरभयान्नैव चावश्यकाश्चते ॥४५॥

षोढान्यास—सौभाग्य की इच्छा से साधक को षोढान्यास आदि सभी न्यास करने चाहिए ।

१. गणेशमातृका न्यास । २. ग्रह मातृका न्यास ।
३ नक्षत्र मातृका न्यास । ४. योगिनी मातृका न्यास ।
५. राशि मातृका न्यास । ६. पीठमातृका न्यास ।

इन ६ न्यासों को षोढान्यास कहते हैं । ये न्यास इस प्रकार हैं—

१. गणेश मातृका न्यास—

विनियोग—अस्य श्री गणेश मातृका मन्त्रस्य दक्षिणामूर्ति ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्री मातृकासुन्दरी देवता ममोपास्य श्रीविद्याङ्गत्वेन षोढान्यासे विनियोगः।

षडङ्गन्यास—

अं कं खं गं घं ङं आं ऐ हृदयाय नमः ।
इं चं छं जं झं ञं ईं क्लीं शिरसे स्वाहा ।
उं टं ठं डं ढं णं ऊं सौः शिखायै वषट् ।
एं तं थं दं धं नं ऐं सौः कवचाय हुम् ।
ओं पं फं बं भं मं औं क्ली नेत्रत्रयाद वौषट् ।
अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः ऐं अस्त्राय फट् ।

ध्यान—

उद्यत्सूर्य सहस्राभां पीनोन्नत पयोधराम् ।
रक्तमाल्याम्बरालेप रक्तभूषणभूषिताम् ॥

पाशांकुशधनुर्बाणभास्वत्पाणि चतुष्टयम् ।
रक्तनेत्रत्रयांस्वर्णमुकुटोद्भासिचन्द्रिकाम् ।।

इस प्रकार ध्यान कर निम्नलिखित मन्त्र से मातृका स्थानों में न्यास करना चाहिए, यथा—

गं अं विघ्नेशह्लीभ्यां नमः ललाटे । गं आं विघ्नराजश्रीभ्यां नमः मुखवृत्ते । गं इं विनायक पुष्टिभ्यां नमः दक्षनेत्रे । गं ईं शिवोत्तम शान्तिभ्यां वामनेत्रे । गं उं विघ्नकृत् स्वस्तिभ्यां नमः दक्षकर्णे । गं ऊं विघ्नहर्तृ सरस्वतीभ्यां नमः वामकर्णे । गं ऋं गण स्वाहाभ्यां नमः दक्षगण्डे । गं ॠं एकदन्तसुमेधाभ्यां नमः वामगण्डे । गं लृं द्विदन्त कान्तिभ्यांनमः दक्षनासायाम् । गं लॄं गजवक्त्रकामिनी-भ्यांनमः वाम नासायाम् । गं एं निरंजनमोहिनीभ्यांनमः ऊर्ध्वोष्ठे । गं ऐं कपर्दी-नटीभ्यांनमः अधरे । गं औं बीर्घजिह्वापार्वतीभ्यांनमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ । गं औ शंकुकर्णज्वालिनीभ्यांनमः अधोदन्तपंक्तौ । गं अं व्रषभध्वजनन्दाभ्यांनमः ब्रह्मरन्ध्रे । गं अः सुरेशगणनायकाभ्यांनमः मुखे । गं कं गजेन्द्रकामरूपिणीभ्यांनमः दक्षबाहु-मूले । गं खं सूर्यकर्णोमाभ्यांनमः दक्षकूर्परे । गं गं त्रिलोचनतेजवतीभ्यांनमः दक्ष-मणिबन्धे । गं घं लम्बोदरसत्याभ्यांनमः दक्षअंगुलिमूले । गं ङं महानन्द विघ्नेशी-भ्यांनमः दक्षअंगुल्यग्रे । गं चं चतुर्मूर्ति सुरूपिवीभ्यांनमः वामबाहुमूले । गं छं सदाशिवकामदाभ्यांनमः वामकूर्परे । गं जं आमोदमदजिह्वाभ्यांनमः वाममणिबन्धे । गं झं दुर्मुखभूतिभ्यांनमः वामअंगुलिमूले । गं ञं सुमुखभौतिकाभ्यांनमः वाम-अंगुल्यग्रे । गं टं प्रमोदसिताभ्यांनमः दक्षपादमूले । गं ठं एक पादरमाभ्यांनमः दक्ष-गुल्फे । गं डं द्विजिह्वमहिषीभ्यांनमः दक्षजघायाम् । ग ढ शूरभजिनीभ्यांनमः दक्षपादांगुलिमूले । गं णं वीरविकर्णाभ्यांनमः दक्षपदांगुल्यग्रे । गं त षण्मुखभृकुटी-भ्यांनमः वामपादमूले । गं थं वरदलज्जाभ्यांनमः वामगुल्फे । गं दं वामदेवदीर्घघोणा-भ्यांनमः वामजघायाम् । गं धं वक्रतुण्डधनुर्धराभ्यांनमः वामपादांगुलिमूले । गं नं द्विरदयामिनीभ्यांनमः वामपादांगुल्यग्रे । गं पं सेनारीरात्रिभ्यांनमः दक्षपार्श्वे । गं फं कामान्धोग्रामणीभ्यां नमः वामपार्श्वे । गं बं मत्तशशिप्रभाभ्यांनमः पृष्ठे । गं भं वित्तलोललोचनाभ्यांनमः नाभौ । ग मं मत्तवाहनचंचलाभ्यांनमः उदरे । गं यं त्वगात्मभ्यां जटिदीप्तिभ्यां नमः हृदि । गं रं मुण्डापुभगाभ्यां नमः दक्षांमे । गं लं खङ्गीदुर्भगाभ्यां नमः ककुदि । गं वं वरेण्यशिवाभ्यांनमः वामांसे । गं शं वृषकेतन-भगाभ्यांनमः हृदादिदक्षकरे । ग ष भक्तिप्रियभगिनीभ्यां नमः हृदादिवामकरे । गं सं गणेशभोगिनीभ्यांनमः हृदादिक्षपादे । ग हं मेघनादसुभगाभ्यांनमः हृदादिवाम-पादे । गं ळं व्यासीस्थकालरात्रिभ्यांनमः हृदादिउदरे । गं क्षं गणेश्वर कालिकाभ्यां-नमः हृदादिमुखे ।

२. ग्रहमातृका न्यास—

विनियोग—अस्य श्री ग्रहमातृका मन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिर्ऋषिः गायत्रीछन्दः, ग्रहरूपिणी सुन्दरी देवता ममोपास्य श्री विद्याङ्गत्वेन षोढान्यासे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास-पूर्ववत् ध्यान—

रक्तं श्वेतं तथा रक्तं श्यामं पीत चपाण्ड्डरम् ।
धूम्रकृष्णं च धूम्रं च धूमधूम्रं विचिन्तयेत् ।।
रविमुख्यान्कामरूपान्सर्वाभरण भूषितान् ।
वामोरुन्यस्तहस्तांश्च दक्षिणेनवरप्रदान् ।।

न्यास—

+अं १६ सूर्यायरेणुकाम्बायै नमः हृदि ।
यं ४ चन्द्रायामृताम्वायै नमः भ्रूमध्ये ।
कं ५ मङ्गलाय धामाम्वायै नमः नेत्रयोः ।
च ५ बुधाय ज्ञानरूपाम्वायै नमः हृदि ।
टं ५ वृहस्पतये यशस्विन्यम्वायै नमः हृदयोपरिभागे ।
तं ५ शुक्राय शांकर्यम्वायै नमः कण्ठे ।
पं ५ शनैश्चराय शक्त्म्वायै नमः नाभौ ।
शं ४ राहवे कृष्णाम्वायै नमः मुखे ।
लं क्षं केतवे धूम्रम्वायै नमः गुदे ।

३. नक्षत्र मातृका न्यास—

विनियोग—अस्य श्री नक्षत्र मातृका मन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिर्ऋषिः गायत्री-छन्दः, नक्षत्ररूपिणी सुन्दरी देवता ममोपास्य श्रीविद्याङ्गत्वेन षोढान्यासे विनियोगः ।

षडङ्गम्—(पूर्ववत्)

ध्यान—

ज्वलत्कालाग्निसकाशाः सर्वाभरण भूषिताः ।
नतिपाण्योऽश्विनीमुख्या वरदाभयपाणयः ।।

न्यास—

अं आं अश्विन्यैनमः ललाटे ।
इ भरण्यै नमः दक्षनेत्रे ।
ईं उं ऊ कृत्तिकायै नमः वामनेत्रे ।

+ अं १६ का तात्पर्य है कि अं आं इ ईं उ ऊं इत्यादि १६ स्वरों को कहे । यं० से यं रं लं वं सं कहे । इसी प्रकार सर्वत्र ।

ऋं ॠं लृं लॄं रोहिण्यै नमः दक्षकर्णे ।
ऍं मृगशिरसे नमः वामकर्णे ।
ऐं आर्द्रायै नमः दक्षनासायाम् ।
ओं औं पुनर्वसवे नमः वामनासायाम् ।
कं पुष्पाय नमः कण्ठे ।
खं गं आश्लेषायै नमः दक्षस्कन्धे ।
घ ङं मघायै नमः वामस्कन्धे ।
चं पूर्वाफाल्गुन्यै नमः वामकूर्परे ।
झं ञं हस्ताय नमः दक्षमणि बन्धे ।
टं ठं चित्रायै नमः वाममणिबन्धे ।
डं स्वात्यै नमः दक्षहस्ते ।
ढं णं विशाखायै नमः वामहस्ते ।
तं थं दं अनुराधायै नमः नाभौ ।
धं ज्येष्ठायै नमः दक्षकटौ ।
नं पं फं मूलाय नमः वामकटौ ।
बं पूर्वाषाढायै नमः दक्षोरौ ।
भं उत्तराषाढायै नमः वामोरौ ।
मं श्रवणाय नमः दक्षजानुनि ।
य रं धनिष्ठायै नमः वामजानुनि ।
लं शतभिषायै नमः दक्षजंघायाम् ।
वं शं पूर्वभाद्रपदायै नमः दक्षजंघायाम् ।
षं सं हं उत्तराभाद्रपदायै नमः दक्षपादे ।
ळं क्षं अं अः रेवत्यै नमः वामपादे ।

४. योगिनी मातृका न्यास—

विनियोग—अस्य श्री योगिनीमातृकामन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिऋषिः गायत्री छन्दः योगिनी रूपा सुन्दरी देवता श्रीविद्याङ्गत्वेन षोढान्यासे विनियोगः ।

ध्यान—

सितासितारुणाबभ्रूचित्रापीताश्च चित्तयेत् ।
चतुर्भुजाः समैर्वक्त्रैः सर्वाभरण भूषिताः ।।

न्यास—

ह्रीं श्रीं डां डीं डमलवरयूंपूं डाकिन्यै नमः अं १६ ममत्वचं रक्ष २ त्वगात्मनेनमः कण्ठेविशुद्धे

ह्लीं श्रीं रांरींरंमलवरयूंपूं राकिन्यै नमः कं १२ ममरक्तं रक्ष २
असृगात्मनेनमः हृद्यनाहते

ह्लीं श्रीं लांलींलंमलवरयूंपूं लाकिन्यै नमः डं १० ममांसं रक्ष २
मांसात्मनेनमः नाभौमणिपूरे

ह्लीं श्रीं कांकींकंमलवरयूंपूं काकिन्यै नमः बं ६ ममेदो रक्ष २
मेदआत्मनेनमः लिङ्गे स्वाधिष्ठाने

ह्लीं श्रीं शांशींशंमलवरयूंपूं शाकिन्यै नमः वं ४ ममअस्थि रक्ष २
अस्थ्यात्मनेनमः गुदेमूलाधारे

ह्लीं श्रीं हांहींहंमलवरयूंपूं हाकिन्यै नमः हंक्षं ममज्जां रक्ष २
मज्जात्मनेनमः भ्रूमध्ये आज्ञा

ह्लीं श्रीं यांयींयंमलवरयूंपूं याकिन्यै नमः अं ममशुक्रं रक्ष २
शुक्रात्मनेनमः ब्रह्मरन्ध्रे

५. राशिमातृका न्यास—

विनियोग—अस्य श्रीराशिमातृका मन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिऋषिः गायत्री छन्दः, राशिरूपासुन्दरी देवता श्रीविद्याङ्गत्वेन षोढान्यासे विनियोगः।

ध्यान—

रक्तश्वेतहरिद्वर्षं पाण्डुचित्रासितान्स्मरेत्।
विशंगपिंगलौबभ्रु कर्बुराशितधूम्रभान् ॥

न्यास—

अं आं इं ईं मेषाय नमः दक्षपादगुल्फे।
उं ऊं ऋं वृषाय नमः दक्षजानुनि।
ॠं लृं लॄं मिथुनाय नमः दक्षवृषणे।
एं ऐं कर्काय नमः दक्षकुक्षौ।
ओं औं सिंहाय नमः दक्षस्कन्धे।
अं अः शं षं सं हं लं कन्यायै नमः दक्षशिरोभागे।
कं खं गं घं ङं तुलायै नमः वामशिरोभागे।
चं छं जं झं ञं वृश्चिकाय नमः वामस्कन्धे।
टं ठं डं ढं णं धनुषे नमः वामकुक्षौ।
तं थं दं धं नं मकराय नमः वामवृषणे।
पं फं बं भं मं कुम्भाय नमः वामजानुति।
यं रं लं वं क्षं मीनाय नमः वामगुल्फे।

६. पीठमातृका न्यास—

विनियोग—अस्य श्रीपीठमातृकामन्त्रस्यदक्षिणामूर्ति ऋषिः गायत्रीछन्दः पीठरूपिणी सुन्दरीदेवता श्रीविद्यांगत्वेन षोढान्यासे विनियोगः।

ध्यान—

सितासितारुणश्यामहरित्पीतान्यनुक्रमात् ।
पुनरेतत्क्रमाद्देवीपञ्चाशत्स्थान सञ्चये ।।
पीठानीह स्मरेद्विद्वान्सर्वकामार्थं सिद्धये ।।

न्यास—

ह्रीं श्रीं अं कामरूपपीठायनमः ललाटे।
ह्रीं श्रीं आं वाराणसीपीठायनमः मुखवृत्ते।
ह्रीं श्रीं इं नेपालपीठायनमः दक्षनेत्रे।
ह्रीं श्रीं ईं पौण्ड्रवर्धनपीठायंनमः वामनेत्रे ।
ह्रीं श्रीं उं काश्मीरपीठायनमः दक्षकर्णे।
ह्रीं श्रीं ऊं कान्यकुब्जपीठायनमः वामकर्णे।
ह्रीं श्रीं ऋं पूर्णगिरिपीठायनमः दक्षगण्डे।
ह्रीं श्रीं ॠं अर्बुदाचलपीठायनमः वामगण्डे।
ह्रीं श्रीं लृं आम्रातकेश्वर पीठायनमः दक्षनासायाम्।
ह्रीं श्रीं ॡं एकाम्रपीठायनमः वामनासायाम्।
ह्रीं श्रीं एं त्रिस्त्रोत पीठायनमः ऊर्ध्वोष्ठे।
ह्रीं श्रीं ऐं कामकोटिपीठायनमः अधरे।
ह्रीं श्रीं ओं कैलाश पीठायनमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ।
ह्रीं श्रीं औं भृगुपीठायनमः अधोदन्तपंक्तौ।
ह्रीं श्रीं अं केदारपीठायनमः ब्रह्मरन्ध्रे।
ह्रीं श्रीं अः चन्द्रपुर पीठायनमः मुखे।
ह्रीं श्रीं कं श्री पीठायनमः दक्षबाहुमूले।
ह्रीं श्रीं खं ओंकारपीठायनमः दक्षकूर्परे।
ह्रीं श्रीं गं जालन्धरपीठायनमः दक्षमणिबन्धे।
ह्रीं श्रीं घं मालवपीठायनमः दक्षअंगुलिमूले।
ह्रीं श्रीं ङं कुलान्तपीठायनमः दक्षअंगुल्यग्रे।
ह्रीं श्रीं चं देवीकोट्टकपीठायनमः वामबाहुमूले।
ह्रीं श्रीं छं गोकर्णपीठायनमः वामकूर्परे।
ह्रीं श्रीं जं मारुतेश्वरपीठायनमः मणिबन्धे।
ह्रीं श्रीं झं अट्टहास पीठायनमः अंगुलिमूले।

ह्रीं श्रीं ञं विरज पीठायनमः वामांगुल्यग्रे ।
ह्रीं श्रीं टं राजगृहपीठायनमः दक्षपादमूले ।
ह्रीं श्रीं ठं महापथपीठायनमः दक्षगुल्फे ।
ह्रीं श्रीं डं कोल्लगिरिपीठायनमः दक्षजङ्घायाम् ।
ह्रीं श्रीं ढं एलापुरपीठायनमः दक्षपादांगुलिमूले ।
ह्रीं श्रीं णं कालेश्वरपीठायनमः दक्षपादांगुल्यग्रे ।
ह्रीं श्रीं तं जयन्तीपीठायनमः वामपादमूले ।
ह्रीं श्रीं थं उज्जयिनीपोठायनमः वामगु:फे ।
ह्रीं श्रीं दं चरित्रपीठायनमः वामजङ्घायाम् ।
ह्रीं श्रीं धं क्षीरिकापीठायनमः वामपादांगुलिमूले ।
ह्रीं श्रीं नं हस्तिनापुरपीठायनमः वामपादांगुल्यग्रे ।
ह्रीं श्रीं पं उड्डीशपीठायनमः दक्षपार्श्वे ।
ह्रीं श्रीं फं प्रया गपीठायनमः वामपार्श्वे ।
ह्रीं श्रीं बं षष्ठीषपीठायनमः पृष्ठे ।
ह्रीं श्री भं मायापुरीपोठायनमः नाभौ ।
ह्रीं श्रीं मं मलयपीठायनमः उदरे ।
ह्रीं श्रीं यं श्री शैलपीठायनमः हृदि ।
ह्रीं श्रीं रं मेरुपीठायनमः दक्षांसे ।
ह्रीं श्रीं लं गिरिपीठायनमः ककुदि ।
ह्रीं श्रीं वं माहेन्द्रपीठायनमः वामांसे ।
ह्रीं श्रीं शं वामनपीठायनमः हृदादिदक्षहस्ते ।
ह्रीं श्रीं षं हिरण्यपुरपीठायनमः वामहस्ते ।
ह्रीं श्रीं सं महालक्ष्मीपीठायनमः दक्षपादे ।
ह्रीं श्रीं हं उड्डियानपीठायनमः वामपादे ।
ह्रीं श्रीं ळं छायापीठायनमः उदरे ।
ह्रीं श्रीं क्षं क्षत्रपुरपीठायनमः मुखे ।

मुद्राःप्रदर्शयेत्कृत्वा षडङ्गं प्राणसंयमम् ।
संक्षोभद्रावणाकर्षवश्योन्माद महांकुशाः ॥४६॥
खेचरीबीजयोन्याख्या मुद्रा देवी प्रिया नव ।
ततो ध्यायेद्भगवतीं श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम् ॥४७॥

फिर प्राणायाम एवं षडङ्गन्यास करने के बाद मुद्राएँ दिखलानी चाहिए । संक्षोभिणी, द्राविणी, आकर्षणी, वश्याऽन्माद, महांकुशा, खेचरी, बीज एवं महा-

योनि ये ९ मुद्रायें देवी की प्रिय मुद्रायें हैं। फिर श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी देवी का ध्यान करना चाहिए।

टिप्पणी—देवी की प्रिय संक्षोभ आदि ९ मुद्राओं के लक्षण इस प्रकार हैं।

१. संक्षोभ मुद्रा—

मध्यमां मध्यमे कृत्वा कनिष्ठांगुष्ठरोधिते।
तर्जन्यौ दण्डवत् कृत्वा मध्यमोपर्यनामिके।।
क्षोभाभिधान मुद्रेयं सर्वसंक्षोभकारिणी।।

२. द्राविणी मुद्रा—

एतस्या एव मुद्राया मध्यमे सरले यदा।
क्रियेते परमेशानि तदा विद्राविणी मता।।

३. आकर्षिणी मुद्रा—

मध्यमातर्जनीभ्यां तु कनिष्ठानामिके समे।
अंकुशाकार रूपाभ्यां मध्यमे परमेश्वरि।।
इयमाकर्षिणीमुद्रा त्रैलोक्याकर्षणे क्षमा।।

४. वश्य मुद्रा—

पुटाकारौ करौ कृत्वा तर्जन्यावंकुशाकृती।
परिवर्त्य क्रमेणैव मध्यमे तदधोगते।
संयोज्य निविडाः सर्वा अंगुष्ठावग्रदेशतः।।
मुद्रेयं परमेशानि सर्ववश्यकरी मता।

५. उन्माद मुद्रा—

सम्मुखौ तु करौ कृत्वा मध्यमामध्यमेनुजे।
अनामिके तु सरले तदधस्तर्जनीद्वयम्।।
दण्डाकारौ ततोङ्गुष्ठौ मध्यमान स्वदेशगौ।
मुद्रैषोन्मादिनी नाम क्लेदिनी सर्वयोषिताम्।।

६. महांकुशा मुद्रा—

अस्यास्त्वनामिका युग्ममधः कृत्वांकुशाकृति।
तर्जन्यावपि तेनैव क्रमेण विनियोजयेत्।।
इयं महांकुशा मुद्रा सर्वकामार्थ साधिनी।।

७. खेचरी मुद्रा—

सव्यं दक्षिण हस्ते तु सव्यहस्ते तु दक्षिणम्।
बाहूकृत्वा महादेवि हस्तौ सम्परिवर्त्य च।।
कनिष्ठानामिके देवि युक्ता तेन क्रमेण तु।
तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोर्ध्वमपि मध्यमे।।



वर मुद्रा



अभय मुद्रा



पाश मुद्रा



मोदक मुद्रा



मूशल मुद्रा



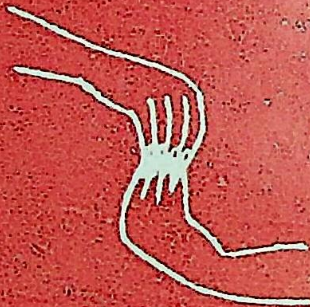
मुण्ड मुद्रा



शकट मुद्रा



सिंहाक्रान्त मुद्रा



सम्मुखोन्मुख मुद्रा



पल्लव मुद्रा



वराह मुद्रा



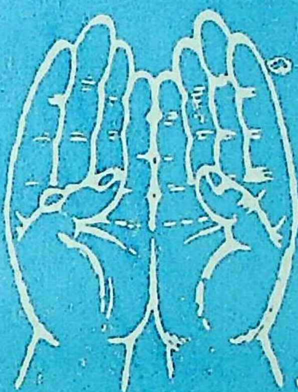
त्रिखण्डा मुद्रा



उदान मुद्रा



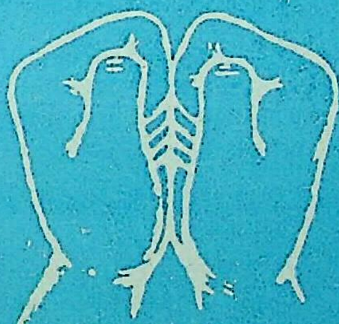
समान मुद्रा



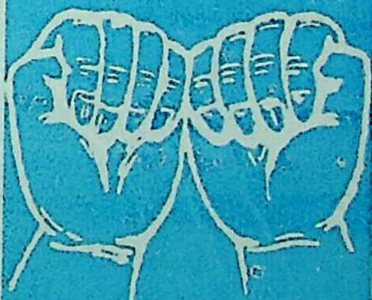
आवाहनी मुद्रा



संस्थापनी मुद्रा



सन्निरोधिनी मुद्रा



सम्मुखीकरणी मुद्रा



महाक्रान्त मुद्रा



मुद्गर मुद्रा



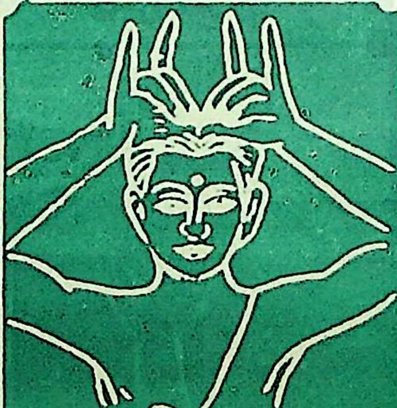
धेनु मुद्रा



बीज मुद्रा



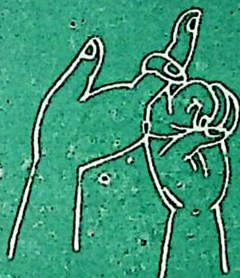
ज्वालिनी (सप्तजिह्वा) मुद्रा



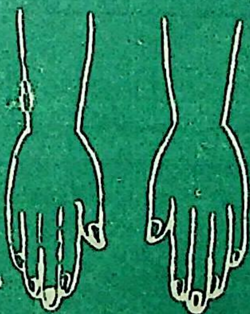
मृगी मुद्रा


अधोमुखी मुद्रा


व्यापकाञ्जलि मुद्रा


यम-पाश मुद्रा


ग्रन्थिव मुद्रा


प्रलम्ब मुद्रा


मुष्टिक मुद्रा



दन्त मुद्रा



प्रार्थना मुद्रा



खड्ग मुद्रा



कुन्त मुद्रा



लेलिहा मुद्रा



प्राण मुद्रा



सम्पुटी मुद्रा



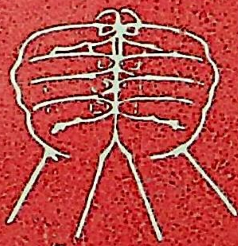
वितत मुद्रा



द्विमुखी मुद्रा



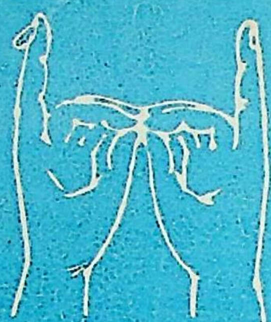
त्रिमुखी मुद्रा



पञ्चमुखी मुद्रा



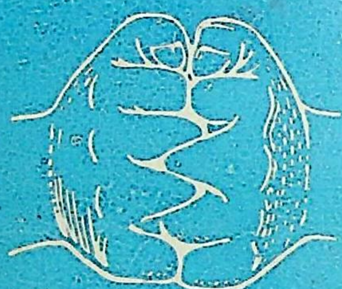
षण्मुखी मुद्रा



सर्व-संक्षोभिणी मुद्रा



सर्व-विद्राविणी मुद्रा



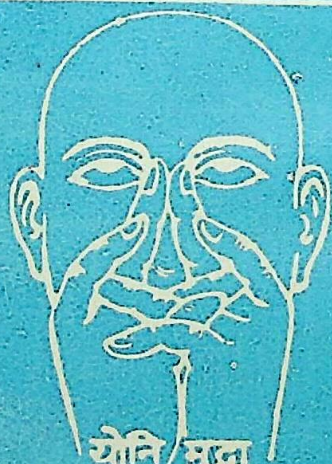
सर्व-वशंकरी मुद्रा



सर्वोन्मादिनी मुद्रा



खेचरी मुद्रा



योनि मुद्रा

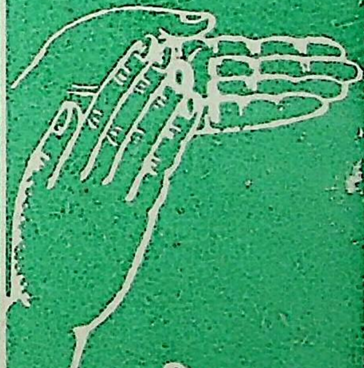

चक्र मुद्रा


गदा मुद्रा


ज्ञान मुद्रा


परशु मुद्रा


कूर्म (कच्छप) मुद्रा


हयग्रीव मुद्रा



अंकुश मुद्रा (१)



अंकुश मुद्रा (२)



कुम्भ मुद्रा



तत्त्व मुद्रा



अपान मुद्रा



व्यान मुद्रा

अंगुष्ठौ तु महादेवि सरलावपि कारयेत्।
इयं सा खेचरी वाम मुद्रा सर्वोत्तमोत्तमा ॥

८. बीजमुद्रा

परिवर्त्य करौ स्पष्टावर्द्धचन्द्राकृती प्रिये।
तर्जन्यंगुष्ठ युगलं युगपत्कारयेत्ततः ॥
अधः कनिष्ठावष्टब्धे मध्यमे विनियोजयेत्।
तथैव कुटिले योज्ये सर्वाधस्तादनामिके ॥
बीज मुद्रेयमुदिता सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥

९. महायोनिमुद्रा

मध्यमे कुटिले कृत्वा तर्जन्युपरि संस्थिते।
अनामिका मध्यगते तथैव हि कनिष्ठके ॥
सर्वा एकत्र संयोज्या अंगुष्ठपरिपीडिताः।
एषा तु प्रथमा मुद्रा महायोन्याभिधा मता ॥

वालार्कायुततेजसं त्रिनयनां रक्ताम्वरोल्लासिनीं
नानालंकृतिराजमानवपुषं वालोडुराट्शेखराम्।
हस्तंरिक्षुधनुः सृणिसुमशरंपाशंमुदाबिभ्रतीं
श्रीचक्र स्थित सुन्दरीं त्रिजगतामाधारभूतां स्मरेत् ॥४८॥

ध्यान—बाल रवि के समान कान्तिवाली, तीन नेत्रवाली, लाल वस्त्रों से सुशोभित, अनेक आभूषणों से अलंकृत देहवाली, शिर पर चन्द्रकला धारण करने वाली, चारों हाथों में क्रम से इक्षधनु, अंकुश, पुष्पबाण एवं पाश धारण करने वाली श्रीचक्र पर विराजमान एवं तीनों लोकों की आधारभूता त्रिपुर सुन्दरी देवी का ध्यान करना चाहिये।

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं दशांशं हयमारजैः।
पुष्पैस्त्रिमधुरोपेतैर्जुहुयात्पूजिते नले ॥४९॥

जपसंख्या एवं हवन—इस मन्त्र का १ लाख जप करना चाहिए तथा त्रिमधुर मिश्रित कनेर के फूलों से विधिवत् पूजित अग्नि में दशांश होम करना चाहिए।

श्रीचक्रस्योद्धृतिं वक्ष्ये तत्र पूजनसिद्धये।
बिन्दुगर्भं त्रिकोणं तु कृत्वा चाष्टारमुद्धरेत् ॥५०॥
दशारद्वयमन्वस्राष्टारषोडश कोणकम्।
त्रिरेखात्मकभूगेहवेष्टितं यन्त्रमालिखेत् ॥५१॥

श्रीयन्त्र का उद्धार—श्रीयन्त्र पर पूजन करने के लिए उसका उद्धार बतलाता हूँ—अपने गर्भ में बिन्दु सहित त्रिकोण लिखकर उसके ऊपर अष्टदल लिखना चाहिए। (फिर उसके ऊपर क्रमशः) दो दशदल, चतुर्दश दल, अष्ट दल एवं षोडशदल लिखने चाहिए।

श्रीविद्या का पूजन यन्त्र

तत्र पूजां प्रवक्ष्यामि पात्रस्थापनपूर्वकम् ।
वहन्नाडीस्थहस्तेन स्वाग्रतो यन्त्रमालिखेत् ।।५२।।
त्रिकोणमध्यषट्कोणवृत्तभूमण्डलात्मकम् ।
वालयापूजयेन्मध्यं तद्वीजैः कोणकत्रयम् ।।५३।।
अनुलोम विलोमैस्तैः षट्कोणान्पूजयेत्ततः ।
अस्त्र प्रक्षालितं मध्ये पात्राधारंनिधापयेत् ।।५४।।
एकत्रिंशार्णमनुनातमाधारं समर्चयेत् ।
वह्निदीर्घत्रयेन्द्वाढ्योरभान्तलवरानिलाः ।।५५।।
वामकर्णेन्दु संयुक्तारः सेन्दुश्चाग्निमण्डला ।
वायुर्धर्मप्रददशकलात्माङ्के समन्वितः ।।५६।।
वाग्बीजंकलशाधारा पवनोनमसान्वितः ।
तारादिरीरितो मन्त्रो भाजनाधारपूजने ।।५७।।
प्रादक्षिण्याद्दशाग्नेयीस्तदुपर्यर्चयेत्कलाः ।
धूम्रार्च्चिरूष्माज्वलिनीज्वालिनी विस्फुलिङ्गिनी ।।५८।।
सुश्रीः सुरूपाकपिलाहव्यकव्यादिकावहा ।
सविन्दुयादिवर्णाद्या दशाग्नेरीरिताः कलाः ।।५९।।
कलाश्रीपादुकांपूजयामीति पदमुच्चरेत् ।
नाम्नामन्ते ततस्तासां प्राणस्थापनमाचरेत् ।।६०।।
स्वर्णादिपात्रमस्त्रेणक्षालितं तत्र विन्यसेत् ।
वियद्दीर्घत्रयेन्द्वाढ्यं हममांसंवरानिलः ।।६१।।
अर्घीशविन्दुसंयुक्तः सेन्दुखंसूर्यमण्डला ।
वायुर्वसुप्रदान्तेस्याद्द्वादशान्तेकलात्मने ।।६२।।
मन्मथः कलशायेतिनमोन्तः प्रणवादिकः ।
त्रिंशद्वर्णात्मको मन्त्रः कलशस्यार्च्चनेमतः ।।६३।।
कलाद्वादशसूर्यस्य कलशोपरि पूजयेत् ।
तपिंनी तापिनीधूम्रामरीचिर्ज्वालिनीरुचिः ।।६४।।
सुषुम्नाभोगदाविश्वाबोधिनी धारिणीक्षमा ।
अनुलोमविलोमाभ्यां कादिभाद्यर्णयुग्युता ।।६५।।
पूर्ववत्ताः समापूज्याः कलशेपूरयेज्जलम् ।
उच्चरन्मातृकावर्णान्मूलविद्यां च मन्त्रवित् ।।६६।।
दन्ताक्षरेण मनुना कलशोदकमर्चयेत् ।
भृगुर्दीर्घत्रयेन्द्वाढ्यः समलाम्ब्वग्निवायवः ।।६७।।

अर्घीशेन्दुयुताः सेन्दुर्हंसान्तेसोममण्डला ।
यकामप्रदषोडान्तेश कलात्मातुङ्ग्युतः ॥६८॥
भृगुर्मनुर्विसर्गाढ्योङ्ग्युतं कलशामृतम् ।
तारादिहृदयान्तोयंमनुः पानीयपूजने ॥६९॥
चान्द्रीः कलाः स्वराद्या स्तुयजेत्षोडशतज्जले ।
अमृतामानदापूषातुष्टिपुष्टोरतिर्धृतिः ॥७०॥
शशिनीचन्द्रिकाकान्तिर्ज्योत्स्नाश्रीः प्रीतिरङ्गदा ।
पूर्णापूर्णामृताचेति पूजनं पूर्ववन्मतम् ॥७१॥
भैरवं च सुधादेवीं स्वमन्त्राभ्यां यजेज्जले ।
सहक्षमलपानीयवह्नीरार्धीश बिन्दुमत् ॥७२॥
वीज मानन्दभैरवान्तेवायुर्वौषण्मनुर्मतः ।
हसयोर्वैपरीत्येन वीजं पूर्वोदितं सुधा ॥७३॥
देव्यैवौषट्तयोर्मन्त्रो दशमुन्यक्षरौ क्रमात् ।
ततो मत्स्यास्त्रकवचधेनुमुद्रा प्रदर्शयेत् ॥७४॥
संरोधिन्या संनिरुध्य मुसलं चक्रसंज्ञकम् ।
महामुद्रांयोनिमुद्रांकुर्यात्कुम्भामृते पुनः ॥७५॥
एवं कलशमास्थाप्य तस्य दक्षिणदेशतः ।
शङ्खं चापिविशेषार्घ्यं स्थापयेत्पूर्ववत्क्रमात् ॥७६॥
अर्घ्येत्रिकोणं संचिन्त्याऽकथाद्यैः षोडशाक्षरैः ।
हक्षाभ्यां शोभितं मध्ये तत्र वालां प्रपूजयेत् ॥७७॥
अष्टवर्णनमन्त्रेण देवीं ज्योतिर्मथीं यजेत् ।
तारोमायेन्दुयुग्व्योमभृगुसर्गीससद्यसः ॥७८॥
वराहोविन्दुयुक्स्वाहा वसुवर्णः स्मृतोमनुः ।
मूलंत्रिरभिजप्याथ कुर्यान्मुद्राः समीरिताः ॥७९॥
शङ्खार्घ्यस्थापने कार्य ऊहः कलशनामनि ।
एवं पात्राणि संस्थाप्य गृहीत्वार्घ्योदकं ततः ॥८०॥
पूजावस्तूनि चात्मानं प्रोक्षेन्मूलमनुं स्मरन् ।
विधाय मानसीं पूजां पीठपूजामथाचरेत् ॥८१॥

पात्रस्थापन—उस श्रीयन्त्र पर श्रीविद्या का पूजन पात्रस्थापन पूर्वक इस प्रकार है। दक्षिण या वाम जो स्वर चल रहा हो, उस हाथ से अपने आगे वक्ष्यमाण मन्त्र लिखें। त्रिकोण के मध्य में षट्कोण, फिर वृत्त एवं भूपुर सहित यन्त्र लिखना चाहिए। यन्त्र के मध्य की बाला मन्त्र से पूजा करनी चाहिए तथा उसके तीनों कोणों की बाला मन्त्र के तीनों बीजों से पूजा करनी चाहिए। इन तीन

बीजों को अनुलोम एवं विलोम कर उनसे क्रमशः षट्कोणों का पूजन करना चाहिए।

फिर उक्त यन्त्र पर 'अस्त्राय फट्' मन्त्र से प्रक्षालित पात्राधार को रखना चाहिए (तथा) ३१ अक्षर वाले (वक्ष्यमाण) मन्त्र से उस आधार की पूजा करनी चाहिए।

दीर्घत्रयेन्दुयुक्त वही (रां रीं रुं) फिर 'र' भान्त (म) ल, व, र एवं अनिल (य) ये सब वामकर्णेन्दु (ॐ) के साथ अर्थात्—'म्ल्व्यूँ' फिर सेन्दु र (रं) 'अग्नि-मण्डला' एवं वायु (य) फिर चतुर्थ्यन्त धर्मप्रद दश कलात्मा, वाग्बीज (ऐं) 'कलशाधारा' एवं पवन (य) अन्त में 'नमः' तथा प्रारम्भ में प्रणव लगाने से यह ३१ अक्षर का आधार पात्र की पूजा का मन्त्र बनता है। यथा—ॐ रां रीं रुं म्ल्व्यूँ रं अग्निमण्डलाय धर्मप्रददशकलात्मने ऐं कलशाधाराय नमः।

उस आधारपात्र के ऊपर प्रदक्षिण क्रम से अग्नि की दशकलाओं का पूजन करना चाहिए। धूम्रार्चि, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिंगिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला, हव्यवहा एवं कव्यवहा— ये सबिन्दु यकार आदि १० वर्णों के साथ अग्नि की कलाएँ कही गयीं हैं। इनके नाम के बाद 'कलाश्रींपादुकां पूजयामि' यह पद बोलना चाहिए और फिर उसका प्राणस्थापन करना चाहिए।

इसके बाद 'अस्त्राय फट्' मन्त्र से प्रक्षालित सुवर्ण आदि से निर्मित पात्र (कलश) उस आधार पर रखना चाहिए (और ३० अक्षर वाले वक्ष्यमाण मन्त्र से उसका पूजन करना चाहिए)।

दीर्घत्रयेन्दु सहित वियद् (हां हीं हूं) फिर 'ह, म' मांस (ल) व, र अनिल (य) ये सब अर्धीशि बिन्दु सहित अर्थात् 'ह्म्ल्व्यूँ' फिर सेन्दु खं (हं) 'सूर्यमण्डला' एवं वायु (य) फिर 'वसुप्रद' 'द्वादश' एवं 'कलात्मने' फिर मन्त्रथ (क्लीं) 'कलशाय नमः' इस मन्त्र के आदि में प्रणव लगाने से यह ३० अक्षर का कलश पूजन का मन्त्र (ॐ हां हीं हूं हूम्ल्व्यूँ हं सूर्यमण्डलाय वसुप्रद द्वादशकलात्मने क्लीं कलशाय नमः) बतलाया गया है।

कलश के ऊपर सूर्य की द्वादश कलाओं का पूजन करना चाहिए। तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुषुम्ना, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी एवं क्षमा— ये अनुलोम ककारादि एवं विलोम भकार आदि वर्णों से युक्त होती हैं। इनका भी पूर्वोक्त रीति से पूजन करना चाहिए।

फिर साधक मातृका वर्णों को एवं मूलमन्त्र को बोलते हुए कलश में जल भरें तथा ३२ अक्षर वाले वक्ष्यमाण मन्त्र से कलश के जल का पूजन करें।

दीर्घत्रयेन्दु सहित भृगु (सां सीं सूं) फिर स् म् ल्, अम्बु (व्) अग्नि (र्) एवं वायु (य्) ये सब अर्धीशेन्दु युत—अर्थात् 'स्म्ल्व्यूँ' फिर हंस (सं) 'सोम मण्डलाय-

कामप्रदषोडश' के बाद चतुर्थ्यन्त कलात्मा (कलात्मने) फिर मनुविसर्गाढ्य भृगु (सौः) चतुर्थ्यन्त कलशामृत (कलशामृताय)—इसके प्रारम्भ में प्रणव एवं अन्त में हृद (नमः) लगाने से यह ३२ अक्षर का जलपूजन का मन्त्र (ॐ सां सीं सूं स्म्ल्व्यूं सं सोममण्डलाय कामप्रद षोडशकलात्मने सौः कलशामृताय नमः) होता है।

उस जल में १६ स्वरों के साथ १६ चान्द्री कलाओं का पूजन करना चाहिए। अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्णा एवं पूर्णामृता ये कलायें होती हैं। इनका भी पूर्वोक्त रीति से पूजन करना चाहिए।

जल में अपने-अपने मन्त्रों से भैरव एवं सुधा देवी का पूजन करना चाहिए।

ह्, स्, क्ष्, म्, ल्, पानीय (व्) वह्नि (र्) ये यब अर्धीश एवं बिन्दुसहित होने से 'ह्स्क्ष्म्ल्व्यूं' यह बीज बनता है। इस बीज के बाद 'आनन्दभैरवा' एवं वायु (य) तथा अन्त में 'वौषट्' से १० अक्षर का भैरव मन्त्र ("ह्स्म्ल्व्यूं आनन्द भैरवाय वौषट्") तथा पूर्वोक्त बीज में हस् का विपर्यय करने से इस 'स्ह्क्ष्म्ल्व्यूं' के बाद 'सुधादेव्यै वौषट्' लगाने से ७ अक्षर का सुधा की पूजा का मन्त्र (स्ह्म्ल्व्यूं सुधादेव्यै वौषट्') बनता है।

फिर मत्स्य, अस्त्र, कवच एवं धेनु मुद्रायें दिखलानी चाहिए। संरोधिनी मुद्रा से सन्निरोध कर कलश के जल में मुसल, चक्र, महामुद्रा एवं योनि मुद्राएं दिखलानी चाहिए।

इस प्रकार कलश स्थापन कर उसके दक्षिण भाग में पूर्वोक्त रीति से शंख एवं विशेषार्घ्य की भी स्थापना करनी चाहिए। अर्घ्या में अकारादि, ककारादि एवं थकारादि १६-१६ अक्षरों की रेखाओं से बने तथा मध्य में 'हक्ष' वर्णों से शोभित त्रिकोण का ध्यान कर उसमें (ऐं क्लीं सौः मन्त्र से) बाला का पूजन करना चाहिए। अष्टाक्षर मन्त्र से ज्योतिर्मयी देवी का पूजन करना चाहिए।

तार (ॐ) माया (ह्रीं) इन्दुयुग् व्योम (हं) सर्गी भृगु (सः) ससद्म भृगु (सौः) विन्दुयुक् वराह (हं) एवं 'स्वाहा' लगाने से ८ अक्षर का मन्त्र (ॐ ह्रीं हंसः सौः हं स्वाहा।) बनता है।

फिर मूलमन्त्र को ३ बार जप कर मत्स्य आदि पूर्वोक्त ९ मुद्रायें दिखलानी चाहिए। शंख एवं अर्घ्यस्थापन में 'कलश' शब्द के स्थान पर उनके नाम लेने चाहिए।

इस प्रकार पात्रों का स्थापन करने के बाद अर्घ्यपात्र में से जल लेकर उस जल से पूजा सामग्री पर एवं अपने ऊपर छींटे लगाने चाहिए। फिर मानसोपचार से देवी का पूजन कर पीठ पूजा करनी चाहिए।

पात्रस्थापन विधि—पात्र स्थापन करते समय दक्षिण या वाम जो स्वर चल रहा हो, उस हाथ से अपने आगे त्रिकोण, षट्कोण, वृत्त एवं भूपुर वाला यन्त्र लिखकर उसके मध्य भाग की 'ऐं क्लीं सौः' मन्त्र से पूजा कर इस मन्त्र के तीन वीजों से क्रमसः त्रिकोण के तीन कोणों तथा 'ऐं क्लीं सौः सौः क्लीं ऐं'—इन ६ बीजों से क्रमशः षट्कोण के ६ कोणों का पूजन करना चाहिए।

फिर 'अस्त्राय फट्' मन्त्र से प्रक्षालित पात्राधार को उक्त यन्त्र के मध्य में रखकर "ॐ रां रीं रुं म्ल्व्यूं रं अग्नि मण्डलाय धर्मप्रद दशकलात्मने ऐं कलशा-धाराय नमः" मन्त्र से आधार की पूजा करनी चाहिए। तत्पश्चात् पात्राधार के ऊपर निम्नलिखित मन्त्रों से अग्नि की १० कलाओं का पूजन करना चाहिए। मन्त्र इस प्रकार हैं—

यं धूम्रार्चिषै नमः धूम्रार्चि कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः।
रं ऊष्मायै नमः ऊष्मा कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः।
लं ज्वलिन्यै नमः ज्वलिनी कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः।
वं ज्वालिन्यै नमः ज्वालिनी कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः।
शं विस्फुलिंगिन्यै नमः विस्फुलिंगनी कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः।
षं सुश्रियै नमः सुश्रीः कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः।
सं सुरूपायै नमः सुरूपा कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः।
हं कपिलायै नमः कपिला कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः।
ळं हव्यवाहायै नमः हव्यवहा कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः।
क्षं कव्यवाहायै नमः कव्यवहा कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

और इसके बाद इन कलाओं की पात्राधार पर प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

तदनन्तर पात्राधार पर 'अस्त्राय फट्' मन्त्र से प्रक्षालित स्वर्ण आदि से निर्मित कलश रखकर "ॐ हां ह्रीं ह्रूँ ह्म्ल्व्यूं हं सूर्यमण्डलाय वसुप्रदद्वादश कलात्मने क्लीं कलशाय नमः" मन्त्र से कलश का पूजन करना चाहिए। फिर कलश पर निम्नलिखित मन्त्रों से तपिनी आदि सूर्य की १२ कलाओं का पूजन करना चाहिए। यथा—

कं भं तपिन्यै नमः तपिनी कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। खं बं तापिन्यै नमः तापिनी कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। गं फं धूम्रायै नमः धूम्रा कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। घं पं मरीच्यै नमः मरीचि कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। ङं नं ज्वालिन्यै नमः ज्वालिनी कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। चं धं रुच्यै नमः रुचि कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। छं दं सुषुम्णायै नमः सुषुम्ना कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। जं थं भोगदायै नमः भोगदा कला श्रीपादुकां

पूजयामि नमः। झं तं विश्वायै नमः विश्वा कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। ञं णं बोधिन्यै नमः बोधिनी कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। टं ढं धारिण्यै नमः धारिणी कला श्री पादुकां पूजयामि नमः। ठं डं क्षमायै नमः क्षमा कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

तत्पश्चात् 'अं आं इं ईं.......ळं क्षं' मातृका वर्णों तथा मूल मन्त्र को बोलते हुए कलश में जल भरकर "ॐ सां सीं सूं स्म्ल्व्यूं सं सोम मण्डलाय कामप्रदषोडशकलात्मने सौः कलशामृताय नमः"—मन्त्र से कलशोदक का पूजन करना चाहिए। फिर जल में निम्नलिखित मन्त्रों से अमृता आदि चन्द्रमा की १६ कलाओं का पूजन करना चाहिए।

अं अमृतायै नमः अमृता कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। आं मानदायै नमः मानदा कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। इं पूषायै नमः पूषा कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। ईं तुष्टयै नमः तुष्टि कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। उं पुष्टयै नमः पुष्टि कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। ॐ रत्यै नमः रति कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। ऋं धृत्यै नमः धृति कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। ॠं शशिन्यै नमः शशिनी कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। लृं चन्द्रिकायै नमः चन्द्रिका कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। लॄं कान्त्यै नमः कान्ति कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। एं ज्योत्स्नायै नमः ज्योत्स्ना कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। ऐं श्रियै नमः श्रीकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। ओं प्रीत्यै नमः प्रीति कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। औं अंगदायै नमः अंगदा कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। अं पूर्णायै नमः पूर्णा कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः। अः पूर्णामृतायै नमः पूर्णामृता कला श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

इसके वाद जल में 'ह्स्क्ष्म्ल्व्यूं आनन्द भैरवाय वौषट्' मन्त्र से भैरव का तथा 'स्हक्ष्म्ल्व्यूं सुधा देव्यै वौषट्' मन्त्र से सुधा देवी का पूजन करना चाहिए। और फिर मत्स्य, अस्त्र, कवच एवं धेनु मुद्रायें दिखाकर संरोधिनी से संरोधन कर मुसल, चक्र, महामुद्रा एवं योनि मुद्राएँ दिखलानी चाहिए। इन मुद्राओं के लक्षण इस प्रकार हैं—

१. मत्स्य मुद्रा

वामोपरिष्टात्संस्थाप्य दक्षहस्तं प्रसारयेत्।
अंगुष्ठौ युतयोः पार्श्वे मत्स्यमुद्रेयमीरिता॥

२. अस्त्र मुद्रा

नाराचमुष्ट्युदधृतबाहुयुग्मकांगुष्ठतर्जन्युदितोध्वनिस्तु।
विष्वक् विशक्तः कथिताऽस्त्रमुद्रा॥

३. कवच मुद्रा

करद्वन्द्वांगुल्यो वर्मणि (कवचे) स्युः ।

४. धेनु मुद्रा

अन्योन्याभिमुखौ श्लिष्टौ कनिष्ठानामिका पुनः ।
तथैव तर्जनीमध्या धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता ।।

५. सन्निरोधमुद्रा

आश्लिष्ठ मुष्टियुगला प्रोन्नतांगुष्ठयुग्मका ।
सन्निधाने समुद्दिष्टा मुद्रेयं तन्त्रवेदिभिः ।।
अंगुष्ठगर्भिणी सैव सन्निरोधे समीरिता ।।

६. मुसलमुद्रा

मुष्टिं कृत्त्वा तु हस्ताभ्यां वामस्योपरि दक्षिणम् ।
कुर्यान्मुसलमुद्रेयं सर्वविघ्नविनाशिनी ।।

७. चक्रमुद्रा

हस्तौ तु सम्मुखौ कृत्वा संलग्नौ सुप्रसारितौ ।
कनिष्ठां गुष्ठकौ लग्नौ मुद्रैषा चक्रसंज्ञिका ।।

८. महामुद्रा

अन्योन्यग्रथितांगुष्ठौ प्रसारितकरांगुलिः ।
महामुद्रेयमुदिता परमीकरणे बुधैः ।।

९. योनिमुद्रा

मिथः कनिष्ठिके वद्ध्वा तर्जनीभ्यामनामिके ।
अनामिकोर्ध्वं संश्लिष्ट दीर्घमध्यमयोरधः ।।
अंगुष्ठाग्रद्वयं न्यस्येद् योनिमुद्रेयमीरिता ।।

उक्त रीति से कलश स्थापन कर उसके दाहिनी ओर शंख एवं विशेषार्घ्य का भी पूर्वोक्त रीति से स्थापन करना चाहिए (शंख आदि की स्थापना के समय कलश स्थापन में बतलाए हुए पूर्वोक्त मन्त्रों में 'कलश' पद के स्थान पर 'शंख' या 'विशेषार्घ्य' पद लगना चाहिए) ।

तत्पश्चात् अर्घ्यपात्र में अकारादि १६, ककरादि १६ एवं थकारादि १६ वर्णों की ३ रेखाओं से निर्मित तथा मध्य में ह क्ष वर्णों से सुशोभित त्रिकोण का ध्यान कर उसके मध्य में 'ॐ ह्रीं हं सः सौः हं स्वाहा' इस अष्टाक्षर मन्त्र से बाला का पूजन करना चाहिए । फिर उसके ऊपर ३ बार मूलमन्त्र का जप कर पूर्वोक्त मत्स्य आदि ९ मुद्राएं दिखानी चाहिए ।

इस प्रकार पात्रों का विधिवत् स्थापन करने के बाद अर्घ्यपात्र से जल लेकर मूलमन्त्र का जप करते हुए पूजासामग्री एवं स्वयं को छींटे लगाने चाहिए ।

फिर श्लोक ४८ में वर्णित देवी के स्वरूप का ध्यान कर निम्नलिखित मन्त्रों से मानसी पूजा करनी चाहिए—

ॐ लं पृथिव्यात्मकं महादेव्यै गन्धं विलेपयामि नमः अंगुष्ठकनिष्ठाभ्याम् ।

ॐ हं आकाशात्मकं महादेव्यै पुष्पाणि समर्पयामि नमः अंगुष्ठानामिकाभ्याम् ।

ॐ यं वाटवात्मकं महादेव्यै धूपं आघ्रापयामि नमः अंगुष्ठमध्यमाभ्याम् ।

ॐ रं वह्नयात्मकं महादेव्यै दीपं दर्शयामि नमः अंगुष्ठतर्जनीभ्याम् ।

ॐ वं अमृतात्मकं महादेव्यै नैवेद्यं निवेदयामि नमः अंगुष्ठानामिकाभ्याम् ।

मण्डूकं कालवह्नीशं तन्मूलप्रकृतिं यजेत् ।
आधारशक्तिं कूर्मं च शेषवाराहमेदिनीः ।।८२।।
सुधाब्धिं रत्नदीपं च स्वर्णाद्रिं नन्दनंवनम् ।
दृष्टवाकल्पतरून्मध्ये विचित्रानन्दभूमिकाम् ।।८३।।
श्रीरत्नमन्दिरं रत्नवेदिकां धर्मवारणम् ।
रत्नसिंहासनं तस्य पादान्धर्मादिकान्यजेत् ।।८४।।
गात्राणितांश्चनञ्पूर्वान्पद्मंचानन्दकन्दकम् ।
ज्ञाननालं कर्णिकां च सूर्यसोमाग्निमण्डलम् ।।८५।।
तारमात्रात्रयाद्यं तत्स्ववर्णाद्यान्गुणान्यजेत् ।
मात्रात्रयाद्यमात्मानमन्तरात्मानमेव च ।।८६।।
तृतीयं परमात्मानं ज्ञानात्मानं परादिकम् ।
मायातत्त्वं कलातत्त्वं विद्यातत्त्वं च पूजयेत् ।।८७।।
परतत्त्वं स्ववर्णाद्यं ब्रह्मविष्णुशिवांस्ततः ।
प्रेतांतानीश्वरं तुर्यं पञ्चमं च सदाशिवम् ।।८८।।
सुधार्णवासनं पश्चाद्यजेत्प्रेताम्बुजासनम् ।
दिव्यासनं चक्रासनं सर्वमन्त्रासनं ततः ।।८९।।
साध्यसिद्धासनं प्राच्यं चक्रराजं प्रपूजयेत् ।
पीठशक्तिस्ततः काष्ठास्विच्छाज्ञानं क्रियातथा ।।९०।।
कामिनीकामदायिन्यौर तिरेवं रति प्रिया ।
नन्दामनोन्मनीचेतिवराभयकरास्तुता ।।९१।।
तत आसनमन्त्रेण पूजयेच्चक्रनायकम् ।
वाक्परायैकेशवोऽथपरायै च परापरा ।।९२।।
वालीदामोदरारूढस्तार्तीयं च सदाशिवम् ।
महाप्रेतं पठेत्पद्मासनाय हृदयान्तिकः ।।९३।।
एकोनत्रिंशदर्णाढ्यो मनुरासन संज्ञकः ।

पीठपूजा—मण्डूक, कालाग्निरुद्र, मूलप्रकृति, आधार शक्ति, कूर्म, शेष, वाराह, मेदिनी, सुधाम्बुधि, रत्नद्वीप, मेरु, नन्दनवन का पूजन करना चाहिए। फिर कल्पवृक्ष को देखकर मध्य में विचित्रानन्द भूमि, श्री रत्नमन्दिर, रत्नवेदिका, छत्र एवं सिंहासन का पूजन कर उसके पादरूपी धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्यों का तथा अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य एवं अनैश्वर्य का पूजन करना चाहिए। फिर पद्म, आनन्दकन्द, ज्ञाननाल, कर्णिका का पूजन कर ॐकार के तीन स्वर (अं उं मं) के साथ सूर्य, सोम एवं अग्नि के मण्डलों का, अपने वर्णों के साथ सत्व, रज एवं तमोगुण का तथा पूर्वोक्त तीन स्वरों के साथ आत्मा, अन्तरात्मा एवं परमात्मा का पूजन करना चाहिए फिर माया बीज के साथ ज्ञानात्मा का तथा अपने-अपने वर्णों के साथ मायातत्त्व, कलातत्त्व, विद्यातत्त्व एवं परातत्त्व का पूजन करना चाहिए। फिर अपने-अपने वर्णों को आदि में लगाकर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर एवं सदाशिव—इन ५ प्रेतों का पूजन करना चाहिए।

फिर सुधार्णवासन, प्रेताम्बुजासन, दिव्यासन, चक्रासन, सर्वमन्त्रासन एवं साध्यसिद्धासन का पूजन कर चक्रराज का पूजन करना चाहिए। तत्पश्चात् दिशाओं में वरद एवं अभयमुद्रा धारण करने वाली पीठ शक्तियों का पूजन करना चाहिए। इच्छा, ज्ञान, क्रिया, कामिनी, कामदायिनी, रति, रतिप्रिया, नन्दा एवं मनोन्मनी—ये पीठशक्तियाँ होती हैं।

तदनन्तर आसन मन्त्र से चक्रनायक का पूजन करना चाहिए।

वाम (ऐं) फिर 'परायै' केशव (अ) 'परायै' 'परापरा' एवं दामोदरारूढ वाली (यै) फिर तार्तीय (हसौः) 'सदाशिवमहाप्रेत' फिर 'पद्मासनाय' और अन्त में हृदय (नमः) लगाने से २९ अक्षर का यह "ऐं परायै अपरायै परापरायै ह्सौः सदाशिव महाप्रेत पद्मासनाय नमः" आसन मन्त्र बनता है।

पीठ पूजा विधि—पात्र स्थापन करने के बाद देवी का विधिवत् ध्यान एवं मानसोपचार से पूजन कर यन्त्रराज पर निम्न मन्त्रों से पीठदेवताओं एवं पीठशक्तियों का पूजन करना चाहिए, यथा—

कर्णिका में—ॐ मण्डूकाय नमः। ॐ कालाग्निरुद्राय नमः। ॐ मूलप्रकृत्यै नमः। ॐ आधारशक्त्यै नमः। ॐ कूर्माय नमः। ॐ शेषाय नमः। ॐ वाराहाय नमः। ॐ पृथिव्यै नमः। ॐ सुधाम्बुधये नमः। ॐ रत्नद्वीपाय नमः। ॐ भैरवे नमः। ॐ नन्दनवनाय नमः। ॐ कल्पवृक्षाय नमः।

कर्णिका मूल में—ॐ विचित्रानन्दभूम्यै नमः।

फिर कर्णिका के ऊपर—ॐ रत्नमन्दिराय नमः। ॐ रत्नवेदिकायै नमः। ॐ धर्मवारणाय नमः। ॐ रत्न सिंहासनाय नमः।

चारों दिशाओं में—ॐ धर्माय नमः। ॐ ज्ञानाय नमः। ॐ वैराग्याय नमः। ॐ ऐश्वर्याय नमः। ॐ अधर्माय नमः। ॐ अज्ञानाय नमः। ॐ अवैराग्याय नमः। ॐ अनैश्वर्याय नमः।

फिर मध्य में--ॐ आनन्दकन्दाय नमः। ॐ संविन्नालाय नमः। ॐ सर्वतत्त्वात्मक पद्माय नमः। ॐ प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः। ॐ विकारमयकेसरेभ्यो नमः। ॐ पच्चाशद्वीजाढ्य कर्णिकायै नमः। ॐ अं द्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलाय नमः। ॐ षोडशकलात्मने सोममण्डलाय नमः। ॐ मं दशकलात्मने वह्निमण्डलाय नमः। ॐ सं सत्त्वाय नमः। ॐ रं रजसे नमः। ॐ तं तमसे नमः। ॐ अं आत्मने नमः। ॐ उं अन्तरात्मने नमः। ॐ मं परमात्मने नमः। ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः।

तत्रैव—ॐ मां मायातत्त्वाय नमः। ॐ कं कलातत्त्वाय नमः। ॐ विं विद्यातत्त्वाय नमः। ॐ पं परतत्त्वाय नमः।

तत्रैव—ॐ ब्रं ब्रह्मप्रेताय नमः। ॐ विं विष्णुप्रेताय नमः। ॐ रुं रुद्रप्रेताय नमः। ॐ ईं ईश्वरप्रेताय नमः। ॐ सं सदाशिवप्रेताय नमः।

तत्रैव—ॐ सुधार्णवासनाय नमः। ॐ प्रेताम्बुजासनाय नमः। ॐ दिव्यासनाय नमः। ॐ चक्रासनाय नमः। ॐ सर्वमन्त्रासनाय नमः। ॐ साध्यसिद्धासनाय नमः।

इसके उपरान्त विधिवत् चक्रराज का पूजन कर पूर्व आदि दिशाओं में तथा मध्य में निम्नलिखित मन्त्रों से इच्छा आदि ६ पीठ शक्तियों का पूजन करना चाहिए। यथा—

पूर्व आदि ८ दिशाओं में--ॐ इं इच्छायै नमः। ॐ ज्ञां ज्ञानायै नमः। ॐ क्रिं क्रियायै नमः। ॐ कां कामिन्यै नमः। ॐ कां कामदायिन्यै नमः। ॐ रं रत्यै नमः। ॐ रं रतिप्रियायै नमः। ॐ नं नन्दायै नमः।

मध्य में—ॐ मं मनोन्मन्यै नमः।

इस प्रकार पीठशक्तियों का पूजन करने के पश्चात् "ऐं परायै अपरायै ह्सौः सदाशिवमहाप्रेत पद्मासनाय नमः" मन्त्र से चक्रनायक का पूजन करना चाहिए।

एवं पीठं समभ्यर्च्य दद्यात्पुष्पाञ्जलिं ततः ॥६४॥
प्रकटान्तं गुप्त गुप्ततरान्ते सम्प्रदाय च।
कुलान्ते नेत्रयुङ्मेषोगर्भरेति ततः पठेत् ॥६५॥
हस्यान्तेति रहस्यार्णापरापररहस्य च।
संज्ञकः श्रीचक्रगतोयोगिनीपादुकापदम् ॥६६॥
भ्योनमोन्तोधराबाणवर्णोमाधारमादिकः।
मन्त्रपुष्पाञ्जलेर्दाने सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥६७॥

मुद्रां त्रिखण्डांकृत्वाथ पुष्पाव्या दायचाञ्जलौ ।
ध्यात्वा पूर्वोदितां देवीं मूल विद्यां समुच्चरेत् ॥९८॥
चैतन्यंहृत्कमलतोनासिकारन्ध्रनिर्गतम् ।
ब्रह्मरन्ध्रस्य मार्गेण यौजितं कुसुमाञ्जलौ ॥९९॥
महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे ।
सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि ॥१००॥
महःपूजाभचैतन्यसंयुक्तकुसुमाञ्जलिम् ।
श्रीचक्रराजे संयोज्य ततः श्लोकद्वयंपठेत् ॥१०१॥
देवेशि भक्तिसुलभे सर्वावरणसंयुते ।
यावत्त्वां पूजयिष्वामि तावत्त्वं सुस्थिराभव ॥१०२॥
इदमावाहनं प्रोक्तं ततः स्थापनमाचरेत् ।
भैरवीमन्त्रमुच्चार्य श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरि ॥१०३॥
चक्रेस्मिन्कुरुसान्निध्यं नमोन्तः स्थापने मनुः ।
दर्शयेत्स्थापनीं मुद्रां सन्निधिं सन्निरोधनम् ॥१०४॥
सम्मुखीकरणं तत्तन्मुद्राभिर्मन्त्रविच्चरेत् ।
न्यसेत्षडङ्गं देव्यंगे सकलीकरणंत्विदम् ॥१०५॥
अवगुण्ठामृतीकारपरमीकरणानि च ।
तत्तन्मुद्राभिराराध्य मूलेन त्रिःप्रपूजयेत् ॥१०६॥
ततः पाद्यादिकान्सम्यगुपचारान्प्रकल्पयेत् ।
मूलमन्त्रेण पुष्पान्तान्पुनः सन्तर्पयेत्त्रिधा ॥१०७॥
पुष्पाञ्जलिं विधायाथ ध्यात्वा देवीं यथा विधि ।
अनुज्ञां प्रार्थयेन्मन्त्री परिवारसमर्चने ॥१०८॥

श्रीविद्या का पूजन—इस प्रकार पीठपूजा करने के बाद फिर पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये ।

'प्रकट गुप्ततर' के बाद क्रम से 'सम्प्रदाय' 'कुल' नेत्रयुक् मेष (नि) एवं 'गर्भर' बोलना चाहिये । फिर 'हस्य' 'अतिरहस्य' 'परापररहस्य' 'संज्ञक श्री चक्रगतयोगिनीपादुका' एवं 'भ्योनमः' बोलना चाहिये । तथा प्रारम्भ में माया एवं रमा बीज लगाने से यह ५१ अक्षर वाला सर्वसिद्धिदायक पुष्पाञ्जलि देने का मन्त्र बनता है । ("ह्रीं श्रीं प्रकटगुप्तगुप्ततरसंप्रदायकुलनिगर्भरहस्यपरा-पररहस्यसंज्ञक श्रींचक्रगतयोगिनी पादुकाभ्यो नमः") ।

इसके बाद त्रिखण्डा मुद्रा बनाकर और अञ्जलि में पुष्प लेकर श्लोक ४८ में वर्णित देवी के स्वरूप का ध्यान कर मूलमन्त्र बोलना चाहिये । फिर हृदयकमल से नासिकारन्ध्र से निर्गत एवं ब्रह्मरन्ध्र मार्ग से योजित चेतन्य (तेज) को

पुष्पाञ्जलि में लेकर उस तेज को श्रीचक्रराज पर स्थापित कर निम्नलिखित दो श्लोकों का पाठ करना चाहिये।

महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे।
सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि ॥
देवेशि भक्तिसुलभे सर्वावरणसंयुते।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिराभव ॥

आवाहनी मुद्रा

सम्यक् सम्पूजितैः पुष्पैः कराभ्यां कल्पिताञ्जलिः।
आवाहनी समाख्याता मुद्रा देशिकसत्तमैः ॥

यह आवाहन कहा गया है। फिर स्थापन करना चाहिये। भैरवीमन्त्र (ह् स्रैं ह् स्क्लरीं ह्सौः) बोलकर फिर 'श्रीमत्त्रिपुर सुन्दरी चक्रेऽस्मिन् कुरु सान्निध्यं नमः' यह स्थापन का मन्त्र है। फिर स्थापनी मुद्रा दिखानी चाहिये।

तत्पश्चात् सन्निरोधन एवं संमुखीकरण करने के बाद देवी के अंगों में षडङ्गन्यास करे—यह सकलीकरण कहलाता है।

फिर तत्तन्मुद्राओं से अवगुण्ठन, अमृतीकरण एवं परमीकरण करने के बाद मूलमन्त्र से ३ बार देवी का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् मूलमन्त्र से पाद्य आदि उपचारों से पुष्प चढ़ाने तक विधिवत् पूजन कर ३ बार तर्पण करना चाहिये।

फिर पुष्पाञ्जलि लेकर विधिवत देवी का ध्यान कर आवरण पूजा के लिए साधक देवी की आज्ञा माँगे।

स्थापनी मुद्रा—अधोमुखी कृता सैव स्थापनीति निगद्यते।

सन्निधान, सन्निरोध एवं सम्मुखी मुद्राएँ

आश्लिष्ट मुष्टियुगला प्रोन्नताङ्गुष्ठयुग्मका।
सन्निधाने समुद्दिष्टा मुद्रेयं तन्त्रवेदिभिः ॥
अङ्गुष्ठगर्भिणी सैव सन्निरोधे समीरिता।
हृदि बद्धाञ्जलि मुद्रा सम्मुखीकरणे मता ॥

सकली करण

देवाङ्गेषु षडङ्गणनां न्यासः स्यात् सकली कृतिः।

अवगुण्ठन मुद्रा

सव्य हस्तकृतामुष्टिः दीर्घाधोमुख तर्जनी।
अवगुण्ठन मुद्रेयमभितो भ्रामिता भवेत् ॥

अमृतीकरण मुद्रा

अन्यान्याभिमुखों श्लिष्टौकनिष्ठानामिके पुनः ।
तथा तु तर्जनीमध्या धेनु मुद्रा प्रकीर्तिता ॥
अमृतीकरणं कुर्यात्ततः देशिक सत्तमः ॥

परमीकरण मुद्रा

अन्योन्य ग्रथिताङ्गुष्ठौ प्रसारित कराङ्गलिः ।
महामुद्रेयमुदिता परमीकरण बुधैः ॥

पूजा पद्धति—पीठपूजा करने बाद—"ह्रीं श्रीं प्रकट गुप्त गुप्ततरसम्प्रदाय-कुलनिगर्भरहस्यातिरहस्यपरापररहस्यसंज्ञक श्रीचक्रगत योगिनीपादुकाभ्यो नमः मन्त्र से पुष्पाञ्जलि देकर त्रिखण्डा मुद्रा बाँधकर और फिर पुष्पाञ्जलि लेकर देवी को अपनी आत्मा से अभिन्न समझते हुए ध्यान करना चाहिये, यथा—

बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ।
पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां भजे ॥

आवाहन—इस प्रकार ध्यान कर दूर्वाक्षत रक्तचन्दन मिश्रित लोहितवर्ण हस्तस्थ पुष्पाञ्जलि में मातृकामन्त्र की भावना करनी चाहिए। फिर मूलमन्त्र से षट्चक्रभेद करते हुए चैतन्यमयी देवी को शिरस्थः सहस्रदलकमल की कर्णिका के मध्य में विराजमान परम शिव से संयोजित कर सहस्रार स्थित सुधासागर में विश्राम करने के लिए स्थापित करना चाहिए। तदनन्तर अमृतलोलुपा चैतन्य-मयीदेवी को प्रवहणशील नासापुट द्वारा पूर्वकल्पित पुष्पाञ्जलि में अर्पित करते हुए इस मन्त्र से देवी का आवाहन करना चाहिए।

ॐ चैतन्यं हृत्कमलतोनासिकारन्ध्र निर्गतम् ।
ब्रह्मरन्ध्रस्य मार्गेण योजितं कुसुमाञ्जलौ ॥
महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्द विग्रहे ।
सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि ॥

इस प्रकार पुष्पाञ्जलि में देवी का आवाहन करें। उन पुष्पों को श्रीयन्त्र पर चढ़ाकर यह प्रार्थना करनी चाहिए, यथा—

ॐ देवेशि भक्तिसुलभे सर्वावरण संयुते ।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वां सु स्थिरा भव ॥

स्थापना—फिर 'ह्स्रैं ह्स्क्लरीं हसौः श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरि चक्रेऽस्मिन् कुरु सान्निध्यं नमः'—मन्त्र से स्थापनीमुद्रा द्वारा स्थापन करना चाहिए।

आसन—मूलमन्त्र बोलकर—'ॐ सर्वान्तिर्यामिनि देवि सर्वबीजमयं शुभम् स्वात्मस्थाप्यपरं शुद्धमासनं कल्पयाभ्यहम् आसनं गृहाण नमः' मन्त्र से देवी को आसन देना चाहिए।

उपवेशन—मूलमन्त्र बोलकर "ॐ अस्मिन् वरासने देवि सुखासीनाऽक्षरात्मके। प्रतिष्ठिता भवेशि त्वं प्रसीदपरमेश्वरि ॥ उपविष्टाभव नमः" मन्त्र से देवी को अपने समीप प्रदत्त दिव्य आसन पर बैठना चाहिए।

सन्निधीकरण—मूलमन्त्र बोलकर "ॐ अनन्यं तव देवेशि यन्त्रं शक्तिरिदं वरे। सान्निध्यं कुरु तस्मिन्त्वं भक्तानुग्रहतत्परे ॥ भगवति त्रिपुरसुन्दरि इह सन्निधेहि" मन्त्र से पूर्वोक्त सन्निधान मुद्रा द्वारा सन्निधीकरण करना चाहिए।

सन्निरोधन—मूलमन्त्र बोलकर "ॐ आज्ञया तव देवेशि कृपाम्भोधे गुणाम्बुधे आत्मानन्दैकतृप्तां त्वां निरुणध्मि पितुर्गुरौ श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरि सन्निरुध्यस्व" मन्त्र से पूर्वोक्त सन्निरोध मुद्रा द्वारा सन्निरोधन करना चाहिए।

सम्मुखीकरण—मूलमन्त्र बोलकर "ॐ अज्ञानाद् दुर्मनस्ताद्वा वैकल्यात्साधनस्य च यदा पूर्णं भवेत्कृत्यं तदप्यभिमुखी भव श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरि इह समुखी भव" मन्त्र से पूवोक्त सम्मुखीमुद्रा द्वारा सम्मुखीकरण करना चाहिए।

सकलीकरण—देवी के अंगों में षडङ्गन्यास करना चाहिए। यह सकलीकरण कहलाता है। न्यास के मन्त्र इस प्रकार हैं—

श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा। कएईल ह्रीं शिखायै वषट्। हसकहलह्रीं कवचाय हुम्। सकलह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्। सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं अस्त्राय फट्।

अवगुण्ठन - मूलमन्त्र बोलकर "ॐ अव्यक्त वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रप्रज्ज्वलितद्युते स्वतेज पुज्जकेनाशुवेष्टिता भव सर्वतः श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरि हुम्"—मन्त्र से पूर्वोक्त अवगुण्ठन मुद्रा से अवगुण्ठन करना तथा छोटिका मुद्रा द्वारा दिग्वन्धन करना चाहिए।

इसके बाद धेनु मुद्रा से अमृतीकरण तथा महामुद्रा से परमीकरण करने के बाद मूलमन्त्र से ३ बार देवी का पूजन कर निम्न श्लोकों से स्वागत करना चाहिए, यथा—

यस्याः दर्शनमिच्छन्ति देवाः स्वाभीष्टसिद्धये।
तस्यै ते परमेशायै स्वागतं स्वागतं च ते ॥
कृतार्थोनुग्रहीतोऽस्मि सफलं जीवितं मम।
आगता देवि देवेशि सुस्वागतमिदं पुनः ॥

पाद्य—जल में श्यामाक, विष्णुक्रान्ता, कमल एवं दूर्वा डालकर "मूलं एतत्पाद्यं श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्यै नमः"—मन्त्र से पाद्य देना चाहिए।

अर्घ्य—अर्घ्य पात्र में दूर्वा, तिल, दर्भाग्र, सरसों, जौ, पुष्प, गन्ध एवं अक्षत लेकर "मूलं इदमर्घ्यं श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्यै स्वाहा" मन्त्र से अर्घ्य देना चाहिए।

आचमन—आचमनोय जल में लौंग, जायफल एवं कंकोल डालकर 'मूलं इद मामचनीयं स्वधा मन्त्र से आचमन कराना चाहिए।

स्नान—स्नानीय जल में चन्दन, अगर एवं सुगन्धित द्रव्य डालकर 'मूलं स्नानीयं निवेदयामि' मन्त्र से स्नान कराना चाहिए। फिर, पञ्चामृत, शुद्धोदक एवं गन्धोदक से स्नान कराकर सर्वाङ्ग स्नान कराना चाहिए और इसके बाद अभिषेक करना चाहिए।

इसके बाद पुनः आचमन कराकर वस्त्र एवं उत्तरीय समर्पित करना चाहिए। फिर पुनः आचमन कराके अलंकार एवं आभूषण समर्पित करने चाहिए।

गन्ध—'मूलं एवं गन्धो नमः' मन्त्र से गन्धमुद्रा (कनिष्ठांगुष्ठ योगेन गन्ध मुद्रां प्रदर्शयेत्) द्वारा गन्ध लगाना चाहिए और इसके बाद नाना परिमल सौभाग्य द्रव्य अर्पित करने तथा अक्षत चढ़ाने चाहिए।

पुष्प—'मूलं एतानि पुष्पाणि वौषट्' मन्त्र से पुष्प मुद्रा (अंगुष्ठानाभिकाभ्यां पुष्पमुद्रा प्रकीर्तिता) द्वारा ऋतुकालोद्भव पुष्प चढ़ाने चाहिए।

इसके बाद ३ पुष्पाञ्जलियाँ समर्पित कर विधिवत देवी का ध्यान कर उनके परिवार के पूजनार्थ आज्ञा माँगनी चाहिए।

छटवाँ अध्याय

अथ श्री विद्या परिवार प्रपूजन

श्री विद्याया अथोवक्ष्ये परिवार प्रपूजनम् ।
कृतेन येन मन्त्रज्ञो लभते वांछिताधिकम् ।।१।।

श्री विद्या का पूजन—अब श्रीविद्या के परिवार पूजन की रीति बतलाता हूँ, जिसके करने से मान्त्रिक इच्छा से भी अधिक फल पाता है ।

शुक्लपक्षे यजेन्नित्याः कामेश्वर्यादिषोडश ।
कृष्णपक्षे विचित्राद्याः कामेश्वर्यं वसानकाः ।।२।।
षोडशीं च यजेन्मध्ये वक्ष्ये तद्यजनक्रमम् ।
एकैकं स्वर मुच्चार्यं नित्यामन्त्रं समुच्चरेत् ।।३।।
कामेश्वर्या दिनामान्ते नित्या श्रीपादुकां पठेत् ।
पूजयामितर्पयामिहृदयं प्रोच्य पूजयेत् ।।४।।
बिन्दु परित आकल्प्य त्रिकोणेबिन्दुतोन्तिमम् ।
दक्षहस्तेन पुष्पादिवामेनाम्भो विनिः क्षिपेत् ।।५।।
के चिदाहुरिहाचार्या आर्द्रकेण जलं क्षिपेत् ।
वामावर्तेन सम्पूज्याः कोणपार्श्वेषु पञ्चशः ।।६।।

शुक्ल पक्ष में कामेश्वरी से विचित्रा तक नित्याओं का तथा कृष्ण पक्ष में बिचित्रा से कामेश्वरी तक नित्याओं का (त्रिकोण की रेखाओं के पास ५-५ के क्रम से तथा वामावर्त क्रम से) पूजन करना चाहिए । मध्य (त्रिन्दु) में षोडशी का मूल मन्त्र से पूजन करना चाहिए ।

उनकी पूजाविधि इस प्रकार है—एक-एक स्वर बोलकर (वक्ष्यमाण) नित्याओं का १-१ मन्त्र बोलना चाहिए और फिर कामेश्वरी आदि का नाम लेकर 'नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' लगाकर पूजन करना चाहिए । बिन्दु ऊपर त्रिकोण में वामावर्त क्रम से इनकी कल्पना करनी चाहिए तथा बिन्दु को अन्तिम मानना चाहिए । दाहिने हाथ से (पूजयामि कहते समय) पुष्पादि एवं बाँयें हाथ से (तर्पयामि कहते समय) जल या गाय का दूध चढ़ाना चाहिए । कुछ

आचार्यों का कहना है कि अदरख के साथ जल चढ़ाना चाहिए। त्रिकोण (की रेखाओं) के पास ५-५ के क्रम से तथा वामावर्त क्रम से इनका पूजन करना चाहिए।

नित्यामन्त्राः प्रवक्ष्यन्ते स्मृताः सर्वेष्टसिद्धदाः।
बालातारोनमः कामेश्वरिहृग्दीर्घजादिमः ।।७।।
कामफलप्रदेसर्वसत्त्ववान्ते तु शङ्करि।
सर्वान्ते तु जगद्वर्णात्क्षोभणान्ते करीति च ।।८।।
वर्मत्रयं पञ्चबाणाः प्रतिलोमाकुमारिका।
कामेश्वरी मनुः प्रोक्तः षट्चत्वारिंशदर्णवान् ।।९।।

नित्याओं के मन्त्र (१) कामेश्वरी मन्त्र का उद्धार—अब स्मरण करने मात्र से सब अभीष्टों के देने वाली नित्याओं के मन्त्रों को बतलाता हूँ—

बाला (ऐं क्लीं सौः) तार (ॐ) एवं 'नमः कामेश्वरि' फिर हृक् एवं दीर्घ जादि (इच्छा) फिर 'कामफलप्रदे सर्वसत्त्वव' 'शंकरिसर्वे' 'जगत' 'क्षोभण' एवं 'करि' फिर वर्मत्रय (हुं हुं हुं) पञ्चबाण (द्रां द्रां क्लीं ब्लूं सः) और अन्त में प्रतिलोमा बाला (सौः क्लीं ऐं) लगाने से ४६ अक्षर का कामेश्वरी मन्त्र बनता है।

१. कामेश्वरी का मन्त्र—ऐं क्लीं सौः ॐ नमः कामेश्वरि इच्छा कामप्रदे सर्वसत्ववशङ्करि सर्वजगत्क्षोभणकरि हुं हुं हुं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः सौः क्लीं ऐं।

कामेश्वरी का पूजनमन्त्र—अं "ऐं क्लीं सौः·········०" कामेश्वरिनित्या श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

वाग्बीजं भगकर्णाढ्यानिद्रा गेभगिनीति च।
भगोदरीतिवर्णान्ते भगमाले भगावहे ।।१०।।
भगगुह्येभगान्तेस्याद्योनेभगनिपातिनि।
सर्वान्ते भगशब्दान्ते वशङ्करिभगेति च ।।११।।
रूपेनित्यपदंक्लिन्नेभगस्वाग्निः सदीपकः।
पेसर्वंभस्मृतिर्दीर्घानिमेह्यानयवाग्नयः ।।१२।।
देरेते सुसझिण्टीशः पावकस्तेभगार्णकाः।
क्लिन्ने क्लिन्नद्रवेक्लेदयद्रावय च केशवः ।।१३।।
मोधेभगान्ते विच्चेचक्षुभक्षोभयसर्वंच।
सत्त्वान्भगेश्वरिप्रान्तेबाग्ब्लूं जंब्लूं चभेंपुनः ।।१४।।
ब्लूं मोंब्लूं हेंपुनब्लूं होंक्लिन्ने सर्वाणिभाक्षरम्।
गानिमेवशमानान्तेमारुतः स्त्रीं हरेति च ।।१५।।
ब्लें मायाङ्गत्रिभूवर्णाप्रोदिताभगमालिनी।'

२. भगमालिनी मन्त्र का उद्धार—वाग् वीज (ऐं) फिर 'भग' एवं कर्णाढ्या निद्रा (भु) फिर 'गे भगिनि' 'भगोदरि' भगमाले भगावहे, 'भगगुह्ये भग' के बाद 'योनेभगनिपातिनि' सर्व 'भग' 'वशंकरिभग' 'रूपेनित्य' 'क्लिन्ने भगस्व' तथा सदीपक अग्नि (रू) फिर 'पे सर्वभ' एवं दीर्घास्मृति (गा) फिर 'न मे ह्यानय व' एवं अग्नि (र) फिर 'देरेतेसु' एवं संझिटीश पावक (रे) फिर 'ते भग' 'क्लिन्ने क्लिन्नद्रवे क्लेदय द्रावय' एवं केशव (अ) फिर 'मोघे भग' 'विच्चे' 'क्षुभक्षोभय सर्वं' 'सत्वान् भगेश्वरि' फिर वाक् (ऐं) 'ब्लूं जं ब्लूं' 'में' 'ब्लू मों ब्लूं हें' 'सर्वाणिभ' 'गानिमेवशमान' एवं मारुत (य) फिर 'स्त्रीं हर' 'ब्लें' और अन्त में माया (ह्रीं) लगाने से १३६ अक्षर का भगमालिनी का मन्त्र बतलाया गया है।

भगमालिनी का मन्त्र—ऐं भगभुगे भगिनि भगोदरि भगमाले भगावहे भगगुह्ये-भग योनि भगनिपातिनि सर्वभगवशंकरि भगरूपे नित्यक्लिन्ने भगस्वरूपे सर्वभगानि मे ह्यानय वरदे रेते सुरेते भगक्लिन्ने क्लिन्नद्रवे क्लेदय द्रावय अमोघे भगविच्चे क्षुभक्षोभय सर्वसत्वान् भगेश्वरि ऐं ब्लूं जं ब्लूं में ब्लूं मों ब्लूं हें ब्लूं ह्रों क्लिन्ने सर्वाणि भगानि मे वशमानय स्त्रीं हर ब्लें ह्रीं।

पूजा मन्त्र—आं 'ऐं भगभुगे.......०" भगमालिनी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

नित्यक्लिन्नेमदद्रान्तेपद्मनाभयुतञ्जलम् ॥१६॥
मायाद्याग्निप्रियान्तेयंनित्यक्लिन्नाशित्राक्षरः।

३. नित्यक्लिन्ना के मन्त्र का उद्धार—'नित्यक्लिन्ने मदद्र' के बाद पद्मनाभ सहित जल (वे) तथा प्रारम्भ में माया (ह्रीं) और अन्त में अग्नि प्रिया (स्वाहा) लगाने से ११ अक्षर का नित्यक्लिन्ना का मन्त्र बनता है।

नित्यक्लिन्ना का मन्त्र—ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा।

इनका पूजन मन्त्र—इं 'ह्रीं नित्यक्लिन्ने.......०" नित्य क्लिन्ना नित्या श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

बान्तोरेफासनस्तारसंयुतोंकुशसम्पुटः ॥१७॥
चवर्ग वर्णाश्चत्वारोवह्निमन्बिन्दुसंयुताः।
वह्निप्रियान्तस्ताराद्योभेरुण्डायादशाक्षरः ॥१८॥

४. भेरुण्डा मन्त्र का उद्धार—तार संयुत रेफासन बान्त (भ्रों)—यह अंकुश (क्रों) से सम्पुटित (क्रों भ्रों क्रों) फिर वह्नि, मनु एवं बिन्दु संयुक्त चवर्ग के ४ वर्ण (च्रौं छ्रौं ज्रौं झ्रौं) और अन्त में अग्निप्रिया (स्वाहा) तथा प्रारम्भ में तार (ॐ) लगाने से १० अक्षर का भेरुण्डा का मन्त्र बनता है।

भेरुण्डा का मन्त्र—ॐ क्रों भ्रों क्रों च्रौं छ्रौं ज्रौं झ्रौं स्वाहा।

इनका पूजन मन्त्र—ईं ॐ क्रों भ्रों·······०'' भेरुण्डा नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

मायान्ते वह्निवासिन्यैप्रणवाद्योनमोन्तिकः।
मन्त्रोयं वह्निवासिन्यानववर्णसमीरितः ॥१६॥

५. वह्नि वासिनी के मन्त्र का उद्धार—माया (ह्रीं) के बाद ''वह्निवासिन्यै'' और अन्त में नमः तथा प्रारम्भ में प्रणव लगाने से वह्निवासिनी का ६ अक्षर का मन्त्र बतलाया गया है।

वह्निवासिनी का मन्त्र—ॐ ह्रीं वह्निवासिन्यै नमः।

इनका पूजन मन्त्र—उं 'ॐ ह्रीं वह्निवासिन्यै नमः' वह्निवासिनीनित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

तारोमायाशिखीवह्नि पद्मनाभेन्दुसंयुतः।
सविसर्गो भृगुर्नित्यक्लिन्नेपश्चान्मदद्रवे ॥२०॥
स्वाहान्तो मनुवर्णोयं महाविद्येश्वरी मनुः।

६. महाविद्येश्वरी के मन्त्र का उद्धार—तार (ॐ) माया (ह्रीं) वह्नि पद्मनाभ एवं इन्दु सहित शिखी (फ्रें) फिर विसर्ग सहित भृगु (सः) फिर 'नित्यक्लिन्ने' 'मदद्रवे' और अन्त में 'स्वाहा' लगाने से महाविद्येश्वरी का १४ अक्षर का मन्त्र बनता है।

महाविद्येश्वरी का मन्त्र—ॐ ह्रीं फ्रें सः नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा।

इनका पूजा मन्त्र—ॐ ॐ ह्रीं फ्रें सः·······०' महाविद्येश्वरी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

शिवदूतीचतुर्थ्यन्ता मायाद्याहृदयान्तिका ॥२१॥
शिवदूती मनुःप्रोक्तः सप्तवर्णोखिलेष्टदः।

७. शिवदूती के मन्त्र का उद्धार—चतुर्थ्यन्त शिवदूती (शिवदूत्यै) के प्रारम्भ में माया (ह्रीं) तथा अन्त में हृदय (नमः) लगाने से सर्वाभीष्टप्रद शिवदूती का ७ अक्षर का मन्त्र कहा गया है।

शिवदूती का मन्त्र—ह्रीं शिवदूत्यै नमः।

पूजन मन्त्र—ऋं 'ह्रीं शिवदूत्यै नमः' शिवदूती नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

तारः परावर्म खेचछेक्षः स्त्रीवामकर्णयुक् ॥२२॥
गगनं शशि संयुक्तं मेरुर्भगयुतोद्रिजा।
फडन्तो द्वादशार्णोयं त्वरितायां मनुर्मतः ॥२३॥

८. त्वरिता के मन्त्र का उद्धार—तार (ॐ) परा (ह्रीं) वर्म (हुं) फिर

'खेचछेक्ष: स्त्रीं' वामकर्ण एवं शशि सहित गगन (हूँ) भगयुत मेरु (क्षे) अद्रिजा (ह्रीं) तथा अन्त में 'फट्' लगाने से त्वरिता का १२ अक्षर का मन्त्र बतलाया गया है।

त्वरिता का मन्त्र—ॐ ह्रीं हुं खेचछे क्षः स्त्रीं हूं क्षे ह्रीं फट्।

पूजन मन्त्र—ॠं 'ॐ ह्रीं हुं........०' त्वरिता नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

दामोदरोबिन्दुयुतः कलौशान्तीन्दुसंयुतौ।
भृगुर्मनु विसर्गाद्यस्त्र्यक्षराकुल सुन्दरी ॥२४॥

९. कुल सुन्दरी के मन्त्र का उद्धार—बिन्दुयुत दामोदर (ऐं) शान्ति एवं इन्दुसहित क, ल (क्लीं) मनु एवं विसर्ग सहित भृगु (सौः) यह ३ अक्षर का कुल-सुन्दरी का मन्त्र है।

कुलसुन्दरी का मन्त्र—ऐं क्लीं सौः।

पूजन मन्त्र—लृं ऐं क्लीं सौः कुलसुन्दरी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

भैरवीबालयायुक्ताप्राक्पश्चाच्चक्रमोत्क्रमात्।
तदन्ते पञ्चबाणाः स्युर्नित्यामन्वक्षरेरिता ॥२५॥

१०. नित्या के मन्त्र का उद्धार—आगे एवं पीछे क्रम एवं उत्क्रम से बाला-मन्त्र (ऐं क्लीं सौः) से संपुटित त्रिपुरभैरवी (हस्रौ ह्स्क्लरी हस्रौः) और इसके बाद पंचबाण बीज (द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः) लगाने से नित्या का १४ अक्षर का मन्त्र बनता है।

नित्या का मन्त्र—ऐं क्लीं सौः ह्स्रौः ह्स्क्लरीं हस्रौः सौः क्लीं ऐं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः।

पूजन मन्त्र—लॄं 'ऐं क्लीं सौः........०' नित्या श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

तारोमायाफान्तरेफौ झिण्टीशशशिसंयुतौ।
हंसोग्न्यर्घीश बिन्द्वाढ्योहृल्लेखां कुशनित्यम् ॥२६॥
दद्रवेवर्मं सृण्यन्ताप्रोक्तानीलपताकिनी।
चतुर्दशाक्षरा सर्वत्रैलोक्याकर्षणक्षमा ॥२७॥

११. नीलपताकिनी के मन्त्र का उद्धार—तार (ॐ) माया (ह्रीं) झिंटीश एवं शशि सहित फ एवं रेफ (फ्रें), अग्नि, अर्धीश एवं बिन्दु सहित हंस (स्रं) फिर हृल्लेखा (ह्रीं) अंकुश (क्रों) तथा 'नित्यमदद्रवे' फिर वर्म (हुं) तथा अन्त में असृणि (क्रों) लगाने से समस्त त्रिलोकी को आकर्षित करने योग्य नीलपताकिनी का १४ अक्षर का मन्त्र कहा गया है।

नीलपताकिनी का मन्त्र—ॐ ह्रीं फ्रें स्त्रं ह्रीं क्रों नित्यम दद्रवे हुं क्रों ।

पूजन मन्त्र—ऐं 'ॐ ह्रीं फ्रें········०' नीलपताकिनी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

वराहहंसचण्डीशजनार्दनकृशानवः ।
पद्मनाभेन्दुसंयुक्ताविजयायै नमोन्तिकः ॥२८॥
विजयायामनुः प्रोक्तः सप्तवर्णोखिलार्थदः ।

१२. विजया के मन्त्र का उद्धार—पद्मनाभ एवं इन्दु सहित वराह, हंस, चण्डीश, जनार्दन एवं कृशानु (ह्स्ख्फ्रें) और फिर 'विजयायै नमः' लगाने से सर्वार्थदायक विजया का ७ अक्षर वाला मन्त्र है ।

विजया का मन्त्र—ह्स्ख्फ्रें विजयायै नमः ।

पूजन मन्त्र—ऐं 'ह्स्ख्फ्रें विजयायै नमः' विजयानित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

ताराढ्यौ भृगुखड्गीशौ ङेन्तास्यात्सर्वमङ्गला ॥२९॥
नमोन्तो मनुराख्यातौ नवार्णः सर्वमङ्गलः ।

१३. सर्वमङ्गला के मन्त्र का उद्धार—तार सहित भृगु एवं खड्गी (स्वौं) फिर चतुर्थ्यन्त सर्वमङ्गला (सर्वमङ्गलायै) और अन्त में 'नमः' लगाने से सर्वमङ्गलकारक यह ९ अक्षर का मन्त्र बतलाया गया है ।

सर्वमङ्गला का मन्त्र—स्वौं सर्वमङ्गलायै नमः ।

पूजन मन्त्र—ओं 'स्वौं सर्वमङ्गलायै नमः' सर्वमङ्गलानित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

तारो नमोभगवतिज्वालामालिनितत्परम् ॥३०॥
देव्यंते सर्वभूतान्ते संहारान्ते तु कारिके ।
जातवेदसिवर्णान्ते ज्वलन्ति प्रज्ज्वलन्ति च ॥३१॥
ज्वलद्वयंप्रज्ज्वलान्ते कवचंपावकद्वयम् ।
वर्मास्त्रान्तोदिताज्वालामालिन्यष्टयुगाक्षरा ॥३२॥

१४. ज्वालामालिनी के मन्त्र का उद्धार—तार (ॐ) 'नमो भगवति ज्वालामालिनी' के बाद 'देवि' 'सर्वभूत' 'संहार' 'कारिके' एवं 'जातवेदसि' 'ज्वलन्ति प्रज्ज्वलन्ति' फिर दो बार ज्वल (ज्वल ज्वल) 'प्रज्ज्वल' एवं कवच (हुं) के बाद दो बार पावक (रं रं) वर्म (हुं) तथा अन्त में अस्त्र (फट्) लगाने से ज्वालामालिनी का ४८ अक्षर का मन्त्र बनता है ।

ज्वालामालिनी का मन्त्र—ॐ नमो भगवति ज्वालामालिनी देवि सर्वभूतसंहारकारिके जात वेदसि ज्वलन्ति प्रज्ज्वलन्ति ज्वल ज्वल प्रज्ज्वल हुं रं रं हुं फट् ।

पूजन मन्त्र—औं 'ॐ नमो भगवति……०' ज्वालामालिनी नित्या श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

क्रर्मः क्रोधीषमन्बिन्दु संयुतो ह्येकवर्णकः ।
विचित्रायामनुश्चैता नित्याः पञ्चदशोदिताः ।।

१५. विचित्रा के मन्त्र का उद्धार—मनु एवं बिन्दु सहित क्रूर्म एवं क्रोधीश (च्कौं) यह विचित्रा का एकाक्षर मन्त्र है। इस प्रकार ये १५ नित्यायें बतायी गईं ।

विचित्रा का मन्त्र—च्कौं ।

पूजन मन्त्र—अं च्कौं विचित्रा नित्या श्रीपादुकां पजयामि तर्पयामि नमः।

मूलेन षोडशीं मध्ये यजेत्त्रिपुरसुन्दरीम् ।
बिन्दुत्रिकोणयोर्मध्ये त्रिभङ्गीभिर्गुरुन्यजेत् ।।३४।।

(त्रिकोण में इन १५ नित्याओं का पूजन कर) मध्य बिन्दु में मूल मन्त्र से १६ वीं महात्रिपुर सुन्दरी का पूजन करना चाहिए। बिन्दु एवं त्रिकोण के बीच की ३ पंक्तियों में गुरुओं का पूजन करना चाहिए।

षोडशी पूजन मन्त्र—अः (अं) मूलं महात्रिपुर सुन्दरीनित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

दिव्यौघाश्चपिसिद्धौघा मानवौघास्त्रिधाहिते ।
परप्रकाशः प्रथमस्ततः परशिवाभिधः ।।३५।।
परशक्तिश्चकौलेशः :शुक्लादेवी कुलेश्वरः ।
कामेश्वरीतिसप्तैव दिव्यौघा गुरवः पराः ।।३६।।
भोगः क्रीडश्चसमयः सहजश्चपरावरः ।
सिद्धौघगुरवश्चैते चत्वारः परिकीर्तिताः ।।३७।।
गगनोविश्वविमलौ मदनो भुवनस्तथा ।
लीलास्वात्माप्रियेत्यष्टौमानवाअपरामताः ।।३८।।

त्रिविध गुरु—दिव्यौघ, सिद्धौघ एवं मानवौघ के भेद से गुरु तीन प्रकार के होते हैं। पर प्रकाश, परशिव, परशक्ति, कौलेश, शुक्लादेवी, कुलेश्वर एवं कामेश्वरी—ये ७ परम दिव्यौघ गुरु हैं। भोग, क्रीड, समय, सहज—ये ४ परावर सिद्धौघ गुरु बताए गए हैं। गगन, विश्व, विमल, मदन, भुवन, लीला, स्वात्मा एवं प्रिया—ये ८ अपर मानवौघ गुरु कहे गए हैं।

आनन्दनाथशब्दान्ताः पुरुषागुरवः स्मृता ।
अम्बान्तास्तुस्त्रियः कार्याः सर्वसिद्धिप्रदायिकाः ।।३९।।
परशक्तिस्तथाशुक्लादेवी कामेश्वरीति च ।
तिस्रः स्त्रियस्तुदिव्येषु प्रियालीलेतिमानवे ।।४०।।

श्री पादुकां पूजयामीत्यन्ते सर्वत्र योजयेत् ।

गुरु पूजन के मन्त्र—पुरुष गुरुओं के नाम के बाद 'आनन्द नाथ' तथा स्त्री गुरुओं के नाम के बाद 'अम्बा' शब्द लगाना चाहिए। ये सब प्रकार की सिद्धि देने वाले हैं।

दिव्यौघ गुरुओं में परशक्ति, शुक्ला एवं कामेश्वरी ये तीन स्त्रियाँ हैं। तथा मानवौघ गुरुओं में लीला एवं प्रिया ये २ स्त्रियाँ हैं। (इस प्रकार इनके नामों के बाद) 'श्रीपादुकां पूजयामि नमः' यह पद सर्वत्र लगाना चाहिए।

पूजन मन्त्र—पर प्रकाशानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि नमः। परशिवानन्द नाथ श्रीपादुकां पूजयामि नमः। परशक्त्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामिः नमः, इत्यादि।

ततो बिन्दोश्चतुर्दिक्षु यजेदाम्नायदेवताः ॥४१॥
पूर्वदक्षिणमाम्नायं पश्चिमं चोत्तरं तथा।

आम्नाय देवताओं का पूजन—फिर विन्दु के चारों ओर क्रमशः पूर्व दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर आम्नाय के देवताओं का पूजन करना चाहिए।

पूजन मन्त्र—ह्रीं श्रीं पूर्वाम्नायदेवता श्रीपादुकां पूजयामि नमः।
ह्रीं श्रीं दक्षिणाम्नाय देवता श्रीपादुकां पूजयामि नमः।
ह्रीं श्रीं पश्चिमाम्नायदेवता श्रीपादुकां पूजयामि नमः।
ह्रीं श्रीं उत्तराम्नाय देवता श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

ततः प्रपूजयेद्दिक्षु मध्येतः पञ्चपञ्चिकाः ॥४२॥
आद्यां मध्ये चतस्रोन्याः पूर्वाद्याशासु पूजयेत्।
पञ्चस्वपिगणेष्वत्र श्रीविद्याद्या प्रकीर्तिता ॥४३॥
श्रीविद्या च तथा लक्ष्मीर्महालक्ष्मीस्तृतीयका।
त्रिशक्तिः सर्वसाम्राज्यपञ्चलक्ष्म्यः प्रकीर्तिताः ॥४४॥
श्रीविद्याचपरंज्योतिः परनिष्कलशाम्भवी ।
अजपामातृकाचेतिपञ्चकोशा इमे स्मृताः ॥४५॥
श्रीविद्यात्वरिता चैव पराजितेश्वरीपुनः ।
त्रिपुटापञ्चबाणेशीपञ्चकल्पलता इमाः ॥४६॥
श्रीविद्यामृत पीठेशी सुधाश्रीर मृतेश्वरी।
अन्नपूर्णेतिविख्याताः पञ्चैताः कामधेनवः ॥४७॥
श्रीविद्यासिद्धलक्ष्मीश्चमातङ्गी भुवनेश्वरी ।
वाराही च स्मृतंचैतन्मुनिभिरत्नपञ्चकम् ॥४८॥
श्रीविद्यां मूलमन्त्रेण मध्ये संयोज्य पूजयेत्।
क्रमतोन्याश्चतुर्दिक्षु तासां मन्त्रान्क्रमाद्ब्रुवे ॥४९॥

पंचपंचिकाएं—इसके बाद मध्य में तथा पूर्व आदि दिशाओं में पञ्च-पञ्चिकाओं का पूजन करना चाहिए। मध्य में आद्या का तथा पूर्व आदि दिशाओं में अन्य चारों का पूजन करना चाहिए।

पञ्चिकाओं के पाँचों वर्गों में आद्या श्रीविद्या ही बतलायी गयी हैं। श्रीविद्या, लक्ष्मी, महालक्ष्मी, त्रिशक्ति एवं सर्वसाम्राज्या—ये ५ लक्ष्मी कही गयी हैं। (यह आद्य पंचक लक्ष्मी संज्ञक हैं) श्रीविद्या, परंज्योति, परनिष्कलशांभवी, अजपा एवं मातृका इन पाँचों का यह पञ्चक कोश संज्ञक है। श्रीविद्या. त्वरिता, पारिजातेश्वरी, त्रिपुटा एवं पंचबाणेशी इनका यह पंचक कल्पलता संज्ञक है। श्रीविद्या, अमृतपाठेशी, सुधाश्री, अमृतेश्वरी एवं अन्नपूर्णा—इनका यह पञ्चक कामधेनु संज्ञक है।

श्रीविद्या, सिद्धलक्ष्मी, मातंगी, भुवनेशी एवं वाराही इन पाँचों का यह पञ्चक मुनियों ने रत्न संज्ञक कहा है।

श्रीविद्या का मध्य में मूलमन्त्र से पूजन करना चाहिए और अन्यों का क्रमशः पूर्व आदि चारों दिशाओं में पूजन करना चाहिए। अत्र उनके मन्त्रों को क्रमशः बतलाता हूँ।

वकेशो वह्निमारूढो वामनेत्रेन्दुसंयुतः।
लक्ष्मीमन्त्रोयमेकार्णस्तेन लक्ष्मीं प्रपूजयेत् ॥५०॥

तारपद्मा शक्ति पद्माकमले कमलालये।
प्रसीद युगलं लक्ष्मीर्मायापद्माध्रुवोमहा ॥५१॥
लक्ष्म्यैनमोन्तो मन्त्रोयमष्टाविंशतिवर्णवान्।
पूज्यानेन महालक्ष्मीः श्रीविद्यादक्षिणे स्थिता ॥५२॥

लक्ष्मीर्मायामनोजन्मात्रिशक्तिर्मनुरीरितः।
त्रिवर्णोनेन सम्पूज्या त्रिशक्तिः पश्चिमे स्थिता ॥५३॥
भृग्वाकाशकलामायारूढापद्मालयापुटाः।
त्रिवर्णाः सर्वसाम्राज्या तां यजेदुत्तरस्थिताम् ॥५४॥

लक्ष्मी पंचक की देवियों के मन्त्रों का उद्धार—वामनेत्र एवं इन्दु सहित वह्नियुत बकेश (श्रीं)—यह एक अक्षर का लक्ष्मी का मन्त्र है। इससे (पूर्व में) लक्ष्मी का पूजन करना चाहिए।

तार (ॐ) पद्मा (श्रीं) शक्ति (ह्रीं) एवं कमला (श्रीं) फिर 'कमले कमलालये' एवं दो बार प्रसीद (प्रसीद प्रसीद) फिर लक्ष्मी (श्रीं) माया (ह्रीं) पद्मा (श्रीं) एवं ध्रुव (ॐ) और अन्त में 'महालक्ष्म्यै नमः' लगाने से २८ अक्षर का महालक्ष्मी

का मन्त्र बनता है। इससे श्रीविद्या के दक्षिण में महालक्ष्मी का पूजन करना चाहिए।

लक्ष्मी (श्रीं) माया (ह्रीं) एवं मनोजन्मा (क्लीं) यह तीन अक्षर का त्रिशक्ति का मन्त्र कहा गया है। इससे पश्चिम में स्थित त्रिशक्ति का पूजन करना चाहिए।

भृगु (स) आकाश (ह) फिर क, ल एवं माया (ह्रीं)—इस प्रकार 'स्हक्ल्ह्रीं' इस कूट को पद्मालया (श्रीं) से सम्पुटित करने पर तीन अक्षर का सर्वसाम्राज्या का मन्त्र बनता है। इससे उत्तर में स्थित सर्वसाम्राज्या का पूजन करना चाहिए।

लक्ष्मी का मन्त्र—श्रीं।

महालक्ष्मी का मन्त्र—ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं ॐ महालक्ष्म्यै नमः।

त्रिशक्ति का मन्त्र—श्रीं ह्रीं क्लीं।

सर्वसाम्राज्या का मन्त्र—श्रीं स्ह्क्ल्ह्रीं श्रीं।

इनके उक्त मन्त्रों के साथ 'श्रीपादुकां पूजयामि नमः' लगाने से इनके पूजन मन्त्र बन जाते हैं। यथा—

'मूलं' महात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः। 'श्रीं' लक्ष्मीं श्रीपादुकां पूजयामि नमः। 'ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं.......०' महालक्ष्मी श्रीपादुकां पूजयामि नमः। 'श्रीं ह्रीं क्लीं' त्रिशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि नमः। 'श्रीं स्ह्क्ल्ह्रीं श्रीं' सर्वसाम्राज्या श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

तारोमायाततोहंसः सोहंवह्नि प्रियान्तिमः।
अष्टवर्णः परंज्योतिर्मनुस्तां पूर्वतो यजेत् ॥५५॥

तारः परोनिष्कलश्चशाम्भवीज्या तु दक्षिणे।
नमः सबिन्दुसर्गाढ्यो भृगुद्व्र्यणजिपाऽपरे ॥५६॥
अकारादिक्षकारान्ता वर्णाः प्रोक्ता तु मातृका।

कोशपञ्चक की देवियों के मन्त्रों का उद्धार—तार (ॐ) माया (ह्रीं) फिर 'हंसः सोहं' और अन्त में वह्निप्रिया (स्वाहा) लगाने से ८ अक्षर का परंज्योति का मन्त्र बनता है। इससे पूर्व में उनकी पूजा करनी चाहिए।

तार (ॐ) फिर 'पर' 'निष्कल' एवं 'शाम्भवी' यह ९ अक्षर का परनिष्कल शाम्भवी का मन्त्र है। इससे दक्षिण में उनका पूजन करना चाहिए।

सबिन्दु नभ (हं) तथा विसर्गाढ्य भृगु (सः) यह २ अक्षर का अजपा का मन्त्र है। इससे पश्चिम में उनका पूजन करना चाहिए।

अकार से क्षकार पर्यन्त सानुस्वार वर्णमाला मातृका का मन्त्र कहा गया है।

परंज्योति का मन्त्र—ॐ ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा।

परनिष्कल शाम्भवी का मन्त्र—ॐ परनिष्कल शाम्भवी।

अजपा का मन्त्र—हंसः।

मातृका मन्त्र—अं आं इं ईं उं ऊं......हं ळं क्षं।

पूजन का मन्त्र—परंज्योति आदि के उक्त मन्त्रों के साथ उनके नाम और फिर 'श्रीपादुकां पूजयामि नमः' लगाने से उनके पूजन मन्त्र बन जाते हैं। यथा—

ॐ ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा परंज्योति श्रीपादुकां पूजयामि नमः इत्यादि।

प्रणवोभुवनेशीहुंखेचछेक्षः पदंपुनः ॥५७॥
स्त्रीं हुं मेरुः सझिण्टीशोमायास्त्रंद्वादशाक्षरः।
त्वरिताया मनुः प्रोक्तस्तेन तां पुरतोर्चयेत् ॥५८॥
आकाशहंसक्रोधीशपिनाकीशहराधराः।
सेन्दवस्तार मायाभ्यां सम्पुटाश्चसरस्वती ॥५९॥
ङेन्तोहृदन्तो मन्त्रोयं प्रोक्त एकादशाक्षरः।
अनेन पारिजातेशीं दक्षिणस्यां प्रपूजयेत् ॥६०॥
रमामायामनोभूमिस्त्रिवर्णात्रिपुटोदिता।
तां यजेत्पश्चिमे भागे बाणेशी मुत्तरे पुनः ॥६१॥
द्रांद्रींक्लींब्लूं भृगुः सर्गीसोदिता पञ्चवर्णका।

कल्पलता पंचक की देवियों के मन्त्रों का उद्धार—प्रणव (ॐ) भुवनेशानी (ह्रीं) फिर 'खेच छे क्षः' तथा 'स्त्रीं हुं' फिर संझिटीश मेरु (क्षे) माया (ह्रीं) तथा अन्त में अस्त्र (फट्) लगाने से १२ अक्षर का त्वरिता का मन्त्र कहा गया है। इससे पूर्व में उनका पूजन करना चाहिए।

बिन्दुओं के साथ आकाश (हं) हंस (सं) क्रोधीश (कं) पिनाकी (लं) तथा धरा एवं बिन्दु के साथ 'ह्' 'र' (ह्रं) इस कूट को तार (ॐ) तथा माया (ह्रीं) से सम्पुटित कर चतुर्थ्यन्त सरस्वती (सरस्वत्यै) तथा हृदय (नमः) लगाने से ११ अक्षर का पारिजातेश्वरी का मन्त्र बनता है। इससे दक्षिण दिशा में उनका पूजन करना चाहिए।

रमा (श्रीं) माया (ह्रीं) एवं मनोभूमि (क्लीं) यह तीन अक्षर का त्रिपुटा

का मन्त्र कहा गया है। उनका पश्चिम की ओर पूजन करना चाहिए। 'द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं' तथा सर्गी भृगु (सः) यह ५ अक्षर का पंचबाणेशी का मन्त्र कहा गया है। इनकी उत्तर में पूजा करनी चाहिए।

त्वरिता का मन्त्र—ॐ ह्रीं हु खेचछेक्षः स्त्रीं हुं क्षे ह्रीं फट्।

पारिजातेश्वरी का मन्त्र—ॐ ह्रीं हंसंकंलंह्रैं ह्रीं ॐ सरस्वत्यै नमः।

त्रिपुटा का मन्त्र—श्रीं ह्रीं क्लीं।

पञ्चबाणेशी का मन्त्र—द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः।

पूजन मन्त्र—त्वरिता आदि के उक्त मन्त्रों के आगे उनका नाम और फिर 'श्रीपादुकां पूजयामि नमः' लगाने से उनके पूजन मन्त्र वन जाते हैं यथा—

ॐ ह्रीं हुं खेचछेक्षः स्त्रीं हुं क्षे ह्रीं फट् त्वरिता श्रीपादुकां पूजयामि नमः इत्यादि।

वाक्कामौभृगुरौसर्गयुक्तो मन्त्रस्त्रिवर्णकः ॥६२॥
प्रोदितोऽमृतपीठेशी तेन तां पूर्वतो यजेत्।
नभोभृग्वग्नयोवामनेत्राढ्याश्चन्द्रभूषिताः ॥६३॥
सार्णाद्याभुवनेशी श्रींकलाद्याभुवनेश्वरी।
सुधाश्रीमन्त्रउदितो वेदार्णस्तां यजेदवाक् ॥६४॥
सकऐ नुग्रहीसर्गीकामोवागभ्रपूर्विका।
त्रिवर्णमनुनापश्चात्पूजयेदमृतेश्वरोमू ॥६५॥
विंशत्यर्णान्निपूर्णोक्ता तरङ्गे नवमे मया।
तन्मन्त्रेणोत्तरस्यां तु पूजयेदन्नदायिनीम् ॥६६॥

कामधेनु पञ्चक की देवियों के मन्त्रों का उद्धार—वाक् (ऐं) काम (क्लीं) तथा औ एवं विसर्ग सहित भृगु (सौः)—यह ३ अक्षर का अमृतपीठेशी का मन्त्र बतलाया गया है। इससे पूर्व में उनका पूजन करना चाहिए।

नभ (ह) भृगु (स्) अग्नि (र) इन तीनों को वामनेत्र (इ) एवं बिन्दु से युक्त करने पर 'ह्स्त्री' कूट बनता है। फिर आदि में सकार सहित भुवनेशी (स्ह्रीं) फिर 'श्री' और अन्त में कलाद्या भुवनेश्वरी (क्लीं) लगाने से ४ अक्षर का सुधा श्री का मन्त्र बनता है। इससे दक्षिण में उनकी पूजा करनी चाहिए।

अनुग्रही एवं सर्गी सकार (सौः) काम (क्लीं) तथा अभ्रपूर्वक वाक् (है)—इस ३ अक्षर के मन्त्र से अमृतेश्वरी का पश्चिम में पूजन करना चाहिए।

अमृतपीठेशी का मन्त्र—ऐं क्लीं सौः।

सुधा श्री का मन्त्र—ह्स्त्रीं स्ह्रीं श्रीं क्लीं।

अमृतेश्वरी का मन्त्र—सौः क्लीं हैं।

अन्नपूर्णा का मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा।

पूजन मन्त्र—अमृतपाठेशी आदि के उक्त मन्त्रों के आगे पूर्वोक्त रीति से उनके नाम तथा फिर 'श्री पादुकां पूजयामि नमः' लगाने से उनके पूजन मन्त्र बन जाते हैं, यथा—ऐं क्लीं सौः अमृतपाठेशी श्रीपादुकां पूजयामि नमः इत्यादि।

वाणीबीजं ततः क्लिन्ने कामबीजंमदद्रवे।
कुलेव राहहंसाग्निवर्णाऔसर्गसंयुताः ॥६७॥
एकादशाक्षरो मन्त्रः सिद्धलक्ष्म्याः समीरितः।
तेन तां पूजयेत्पूर्वे मातङ्गी दक्षिणे पुनः ॥६८॥
वाक्कामः सौः पुनर्वाणीमाया लक्ष्मीर्ध्रुवोनमः।
भगवान्तेतिमातङ्गी श्वरिसर्वजनार्णकाः ॥६९॥
मनोहरिपदंप्रोच्य सर्वराजवशङ्करि।
सर्वान्तेमुखरंज्यन्तेमेषोनेत्र समन्वितः ॥७०॥
सर्वस्त्रीपुरुषान्तेतुवशङ्करिपदंवदेत्
सर्वं दुष्टमृगप्रान्तेव शङ्करिपुनः पदम्।
सर्वलोकवशंपश्चात्करिमायांरमाङ्गजः
वाक्त्रिसप्ततिवर्णोयं मातंग्या उदितोमनुः ॥७१॥
गगनंवह्निनावामनेत्रेन्दुभ्यां समन्वितम्।
भुवनेशीमनुः प्रोक्तस्तेन तां पश्चिमे यजेत् ॥७२॥
तरङ्गे दशमे प्रोक्तो वेदरुद्राक्षरोमनुः।
वाराह्यास्तेन तांदेव्या वामभागे समर्चयेत् ॥७३॥

रत्नपञ्चक की देवियों के मन्त्रों का उद्धार—वाणी बीज (ऐं) फिर 'क्लिन्ने' कामबीज (क्लीं) एवं 'मदद्रवे कुले' और फिर औ एवं विसर्ग सहित वाराह (ह) हंस (स) एवं अग्नि (र) से बना कूट (ह्स्रौ)—यह ११ अक्षर का सिद्धलक्ष्मी का मन्त्र बतलाया गया है। इससे पूर्व में उनका पूजन करना चाहिए।

फिर दक्षिण में मातङ्गी का पूजन करना चाहिए। वाक् (ऐं) काम (क्लीं) 'सौः' फिर वाणी (ऐं) माया (ह्रीं) लक्ष्मी (श्रीं) तथा ध्रुव (ॐ) फिर 'नमः' 'भगव' 'ति मातङ्गीश्वरिसर्वजन' 'मनोहरि' कहकर 'सर्वराजवशंकरि' 'सर्व' 'मुख' 'रंज' एव नेत्र सहित मेष (नि) फिर 'सर्व स्त्रीपुरुष' के बाद वशंकरि' पद कहना चाहिए, फिर 'सर्वदुष्ट मृग' के बाद पुनः 'वशङ्करि' तथा 'सर्वलोकवशं' के बाद 'करि' फिर माया (ह्रीं) रमा (श्रीं) अङ्गज (क्लीं) तथा वाक् (ऐं) लगाने से ७३ वर्ण का यह मातङ्गी का मन्त्र कहा गया है।

वामनेत्र (इ) एवं इन्दु (अनुस्वार) सहित गगन (ह्) एवं वह्नि (र) अर्थात् "ह्रीं" यह भुवनेश्वरी का मन्त्र बतलाया गया है। इससे पश्चिम में उनका पूजन करना चाहिए।

सिद्धलक्ष्मी का मन्त्र—ऐं क्लिन्ने मदद्रवे कुले ह्सौः।

मातङ्गी का मन्त्र—ऐं क्लीं सौः ऐं ह्रीं श्रीं ॐ नमो भगवति मातङ्गीश्वरि सर्वजन मनोहरि सर्वराजवशङ्करि सर्वमुखरञ्जिनि सर्वस्त्रीपुरुष वशङ्करि सर्वदुष्ट मृग वशङ्करि सर्वलोकवशङ्करि ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं।

भुवनेश्वरी का मन्त्र—ह्रीं।

वाराही का मन्त्र—ॐ ऐं ग्लौं ऐं नमो भगवति वार्तालि वाराहि वाराहि वाराहमुखि ऐं ग्लौं ऐं अन्धेअन्धिनि नमः रुन्धेरुन्धिनि नमः जंभेजम्भिनि नमः मोहे मोहिनि नमः स्तम्भे स्तम्भिनि नमः ऐं ग्लौं ऐं सर्वदुष्ट प्रदुष्टानां सर्वेषां सर्ववाक् चित्तचतुर्मुखगतिजिह्वास्तम्भं कुरु कुरु शीघ्रं वशं कुरु कुरु ऐं ठः ठः ठः ठः हुं फट् स्वाहा।

पूजन मन्त्र—सिद्धलक्ष्मी आदि के उक्त मन्त्रों के आगे पूर्वोक्त रीति से उनका नाम तथा 'श्रीपादुकां पूजयामि नमः' लगाने से उनके पूजन मन्त्र बन जाते हैं, यथा—ऐं क्लिन्ने मदद्रवे कुले ह्स्रौः सिद्धलक्ष्मी श्रीपादुकां पूजयामि नमः इत्यादि।

पञ्चिका एवमाराध्य दर्शनानि यजेच्चषट्।
आद्यं मध्ये चतुर्दिक्षु चत्वारि पुरतोन्तिमम् ॥७४॥
शैवं शाक्तं तथा ब्राह्मं वैष्णवं सौरसौगतम्।
दर्शनान्येवमाराध्य मूलेन त्रिः प्रतर्पयेत् ॥७५॥

षड्दर्शनों का पूजन—इस प्रकार पाँचों पञ्चिकाओं का पूजन कर ६ दर्शनों का पूजन करना चाहिए। प्रथम दर्शन का मध्य में फिर अग्रिम चार दर्शनों का क्रमशः चारों दिशाओं में और अन्तिम दर्शन का अग्रभाग में पूजन करना चाहिए।

१—शैव, २—शाक्त, ३—ब्राह्म, ४—वैष्णव, ५—सौर एवं ६—सौगत ये ६ दर्शन हैं।

इस रीति से दर्शनों की पूजा कर मूलमन्त्र से तीन बार तर्पण करना चाहिए।

पूजन मन्त्र—उक्त ६ दर्शनों के नामों के आगे 'श्री पादुकां पूजयामि नमः' लगाने से उनके पूजन मन्त्र बन जाते हैं, यथा—शैव दर्शन श्रीपादुकां पूजयामि नमः इत्यादि।

तर्पण मन्त्र—मूलं महात्रिपुर सुन्दरी श्रीपादुकां तर्पयामि नमः।

अंगुष्ठानामिकाभ्यां तां यच्छेत्पुष्पं तु मुद्रया।
ज्ञानाख्यया सा चांगुष्ठतर्जनीयोगतो मता ॥७६॥
एवं सम्भूज्यविन्दुस्थां श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम्।
ततोगाद्यावृतीनां तु पूजनं सम्यगाचरेत् ॥७७॥

भगवती को अंगुष्ठ एवं अनामिका द्वारा पुष्प आदि समर्पित करने चाहिए किन्तु दर्शनों का पूजन ज्ञान मुद्रा द्वारा करना चाहिए। यह मुद्रा अंगुष्ठ एवं तर्जनी को मिलाने से बनती है।

इस प्रकार वैन्दक चक्र में स्थित श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी का पूजन करने के बाद फिर आवरण देवताओं का विधिवत् पूजन करना चाहिए।

श्री विद्यार्चन पद्धति—पिछले पृष्ठों में वतलायी गयी रीति से ध्यान-आवाहन उपचारों से तत्तद्मुद्राओं द्वारा पुष्पाञ्जलि समर्पण पर्यन्त विधिवत भगवती का पूजन कर तथा उनसे परिवार पूजन की आज्ञा लेकर सर्वप्रथम १६ नित्याओं का पूजन करना चाहिए।

बिन्दु एवं त्रिकोण के मध्य त्रिकोण की प्रत्येक भुजा के समीप ५-५ के क्रम से बामावर्त रीति से १५ नित्याओं का तथा मध्य में महाषोडशी का पूजन करना चाहिए। शुक्ल पक्ष में कामेश्वरी से प्रारम्भ कर विचित्रा पर्यन्त तथा कृष्ण पक्ष में विचित्रा से प्रारम्भ कर कामेश्वरी पर्यन्त १५ नित्याओं का पूर्वोक्त स्थानों पर पूजन किया जाता है।

एक एक स्वर बोलकर नित्या का मन्त्र फिर उनका नाम और उसके बाद 'नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' लगाने से उनके पूजन मन्त्र बन जाते हैं। दाहिने हाथ के अंगुष्ठ एवं अनामिका द्वारा 'पूजयामि' कहते समय पुष्प आदि चढ़ाने चाहिए तथा 'तर्पयामि' कहते समय बाएं हाथ से तत्वमुद्रा द्वारा जल या दूध चढ़ाना चाहिए। नित्याओं के पूजन मन्त्र इस प्रकार हैं।

अं 'ऐं क्लीं सौः········०' कामेश्वरी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। आं 'ऐं भगभुगे········०' भगमालिनी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। इं ह्रीं नित्य क्लिन्न········०' नित्यक्लिन्ना नित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। ईं 'ॐ क्रों भ्रों क्रों······०' भेरुण्डा नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। उं ॐ ह्रीं वह्निवासिन्यै नमः' वह्निवासिनी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। ऊं 'ॐ ह्रीं फ्रें स······०।' महाविद्येश्वरीनित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। 'ऋं ह्रीं शिवदूत्यै नमः' शिवदूती नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। ॠं 'ॐ ह्रीं हुं खे·······०' त्वरितानित्या

श्रीपादुकांपूजयामि तर्पयामि नमः। लूं ऐं क्लीं सौः कुल सुन्दरी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। लूं 'ऐं क्लीं सौः ह्स्रौं.......०' नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। ऐं 'ह्लीं फ्रें स्त्रं.........०' नीलपताकिनी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। ऐं 'ह्स्क्ष्फ्रें विजयायै नमः' विजयानित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। ओं 'ॐ स्वों सर्वमङ्गलायै नमः' सर्वमङ्गलानित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

औं 'ॐ नमो भगवति........०' ज्वालामालिनी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। अं च्कौं विचित्रा नित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। अं मूलं महात्रिपुरसुन्दरी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

इसके बाद बिन्दु एवं त्रिकोण के मध्य में तीन पंक्तियों में क्रमशः दिव्यौघ, सिद्धौघ एवं मानवौघ गुरुओं का निम्नलिखित मन्त्रों से पूजन करना चाहिए, यथा—

परप्रकाशानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि नमः। परशिवानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि नमः। परशक्त्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः। कौलेशानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि नमः। शुक्लादेव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः। कुलेश्वरानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि नमः। कामेश्वर्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः। भोगानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि नमः। क्रीडानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि नमः। समयानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि नमः। सहजानन्द नाथ श्रीपादुकां पूजयामि नमः। गगनानन्द नाथ श्रीपादुकां पूजयामि नमः। विश्वानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि नमः। विमलानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि नमः। मदनानन्द नाथ श्रीपादुकां पूजयामि नमः। भुवनानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि नमः लीलाम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः। स्वात्मानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि नमः। प्रियाम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

तत्पश्चात् बिन्दु के चारों ओर पूर्व आदि दिशाओं में आम्नाय देवताओं का निम्नलिखित मन्त्रों से पूजन करना चाहिए। यथा—

पूर्वाम्नाय देवता श्रीपादुकां पूजयामि नमः। दक्षिणाम्नाय देवता श्रीपादुकां पूजयामि नमः। पश्चिमाम्नाय देवता श्रीपादुकां पूजयामि नमः। उत्तराम्नाय देवता श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

तदनन्तर मध्य में श्रीविद्या का और चारों दिशाओं में अन्य देवियों का—इस रीति से पाँचों पञ्चिकाओं का निम्नलिखित मन्त्रों से पूजन करना चाहिए—यथा—

मूलं महात्रिपुर सुन्दरी श्रीपादुकाम् पूजयामि नमः मध्ये। श्रीं लक्ष्मी श्रीपादुकां पूजयामि नमः पूर्वे। 'ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले........' महालक्ष्मी श्री-

श्रीपादुकां पूजयामि नमः दक्षिणे। 'श्रीं ह्रीं क्लीं' त्रिशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि नमः पश्चिमे। श्रीं स्हृ्क्ल्ह्रीं श्रीं सर्वसाम्राज्या श्रीपादुकां पूजयामि नमः उत्तरे।

मूलं महात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः मध्ये। ॐ ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा परंज्योति श्रीपादुकां पूजयामि नमः पूर्वे। ॐ पर निष्कलशांभवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः-दक्षिणे। हंस, अजपा-श्रीपादुकां पूजयामि नमः-पश्चिमे। अं आं इं·······ळ क्षं मातृका श्रीपादुकां पूजयामि नमः- उत्तरे।

मूलंमहात्रिपुर सुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः मध्ये। 'ॐ ह्रीं हुं खे····०' त्वरिता श्रीपादुकां पूजयामि नमः पूर्वे। 'ॐ ह्रीं हं सं कं लं ह्रं·······०' पारिजातेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः दक्षिणे। 'श्रीं ह्रीं क्लीं' त्रिपुटा श्रीपादुकां पूजयामि नमः। द्रांद्रीं क्लीं ब्लूं सः पञ्चवाणेशी श्रीपादुकां पूजयामि नमः-उत्तरे।

मूलं महात्रिपुर सुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः मध्ये। ऐं क्लीं सौः अमृतपाठेशी श्रीपादुकां पूजयामि नमः पूर्वे। ह्स्रौ स्ह्रीं श्रीं क्लीं सुधाश्री श्रीपादुकां पूजयामि नमः दक्षिणे। सौः क्लीं ह्रैं अमृतेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः पश्चिमे। 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमो····०' अन्नपूर्णा श्रीपादुकां पूजयामि नमः उत्तरे।

मूलं महात्रिपुर सुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः मध्ये। 'ऐं क्लिन्ने क्लीं·······०' सिद्ध लक्ष्मी श्रीपादुकां पूजयामि नमः पूर्वे। 'ऐं क्लीं सौः ऐं ह्रीं·······०' मातङ्गी श्रीपादुकां पूजयामि नमः दक्षिणे। ह्रीं भुवनेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः पश्चिमे। 'ॐ ऐं ग्लौं ऐं नमो·······०' वाराही श्रीपादुकां पूजयामि नमः उत्तरे।

फिर मध्य में शैवदर्शन, चारों दिशाओं में क्रमशः शाक्त सौर दर्शन तथा अग्रभाग में सौगत दर्शन का अंगुष्ठ एवं तर्जनी के योग से बनी ज्ञान मुद्रा द्वारा पूजन करना चाहिए। पूजा के मंत्र इस प्रकार हैं।

शैव दर्शन श्रीपादुकां पूजयामि नमः मध्ये। शाक्त दर्शन श्रीपादुकां पूजयामि नमः पूर्वे। ब्राह्म दर्शन श्रीपादुकां पूजयामि नमः दक्षिणे। वैष्णव दर्शन श्रीपादुकां पूजयामि नमः पश्चिमे। सौर दर्शन श्रीपादुकां पूजयामि नमः उत्तरे। सौगत दर्शन श्रीपादुका पूजयामि नमः अग्रभागे।

और फिर अन्त में 'मूलं महात्रिपुर सुन्दरी श्रीपादुकां तर्पयामि नमः' इस मन्त्र से ३ बार तर्पण करना चाहिए। इस प्रकार बैन्दव चक्र में स्थित श्रीमत्त्रिपुर सुन्दरी का विधिवत् पूजन करने के बाद आवरण पूजा प्रारम्भ करनी चाहिए।

भूबिम्बाद्बिन्दुपर्यन्तं नवावृतिसमर्चनम्।
माया श्रीबीजपूर्वाणांनाम्नामन्तेनियोजयेत् ॥७८॥

श्रीपादुकां पूजयामीत्येतद्वर्णांश्चसर्वतः ।
अग्नीशासुरवायव्यपुरोदिक्ष्वङ्गपूजनम् ॥७९॥
भूबिम्बस्याऽऽद्यरेखायां दिक्षूर्ध्वाधः क्रमाद्यजेत् ।
सिद्धीर्दशाणिमात्वाद्या महिमालघिमेशिता ॥८०॥
वशित्वसिद्धिः प्राकाम्याभुक्तिरिच्छाष्टमो पुनः ।
प्राप्ति श्चसर्वकामाख्यासिद्धयो दशकीर्तिताः ॥८१॥

तप्तहेमसमानाभाः पाशांकुशधराः शुभाः ।
साधकेभ्यः प्रयच्छन्ति रत्नौघं ता विचिन्तयेत् ॥८२॥
भूपुरे मध्यरेखायां पश्चिमाद्यमर्चयेदिमाः ।
ब्राह्मीं माहेश्वरीं चापि कौमारीं वैष्णवीमपि ॥८३॥
वाराहीं च तथेन्द्राणीं चामुण्डामथसप्तमीम् ।
महालक्ष्मीमिमांध्यायेत्सर्वाभरणसंयुताः ॥८४॥

विद्यां शूलं शक्तिचक्रेगदां वज्रंहिदण्डकम् ।
पद्मं क्रमेण दधतीः सर्वाभीष्ट प्रदायिकाः ॥८५॥
तस्यां तृतीयरेखायां दशमुद्राः प्रपूजयेत् ।
क्षोभणद्रावणाकर्षवश्योन्मादमहांकुशाः ॥८६॥
खेचरी बीजयोनी च त्रिखण्डेतिस्मृता इमाः ।
एवं भूबिम्बमाराध्य क्षोभमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥८७॥
त्रैलोक्यमोहने चक्रे योगिन्यः प्रकटाइमाः ।
पूजितास्तर्पिताः सन्तुस्वेष्टदा इति प्रार्थयेत् ॥८८॥
बिन्दौपुष्पाञ्जलिं दत्त्वामूलेनान्यवृतिं यजेत् ।

आवरण पूजा—भूपुर से प्रारम्भ कर बिन्दु पर्यन्त । (प्रतिलोम क्रम से) नौ आवरणों की पूजा करनी चाहिए । आवरण देवताओं के नाम से पहले मायाबीज एवं श्रीबीज तथा अन्त में 'श्रीपादुकां पूजयामि नमः' यह पद सर्वत्र लगाना चाहिए ।

आग्नेय, ईशान, नैऋत्य, वायव्य, अग्रभाग एवं दिशाओं में षडङ्गपूजा करनी चाहिए ।

भूपुर की प्रथम रेखा में ८ दिशाओं में तथा ऊर्ध्व एवं अधोभाग में क्रमशः १० सिद्धियों का पूजन करना चाहिए। अणिमा, महिमा, लघिमा, ईशिता, वशिता, सिद्धि प्राकाम्या, भुक्तिरिच्छा, प्राप्ति एवं सर्वकाम्या ये १० सिद्धियाँ होती हैं । तप्त सुवर्ण के समान आभावाली, पाश एवं अंकुश धारण करने वाली तथा साधकों को रत्न समुदाय देती हुई सिद्धियों का ध्यान करना चाहिए ।

भूपुर की मध्य रेखा में पश्चिम आदि दिशाओं में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा एवं महालक्ष्मी का पूजन करना चाहिए।

समस्त आभूषणों से अलंकृत अपने ८ हाथों में क्रमशः पुस्तक, शूल, शक्ति, चक्र, गदा, वज्र, दण्ड एवं कमल धारण करने वाली तथा सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली इन शक्तियों का ध्यान करना चाहिए।

भूपुर की तृतीय रेखा में १० मुद्राओं का पूजन करना चाहिए। क्षोभण, द्रावण, आकर्षण, वश्य, उन्माद, महांकुशा, खेचरी, बीज, योनि एवं त्रिखण्ड —ये १० मुद्रायें होती हैं।

(इस प्रकार प्रथम आवरण में) भूपुर का पूजन कर क्षोभ मुद्रा दिखलानी चाहिए। फिर "त्रैलोक्य मोहन चक्र में ये प्रकट योगिनियाँ पूजन एवं तर्पण से अभीष्ट फल दायक हों"—यह प्रार्थना करनी चाहिए और मूलमन्त्र से बिन्दु पर पुष्पाञ्जलि चढ़ानी चाहिए।

षडङ्गपूजा—सर्वप्रथम यन्त्र के ईशान आदि कोणों में यथाक्रम निम्नलिखित मन्त्रों से षडङ्गपूजा करनी चाहिए, यथा—श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः हृदयाय नमः—आग्नेये। ॐ ह्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा—ईशाने। कएईल ह्रीं शिखायै वषट्—नैऋत्ये। हसकहलह्रीं कवचाय हुम्-वायव्ये। सकलह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्-अग्रे। सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं अस्त्राय फट्-दिक्षु।

प्रथम आवरण का पूजन—

"तप्महेमसमानाभाः पाशांकुशधराः शुभाः।
साधकेभ्यः प्रयच्छन्ति रत्नौघं सिद्धयस्सदा ॥"

ऐसा ध्यान कर भूपुर की प्रथम रेखा में पूर्व आदि दिशाओं में निम्नलिखित मन्त्रों से अणिमा अदि १० सिद्धियों का पूजन करना चाहिए, यथा—

ह्रीं श्रीं अणिमा सिद्धि श्रीपादुकां पूजयामि पूर्वे। ह्रीं श्रीं महिमा सिद्धि श्रीपा० आग्नेये। ह्रीं श्रीं लघिमा सिद्धि श्रीपा० दक्षिणे। ह्रीं श्रीं ईशिता सिद्धि श्रीपा० नैऋत्ये। ह्रीं श्रीं वशिता सिद्धि श्रीपा० पश्चिमे। ह्रीं श्रीं सिद्ध-सिद्ध श्रीपा० वायव्ये। ह्रीं श्रीं प्राकाम्या सिद्धि श्रीपा० उत्तरे। ह्रीं श्रीं भुक्तिरिच्छा श्रीपा० ईशान्ये। ह्रीं श्रीं प्राप्ति सिद्धि श्रीपा० ऊर्ध्वभागे। ह्रीं श्रीं सर्वकामा सिद्धि श्रीपादुकां पूजयामि—अधोभागे।

तत्पश्चात् भूपुर की द्वितीय रेखा में पश्चिमादि दिशाओं में निम्नलिखित मन्त्रों से ब्राह्मी आदि ८ मातृकाओं का पूजन करना चाहिए, यथा—

ह्रीं श्रीं ब्राह्मी मातृका श्रीपादुकां पूजयामि-पश्चिमे। ह्रीं श्रीं माहेश्वरी

मातृका श्रीपा० वायव्ये। ह्रीं श्रीं कौमारी मातृका श्रीपा० उत्तरे। ह्रीं श्रीं वैष्णवी मातृका श्रीपा० ईशान्ये। ह्रीं श्रीं वाराही मातृका श्रीपा० पूर्वे। ह्रीं श्रीं इन्द्राणी मातृका श्रीपा० आग्नेये। ह्रीं श्रीं चामुण्डा मातृका श्रीपा० दक्षिणे। ह्रीं श्रीं महालक्ष्मी मातृका श्रीपादुकां पूजयामि नैऋत्ये।

इसके बाद भूपुर की तृतीय रेखा में—दिशाओं, ऊर्ध्व एव अधोभाग में निम्नलिखित मन्त्रों से क्षोभण आदि १० मुद्राओं का पूजन करना चाहिए, यथा—

ह्रीं श्रीं क्षोभण मुद्रा श्रीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं द्रावण-मुद्रा श्रीपा०। ह्रीं श्रीं आकर्षण मुद्रा श्रीपा०। ह्रीं श्रीं वश्यमुद्रा श्रीपा०। ह्रीं श्रीं उन्माद मुद्रा श्रीपा०। ह्रीं श्रीं महांकुशामुद्रा श्रीपा०। ह्रीं श्रीं खेचरीमुद्रा श्रीपा०। ह्रीं श्रीं बीजमुद्रा श्रीपा०। ह्रीं श्रीं योनिमुद्रा श्रीपा०। ह्रीं श्रीं त्रिखण्डामुद्रा श्रीपादुकां पूजयामि।

इस प्रकार प्रथम आवरण का पूजन कर क्षोभमुद्रा दिखाकर "त्रैलोक्य मोहने चक्रे इमाः प्रकट योगिन्यः पूजितास्तार्पिता इष्टदाः सन्तु" यह प्रार्थना कर मूलमन्त्र से बिन्दु पर पुष्पाञ्जलि चढ़ानी चाहिए।

क्षोभ मुद्रा का लक्षण—

मध्यमां मध्यमे कृत्वा कनिष्ठांगुष्ठरोधिते।
तर्जन्यौ दण्डवत् कृत्वा मध्यमोपर्यनामिके॥
क्षोभाभिधानमुद्रेयं सर्वक्षोभकारिणी॥
षोडशारे पश्चिमादिविलोमेन क्रमादिमाः॥८९॥
कामाकर्षणिकात्वाद्या बुद्ध्याकर्षणिका ततः।
अहङ्काराकर्षिणी च शब्दाकर्षणिका पुनः॥९०॥
स्पर्शाकर्षणिकातद्वद्रूपाकर्षणिकापि च।
रसाकर्षणिका चान्यागन्धाकर्षणिका तथा॥९१॥
चित्ताकर्षणिका चापि धैर्याकर्षणिकापरा।
नामाकर्षणिका चापि बीजाकर्षणिका तथा॥९२॥
अमृताकर्षणी चान्या स्मृत्याकर्षणिका तथा।
शरीराकर्षणी चैवमात्माकर्षणिका परा॥९३॥
सर्वाशापूरके चक्रे षोडशस्वर संयुते।
गुप्ताएतास्तुयोगिन्यः पूजिताः संविद वदेत्॥९४॥
दर्शयेद्द्राविणीं मुद्रां द्वितीयावरणार्चने।

द्वितीय आवरण का पूजन—फिर षोडशदल में पश्चिम से प्रारम्भ कर विलोम क्रम से इन १६ शक्तियों का पूजन करना चाहिए।

१—कामाकर्षणिका, २—बुद्ध्याकर्षणिका, ३—अहंकाराकर्षिणी, ४—शब्दाकर्षणिका, ५ स्पर्शाकर्षणिका, ६—रूपा कर्षणिका, ७—रसाकर्षणिका, ८—गन्धाकर्षणिका, ९—चित्ताकर्षणिका, १०—धैर्याकिर्षणिका, ११—नामाकर्षणिका, १२—बीजाकर्षणिका, १३—अमृताकर्षणी, १४—स्मृत्याकर्षणिका, १५—शरीराकर्षणी, एवं १६—आत्माकर्षणिका।

तत्पश्चात् "सर्वाशापूरके चक्रे एताः षोडशगुप्त योगिन्यः पूजितास्तर्पिताः सन्तु" यह कहना चाहिए। और द्वितीय आवरण की पूजा के बाद द्राविणीमुद्रा दिखलानी चाहिए।

पूजन विधि—द्वितीय आवरण में षोडशदल में पश्चिम से प्रारम्भ कर विपरीत क्रम से निम्नलिखित मन्त्रों से कामाकर्षणिका आदि १६ शक्तियों का पूजन करना चाहिए, यथा—

ह्रीं श्रीं कामाकर्षणीशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं बुद्ध्याकर्षणीशक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं अहंकाराकर्षणीशक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं शब्दाकर्षणीशक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं स्पर्शाकर्षणीशक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं रूपाकर्षणीशक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं रसाकर्षणीशक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं गन्धाकर्षणीशक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं चित्ताकर्षणीशक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं धैर्याकिर्षणीशक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं नामाकर्षणीशक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं बीजाकर्षणीशक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं अमृताकर्षणीशक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं स्मृत्याकर्षणीशक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं शरीराकर्षणीशक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं आत्माकर्षणीशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि।

इस प्रकार द्वितीय आवरण का पूजन कर "सर्वाशा पूरके चक्रे एताः षोडशगुप्त योगिन्यः पूजितास्तर्पिताः सन्तु"—यह प्रार्थना कर पुष्पाञ्जलि अर्पित कर द्राविणी मुद्रा दिखलानी चाहिए।

द्राविणी मुद्रा का लक्षण—

क्षोभाभिधानमुद्रायाः मध्यमे सरलेयदा।
क्रियते परमेशानि तदा विद्राविणी मता॥
काद्यष्टवर्गसंयुक्तेष्टारे पूज्या इमाः पुनः॥९५॥

पूर्वादिष्वनुलोमेन वन्धूककुसुमप्रभाः।
अनङ्गकुसुमात्वाद्या द्वितीयानङ्गमेखला॥९६॥

अनङ्गमदनातद्वदनङ्गमदनातुरा।
अनङ्गरेखाचानङ्गवेगानङ्गांकुशापुनः॥९७॥
अनङ्गमालिनीत्यष्टौ पाशांकुशलसत्कराः।

सर्वसंक्षोभणे चक्रे देव्यो गुप्ततराभिधाः ।।६८।।
पूजिताः संत्वितिप्रोच्याकर्षमुद्रां प्रदर्शयेत् ।

तृतीय आवरण का पूजन—कवर्ग आदि ८ वर्गों से युक्त अष्टदल में पूर्व आदि दिशाओं में अनुलोम क्रम से बन्धूक पुष्प के समान आभावली, हाथों में पाश एवं अंकुश धारण करने वाली अनंगकुसुमा आदि का पूजन करना चाहिए।

१—अनंगकुसुमा, २—अनंग मेखला, ३—अनंगमदना, ४—अनङ्ग-मदनातुरा, ५—अनङ्गरेखा, ६—अनङ्गवेगा, ७—अनङ्गकुशा एवं ८—अनङ्ग-मालिनी का पूजन करना चाहिए। फिर 'सर्व' संभोक्षणे एता अष्टौ गुप्ततर योगिन्यः पूजिताः सन्तु'—ऐसा कहकर आकर्षणी मुद्रा दिखलानी चाहिए।

पूजा विधि—तृतीय आवरण में अष्ट दल में पूर्व आदि दिशाओं में अनुलोम क्रम से अनङ्गकुसुमा आदि ८ गुप्ततर योगिनियों का ध्यान कर निम्नलिखित मन्त्रों से उनकी पूजा करनी चाहिए।

ध्यान—

सर्व संभोक्षणे चक्रे बन्धूक कुसुम प्रभाः ।
अनङ्गकुसुमाद्यष्टौ पाशांकुशल सत्कराः ।।

पूजनमन्त्र—ह्रीं श्रीं अनङ्गकुसुमा श्रीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अनङ्ग-मेखला श्रीपा०। ह्रीं श्रीं अनङ्गमदना श्रीपा०। ह्रीं श्रीं अनङ्गमदनातुरा श्रीपा०। ह्रीं श्रीं अनङ्गरेखा श्रीपा०। ह्रीं श्रीं अनङ्गवेगा श्रीपा०। ह्रीं श्रीं अनङ्गांकुशा श्रीपा०। ह्रीं श्रीं अनङ्गमालिनी श्रीपादुकां पूजयामि।

इस रीति से तृतीय आवरण का पूजन कर—"सर्वसंक्षोभणे चक्रे एता अष्टौ गुप्ततर योगिन्यः पूजिताः सन्तु" ऐसी प्रार्थनाकर पुष्पाञ्जलि देकर आकर्षणीमुद्रा दिखानी चाहिए।

आकर्षणीमुद्रा का लक्षण—

मध्यमातर्जनीभ्यां तु कनिष्ठानामिके समे ।
अंकुशाकाररूपाभ्यां मध्यमे परमेश्वरि ।।
इयमाकर्षणी मुद्रा त्रैलोक्याकर्षणे क्षमा ।।
चतुर्दशारे सम्पूज्याः कादिढान्तार्णराजिते ।।६९।।
इन्द्रगोपनिभा रम्याः मदोन्मत्ताः सभूषणाः ।
बिभ्रत्यो दर्पणं पानपात्रं पाशांकुशावपि ।।१००।।
पश्चिमादि विलोमेन चतुर्थावरणस्थिताः ।
सर्वसंक्षोभिणीपूर्वा सर्वविद्राविणीपरा ।।१०१।।

सर्वाकर्षिणिका चान्या सर्वाह्लादकरी पुनः ।
सर्वसम्मोहिनी चापि सर्वस्तम्भनकारिणी ॥१०२॥
सर्वजृम्भणिकानामाष्टमीसर्ववशङ्करी ।
सर्वरञ्जिनिका चापि सर्वोन्मादिनिका ॥१०३॥
सर्वार्थसाधिनी चाथ सर्वसम्पत्तिपूरणी ।
सर्वमन्त्रमयी चान्त्या सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी ॥१०४॥
मूलेन पुष्पं दत्त्वाथ वश्यमुद्रां प्रदर्शयेत् ।
सर्वसौभाग्यदे चक्रे सम्प्रदायाभिधा इमाः ॥१०५॥
योगिन्यः पूजितास्तृप्तामङ्गलानि दिशन्तु मे ।

चतुर्थ आवरण का पूजन—ककार से ढकार तक के वर्णों से सुशोभित चतुर्दश दल में पश्चिम दिशा से प्रारम्भ कर विलोमक्रम से—इन्द्रगोप सदृश आभावाली, मदोन्मत्त, आभूषणों से अलंकृत तथा हाथों में क्रमशः दर्पण, पान-पात्र, पाश एवं अंकुश धारण करने वाली १४ शक्तियों का पूजन करना चाहिए।

सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्रावणी, सर्वाकर्षणी, सर्वाह्लादकरी, सर्वसंमोहिनी, सर्वस्तंभनकारिणी, सर्वजृम्भिणी, सर्ववशंकरी, सर्वरञ्जिनी, सर्वोन्मादिनी, सर्वार्थसाधिनी, सर्वसम्पत्तिपूरिणी, सर्वमन्त्रमयी एवं सर्वद्वन्द्वक्षयंकरी—ये १४ शक्तियाँ होती हैं।

फिर मूलमन्त्र से पुष्पाञ्जलि देकर वश्य मुद्रा दिखलानी चाहिए तथा 'सर्वसौभाग्यदे चक्रे इमाश्चतुर्दश सम्प्रदाययोगिन्यः पूजिताः सन्तु"—ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए।

पूजन विधि—

इन्द्रगोपनिभारभ्या मदोन्मत्ताः सभूषणाः ।
बिभ्रत्यो दर्पणां पानपात्रं पाशांकुशावपि ॥

ऐसा ध्यान कर चतुर्थ आवरण में चतुर्दशदल में पश्चिम से प्रारम्भ कर विलोम क्रम से सर्वसंक्षोभिणी आदि १४ सम्प्रदाय योगिनियों का निम्नलिखित मन्त्रों से पूजन करना चाहिए, यथा—

ह्रीं श्रीं कं सर्वसंक्षोभिणी शक्ति श्रीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं खं सर्व-विद्रावणी शक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं गं सर्वाकर्षणी शक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं घं सर्वा-ह्लादकरी शक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्री ङं सर्वसम्मोहिनी शक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं चं सर्वस्तम्भनकरी शक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं छं सर्वजृम्भिणी शक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं जं सर्ववशंकरी शक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं झं सर्वरञ्जिनी शक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं ञं सर्वोन्मादिनी शक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं टं सर्वार्थसाधिनी शक्ति श्रीपा०। ह्रीं श्रीं ठं

सर्वसम्पत्तिपूरिणी शक्ति श्रीपा० । ह्रीं श्रीं डं सर्वमन्त्रमयी शक्ति श्रीपा० । ह्रीं श्रीं ढं सर्वद्वन्द्वक्षयंकरी शक्ति श्रीपादुकां पूजयामि ।

इस प्रकार उक्त शक्तियों का पूजन कर "सर्वसौभाग्यदे चक्रे इमाश्चतुर्दश-सम्प्रदाययोगिन्यः पूजिताः सन्तु" ऐसी प्रार्थना कर पुष्पाञ्जलि चढ़ानी चाहिए, और इसके बाद वश्यमुद्रा दिखलानी चाहिए ।

वश्यमुद्रा का लक्षण—

पुटाकारौ करौ कृत्वा तर्जन्यावंकुशाकृती ।
परिवर्त्य क्रमेणैव मध्यमे तदधोगते ।।

क्रमेण देवि तेनैव कनिष्ठानामिकादयः ।
संयोज्य निविडाः सर्वा अंगुष्ठावग्रदेशतः ।।
मुद्रेयं परमेशानि सर्ववश्यकरी मताः ।
सम्प्रार्थ्येति दशारेऽथ गादिभान्तार्णभूषिते ।।१०६।।

सम्पूज्या दशयोगिन्यो जपापुष्पसमप्रभाः ।
स्फुरन्मणिविभूषाढ्याः पाशांकुशलसत्कराः ।।१०७।।
पश्चिमादिविलोमेन साधकाभीष्टसिद्धिदाः ।
सर्वसिद्धिप्रदा पूर्वा सर्वसम्पत्प्रदा ततः ।।१०८।।

सर्वप्रियङ्करी चान्या सर्वमङ्गलकारिणी ।
सर्वकामप्रतापश्चात्सर्वदुःखविमोचनी ।।१०९।।
सर्वमृत्युप्रशमनीसर्वविघ्ननिवारिणी ।
सर्वाङ्गसुन्दरी चान्या सर्वसौभाग्यदायिनी ।।११०।।

बिन्दौ पुष्पं समर्प्याथोन्मादमुद्रां प्रदर्शयेत् ।
सर्वार्थसाधके चक्रे पञ्चमे सर्वतः स्थिताः ।।१११।।
पूजिताः कुलयोगिन्यः सन्तु मेभीष्टसिद्धिदाः ।

पञ्चम आवरण का पूजन—णकार से भकार तक के वर्णों से सुशोभित दशदल में जपाकुसुम के समान आभावाली, चमकीले आभूषणों से अलंकृत तथा हाथों में पाश एवं अंकुश धारण करने वाली १० कुल योगिनियों का पश्चिम से प्रारम्भ कर विलोम क्रम से पूजन करना चाहिए ।

सर्वसिद्धिप्रदा, सर्वसंपत्प्रदा, सर्वप्रियंकरी, सर्वमङ्गल कारिणी, सर्वकामप्रदा, सर्वदुःखविमोचनी, सर्वमृत्युप्रशमनी, सर्वविघ्ननिवारिणी, सर्वाङ्गसुन्दरी, तथा सर्वसौभाग्यदायिनी ये १० कुलयोगिनियाँ हैं ।

बिन्दु पर पुष्पाञ्जलि चढ़ाकर उन्माद मुद्रा दिखलानी चाहिए । तथा

"सर्वार्थसाधके चक्रे इमा : दश कुलयोगिन्यः पूजिताः सन्तु"—ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए।

पूजन विधि—

"सिद्धिदा दशयोगिन्यो जपापुष्पसमप्रभाः।
स्फुरन्मणि विभूषाद्याः पाशांकुशलसत्कराः॥"

ऐसा ध्यान कर दशदल में पश्चिम से प्रारम्भ कर विलोम क्रम से निम्नलिखित मन्त्रों से सर्वसिद्धिप्रदा आदि १० कुल योगिनियों का पूजन करना चाहिए. यथा—

ह्रीं श्रीं णं सर्वसिद्धिप्रदा देवी श्री पादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं तं सर्वसम्पत्प्रदा देवी श्रीपा०। ह्रीं श्रीं थं सर्वप्रियंकरी देवी श्रीपा०। ह्रीं श्रीं दं सर्वमङ्गलकरी देवी श्रीपा०। ह्रीं श्रीं धं सर्वकामप्रदा देवी श्रीपा०। ह्रीं श्रीं नं सर्वदुःख विमोचनी देवी श्रीपा०। ह्रीं श्रीं पं सर्वमृत्युप्रशमनी देवी श्रीपा०। ह्रीं श्रीं फं सर्व विघ्ननिवारिणी देवी श्रीपा०। ह्रीं श्रीं बं सर्वाङ्गसुन्दरी देवी श्रीपा०। ह्रीं श्रीं भं सर्वसौभाग्यदायिनी देवी श्रीपादुकां पूजयामि।

इस प्रकार कुल योगनियों का पूजन कर "सर्वार्थसाधके चक्रे इमा दश कुल योगिन्यः पूजिताः सन्तु" कहकर पुष्पाञ्जलि चढ़ानी चाहिए और फिर उन्माद मुद्रा दिखलानी चाहिए।

उन्माद मुद्रा का लक्षण

सम्मुखौ तु करौ कृत्वा मध्यमामध्यमेऽनुजे।
अनामिके तु सरले तदधस्तर्जनी द्वयम्॥
दण्डाकारौ ततोऽगुष्ठौ मध्यमानस्व देशगौ।
मुद्रेषोन्मादिनी नाम क्लेदिनी सर्वयोषिताम्॥
इतिसम्प्रार्थ्य सम्पूज्य मादिक्षान्तविभूषिते॥११२॥
परे दशारे योगिन्यउद्यद्भास्करसन्निभाः।
ज्ञानमुद्राटंक पाशरवधारिकराम्बुजा॥११३॥
सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च सर्वैश्वर्यफलप्रदा।
सर्वज्ञानमयीपश्चात्सर्वव्याधि विनाशिनी॥११४॥
सर्वाधारस्वरूपा च सर्वपापहरापरा।
सर्वानन्दमयीदेवी सर्वरक्षास्वरूपिणी॥११५॥
सर्वेप्सितार्थफलदा पश्चिमादि विलोमगाः।
पुष्पं मूलेन दत्त्वाथो कुर्यान्मुद्रांमहांकुशाम्॥११६॥
सर्वरक्षाकरे चक्रे निगर्भाः पूजिता इमाः।
योगिन्यस्तर्पिताः सन्तुभमाभीष्टफलप्रदाः॥११७॥

षष्ठ आवरण का पूजन—मकार से क्षकार के १० वर्णों से सुशोभित द्वितीय दशदल में उदीयमान सूर्य जैसी आभावाली तथा हाथों में ज्ञान मुद्रा, टक पाश एवं वर मुद्रा धारण करने वाली सर्वज्ञा आदि १० योगिनियों का पश्चिम से प्रारम्भ कर विलोमक्रम से पूजन करना चाहिए।

सर्वज्ञा, सर्वशक्ति, सर्वैश्वर्यफल प्रदा, सर्वज्ञानमयी, सर्वव्याधिविनाशिनी, सर्वाधारस्वरूपा, सर्वपापहरा, सर्वानन्दमयी सर्वरक्षा स्वरूपिणी एवं सर्वेप्सितार्थ-फलदा—ये १० योगिनियाँ होती हैं।

मूल मन्त्र से पुष्पाञ्जलि चढ़ाकर महांकुशा मुद्रा दिखलानी चाहिए। तथा "सर्वरक्षाकरे चक्रे इमा दशनिगर्भयोगिन्यः पूजिताः सन्तु"—ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए।

पूजन विधि

"सर्वरक्षाकरे चक्रे उद्यद्भास्कर सन्निभाः।
ज्ञानामुद्राटंकपाशवरधारिकराम्बुजाः ॥"

ऐसा ध्यान कर द्वितीय दल में पश्चिम से प्रारम्भ कर विलोम क्रम से निम्नलिखित मन्त्रों से सर्वज्ञा देवी आदि १० निगर्भ योगिनियों का पूजन करना चाहिए, यथा—

ह्रीं श्रीं मं सर्वज्ञा देवी श्रीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं यं सर्वशक्ति देवी श्रीपा०। ह्रीं श्रीं रं सर्वैश्वर्यफलप्रदा देवी श्रीपा०। ह्रीं श्रीं लं सर्वज्ञानमयी देवी श्रीपा०। ह्रीं श्रीं वं सर्वव्याधिविनाशिनी देवी श्रीपा०। ह्रीं श्रीं शं सर्वाधार-स्वरूपा देवी श्रीपा०। ह्रीं श्रीं यं सर्वपापहरा देवी श्रीपा०। ह्रीं श्रीं सं सर्वानन्द-मयी देवी श्रीपा०। ह्रीं श्रीं हं सर्वरक्षास्वरूपिणी देवी श्रीपा०। ह्रीं श्रीं क्षं सर्वे-प्सितार्थफलदा देवी श्री पादुकां पूजयामि।

इस रीति से उक्त योगिनियों का पूजन कर मूल मन्त्र से पुष्पाञ्जलि चढ़ाकर "सर्वरक्षाकरे चक्रे इमा दशनिगर्भयोगिन्यः पूजिताः सन्तु" यह प्रार्थना कर महांकुशा मुद्रा दिखलानी चाहिए।

महांकुशा मुद्रा का लक्षण

अस्यास्त्वनामिका युग्ममधः कृत्वांकुशाकृति।
तर्जन्यावपि तेनैव क्रमेण विनियोजयेत् ॥
इयं महांकुशामुद्रा सर्वकामार्थसाधिनी ॥

सम्प्रार्थ्यैवमथाष्टारे दाडिमीपुष्पसन्निभाः।
रक्तांशुकाधनुर्वाणविद्यावरलसत्कराः ॥११८॥

अकाराद्यष्टवर्गाद्या पश्चिमादि विलोमतः।
पूजयेत्पूर्व सम्प्रोक्ता बीजाद्या अष्टदेवताः ॥११९॥
वशिनी चापि कौमारीमोदिनी विमलारुणा।
जयिनी चापि सर्वेशीकौलिनीत्युदिताः पुरा ॥१२०॥
सर्वरोगहरे चक्रे रहस्याः पूजितामया।
तर्पिताः पूजिताः सन्त्वित्युक्त्वा दद्यात्पुष्पांजलिम् ॥१२१॥
खेचरीं दर्शयेन्मुद्रां सुन्दरीं तोषयेत्ततः।

सप्तम आवरण का पूजन—इसके बाद अष्टदल में दाडिमी पुष्प जैसी आभावाली, लाल वस्त्रों से अलंकृत तथा हाथों में धनुष, बाण, विद्या एवं वर धारण करने वाली, न्यासोक्त वशिनी आदि ८ देवियों का ध्यान कर अकार आदि ८ वर्गों में तथा पूर्वोक्त बीजों के साथ उक्त ८ देवियों का पश्चिम से प्रारम्भ कर विलोम क्रम से पूजन करना चाहिए।

वशिनी, कौमारी, मोदिनी, विमला, अरुणा, जयिनी, सर्वेशी एवं कौलिनी ये पूर्वोक्त ८ देवियाँ हैं। फिर 'सर्वरोग हरे चक्रे अष्टारे इमा रहस्ययोगिन्यः पूजिताः तर्पिताः सन्तु'—ऐसा कहकर पुष्पाञ्जलि चढ़ानी चाहिए और फिर खेचरी मुद्रा दिखलानी चाहिए।

पूजन विधि

"सर्वरोग हरे चक्रे दाडिमी पुष्प सन्निभा।
रक्तांशुकाधनुर्बाण विद्यावरलसत्कराः॥"

ऐसा ध्यान कर अष्टदल में पश्चिम से प्रारम्भ कर निम्नलिखित मन्त्रों से वशिनी आदि ८ योगिनियों का पूजन करना चाहिए, यथा—

ह्रीं श्रीं अं आं वशिनी वाग्देवता श्रीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं इं ईं कौमारी वाग्देवता श्रीपा०। ह्रीं श्रीं उं ऊं मोहिनी वाग्देवता श्रीपा०। ह्रीं श्रीं ऋं ॠं विमला वाग्देवता श्रीपा०। ह्रीं श्रीं लृं लॄं अरुणा वाग्देवता श्रीपा०। ह्रीं श्रीं एं ऐं जयिनी वाग्देवता श्रीपा०। ह्रीं श्रीं ओं औं सर्वेशी वाग्देवता श्रीपा०। ह्रीं श्रीं अं अः कौलिनी वाग्देवता श्रीपादुकां पूजयामि।

इस रीति के उक्त योगिनियों का पूजन कर मूल मन्त्र से पुष्पाञ्जलि चढ़ाकर "सर्वरोगहरे चक्रे अष्टारे इमा रहस्ययोगिन्यः पूजिताः सन्तु"—ऐसी प्रार्थना कर खेचरी मुद्रा दिखलानी चाहिए।

खेचरी मुद्रा का लक्षण

सव्यं दक्षिणहस्ते तु सव्यहस्ते तु दक्षिणम्।
बाहू कृत्वा महादेवि हस्तौ सम्परिवर्त्य च ॥

कनिष्ठानामिके देवि युक्ता तेन क्रमेण तु ।
तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोर्ध्वमपि मध्यमे ।।
अंगुष्ठौ तु महादेवि सरलावपि कारयेत् ।
इयं सा खेचरी नाम मुद्रा सर्वोत्तमोत्तमा ।।
त्रिकोणे त्वकथाद्यर्णरचिते पश्चिमादितः ।।१२२।।
यजेत्कामेशकामेश्योर्बाणांश्चापं च पाशकम् ।
अंकुशं चानुलोमेन चतुर्दिक्षु समाहितः ।।१२३।।
जम्भमोहवशस्तम्भपदाद्यान्बीजपूर्वकान् ।
बाणबीजानि बाणादौ मीनकृष्णौ सबिन्दुकौ ।।१२४।।
चापादौ पाशकस्यादौ पाशमाये नियोजयेत् ।
अंकुशंत्वंकुशस्यादौ स्मर्तव्या हेतिदेवताः ।।१२५।।
नानारत्नविभषाढ्याः स्वस्वायुधसमन्विताः ।
विद्युद्दाम समानांग्यो यौवनोन्मदमन्थराः ।।१२६।।
अग्न्यादिकोणत्रितये पूज्याः कूटत्रयादिकाः ।
कामेश्वरी च वज्रेशी तृतीया भगमालिनी ।।१२७।।
कामेश्वरीरुद्रशक्तिः शरच्चन्द्रशतप्रभा ।
स्मर्तव्या दधती हस्ते पुस्तकाऽभीवरस्रजः ।।१२८।।
वज्रेश्वरीविष्णुशक्तिरुद्यन्मार्तण्डस प्रभा ।
इक्षुचापराभीतिपुष्प बाणलसत्कराः ।।१२९।।
भगमालाब्रह्मशक्तिस्तप्तहाटकसप्रभा ।
ज्ञानमुद्रां वर पाशमंकुशं दधतीकरैः ।।१३०।।
एवं त्रिकोणं सम्पूज्य यच्छेत्पुष्पाञ्जलिं ततः ।
बीजमुद्रां प्रदर्श्याथ प्राथयेत्सुन्दरीमिदम् ।।१३१।।
सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे योगिन्यः पूजितामया ।
दिशंत्वतिरहस्याख्या मङ्गलं में निरन्तरम् ।।१३२।।

अष्टम आवरण का पूजन—अ, क, थ वर्णों से विरचित त्रिकोण में पश्चिमादि अनुलोभ क्रम से चारों दिशाओं में एकाग्रचित होकर अपने-अपने बीजों के साथ, जम्भ, मोह, वश एवं स्तम्भ संज्ञक कामेश्वर एवं कामेश्वरी के बाण, धनु, पाश एवं अंकुशों का पूजन करना चाहिए। बाण के पहले ५ बाण बीज, चाप के पहले सानुस्वार मोन कृष्ण (ध थं), पाश के पहिले पाश एवं मायाबीज (आं ह्रीं) तथा अंकुश के पहले अंकुश बीज (क्रों) लगाना चाहिए।

फिर अनेक रत्नों से सुशोभित, अपने आयुधों सहित बिजली के समान कान्तिमान अङ्गों वाली तथा यौवन के उन्माद से मन्थर गति वाली आयुध देवियों का स्मरण करना चाहिए।

आग्नेय आदि तीन कोणों में कूटत्रय सहित कामेश्वरी, वज्रेशी एवं भग-मालिनी का पूजन करना चाहिए।

शरत्कालीन चन्द्रमा जैसी आभावाली तथा अपने हाथों में पुस्तक, अभय, वर एवं माला धारण करने वाली रुद्र की शक्ति कामेश्वरी का स्मरण करना चाहिए।

उदीयमान सूर्य जैसी आभावाली तथा इक्षुचाप, वर, अभय एवं पुष्पबाण से सुशोभित हाथों वाली विष्णु की शक्ति वज्रेश्वरी का स्मरण करना चाहिए।

तपे हुए स्वर्ण जैसी आभावाली तथा हाथों में ज्ञानमुद्रा, वर, पाश एवं अंकुश धारण करने वाली ब्रह्मा की शक्ति भगमाला का स्मरण करना चाहिए।

इस प्रकार त्रिकोण का पूजन कर पुष्पाञ्जलि सर्मपित करनी चाहिए और फिर बीज मुद्रा दिखाकर 'सर्वसिद्धिप्रदेचक्रे इमा अतिरहस्य योगिन्यः पूजिता से निरन्तरं मङ्गलं दिशन्तु''—ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए।

पूजन विधि

"नानारत्न विभूषाढ्याः स्वस्वायुध समन्विताः।
विद्युद्दामसमानांग्यो यौवनोन्मदमन्थरा॥"

ऐसा ध्यान कर अ क थ वर्णों से रचित त्रिकोण के चारों ओर पश्चिम से प्रारम्भ कर अनुलोम क्रम से अपने-अपने बीजों के साथ निम्नलिखित मन्त्रों से कामेश्वर एवं कामेश्वरी के बाण आदि का पूजन करना चाहिए। यथा—

यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः कामेश्वर कामेश्वरी जम्भनबाण श्रीपादुकां पूजयामि-पश्चिमे। धं थं कामेश्वर-कामेश्वरी मोहनधनु श्रीपादुकां पूज-यामि-उत्तरे। आं ह्रीं कामेश्वर कामेश्वरी वशीकरणपाश श्रीपा० पूर्वे। क्रों कामेश्वर कामेश्वरी स्तम्भनांकुश श्रीपादुकां पूजयामि-दक्षिणे।

फिर त्रिकोण के आग्नेय आदि कोणों में कामेश्वरी आदि का ध्यान करना चाहिए। यथा—

कामेश्वरी रुद्रशक्ति शरच्चन्द्रशत प्रभा।
स्मर्तव्या दधती हस्तैः पुस्तकाऽमीवरस्रजः॥
वज्रेश्वरी विष्णु शक्ति रुद्यन्मार्तण्डसप्रभा।
इक्षुचापवराभीतिपुष्पबाणलसत्करा॥
भगमालाब्रह्मशक्तिस्तप्तहाटकसप्रभा।
ज्ञानमुद्रा प्रदर्श्याथ प्रार्थयेत्सुन्दरीमिदम्॥

इस प्रकार ध्यान कर निम्नलिखित मन्त्रों से कामेश्वरी आदि शक्तियों का पूजन करना चाहिए। यथा—

कएईल ह्रीं कामरूपपीठे कामेश्वरी रुद्रशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि । हसकहल ह्रीं पूर्णगिरिपीठे वज्रेश्वरी विष्णुशक्ति श्रीपा० । सकल ह्रीं जालन्धरपीठे भगमालिनी ब्रह्मशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि ।

इस प्रकार पूजन करने के बाद मूलमन्त्र से पुष्पाञ्जलि चढ़ाकर "सर्वसिद्धिप्रदेचक्रे इमा अतिरहस्य योगिन्यः पूजिता निरन्तरं मे मङ्गलं दिशन्तु,"—इस प्रकार से प्रार्थना कर बीज मुद्रा दिखलानी चाहिए ।

बीजमुद्रा का लक्षण

परिवर्त्यकरौ स्पष्टावर्द्धचन्द्राकृती प्रिये ।
तर्जन्यंगुष्ठयुगलं युगपत्कारयेत्ततः ।।
अधः कनिष्ठावष्टब्धे मध्यमे विनियोजयेत् ।
तथैव कुटिले योज्ये सर्वाधस्तादनाभिके ।।
बीजमुद्रेय भुदिता सर्वसिद्धिप्रदायिनी ।।
बिन्दौ सम्पूज्येत्पश्चाच्छ्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम् ।
मूलविद्यां समुच्चार्य ध्यात्वा पूर्वोक्तवर्त्मना ।।१३३।।
सवनिन्दमये चक्रे सर्वाभीष्ट विधायिनीम् ।
परापररहस्याख्या योगिनी पूजितास्तुमे ।।१३४।।
योनिमुद्रां प्रदर्श्याथ तर्पणं त्रिःसमाचरेत् ।
धूपं दीपं च नैवेद्यमन्नैर्नानाविधैर्दिशेत् ।।१३५।।

नवम आवरण का पूजन—इसके बाद बिन्दु पर विधिवत् ध्यान कर पूर्वोक्त रीति से मूलविद्या बोलकर श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी का पूजन करना चाहिए । फिर 'सर्वानन्दमये चक्रे सर्वाभीष्टदायिनी परापर रहस्य योगिनी श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी पूजितास्तु,'—इस प्रकार प्रार्थना कर योनिमुद्रा दिखाकर ३ बार तर्पण करना चाहिए और फिर धूप, दीप एवं अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थों को नैवेद्य के रूप में निवेदित करना चाहिए ।

पूजन विधि—बालार्कायुततेजसं त्रिनयनां रक्ताम्बरोल्लासिनीः इत्यादि मन्त्र से भगवती के स्वरूप का ध्यान कर बिन्दु पर 'मूलंश्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि'—मन्त्र से श्रीविद्या का पूजन करना चाहिए ।

तत्पश्चात् पुष्पाञ्जलि समर्पित कर 'सर्वानन्दमये चक्रे सर्वाभीष्टदायिनी परापररहस्ययोगिनी श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी पूजितास्तु' ऐसी प्रार्थना कर महायोनिमुद्रा दिखलानी चाहिए ।

महायोनि मुद्रा का लक्षण—मध्यमे कुटिले कृत्वा तर्जन्युपरि संस्थिते । अनामिकामध्यगते तथैव हि कनिष्ठके ।।

सर्वा एकत्र संयोज्या अंगुष्ठ परिपीडिताः ।
एषा तु प्रथमामुद्रा महायोन्यामिधामता ॥

फिर मूलमन्त्र से ३ बार तर्पण करके धूप, दीप आदि उपचारों से देवी का विधिवत् पूजन करना चाहिए ।

वह्निं सम्पूज्य पूर्वोक्तविधिना तत्र सुन्दरीम् ।
आवाह्यजुहुयाद्द्रव्यं पञ्चविंशतिसंख्यया ॥१३६॥

हवन—पूर्वोक्त रीति से अग्नि का पूजन कर उसमें त्रिपुरसुन्दरी का आवाहन कर हव्यद्रव्य से २५ आहुतियाँ देनी चाहिए ।

श्रीचक्रस्य बलिंदद्याद्हुतशेषेन संयुतः ।
ईशानाग्नेयनैर्ऋत्यवायुकोणेषु च क्रमात् ॥१३७॥
बटुकस्य चर्मयोगिन्याः क्षेत्रेशगणनाथयोः ।
निजैर्मन्त्रैः स्वमुद्राभिः पूर्वसंकीर्ति तैर्मया ॥१३८॥
प्रदक्षिणानतीः कृत्वा मूलविद्यां ततो यजेत् ।
एवं श्री सुन्दरीं नित्यं पूजयन्विजितेन्द्रियः ॥१३९॥
नवावृत्तियुतां सर्वान्कामानिष्टान वाप्नुयात् ।

बलिदान—श्रीचक्र के ईशान, आग्नेय, नैऋत्य एवं वायव्य कोण में हुतशेष द्रव्य से अपने-अपने मन्त्रों एवं मुद्राओं से बटुक, योगिनी, क्षेत्रपाल एवं गणपति को पूर्वोक्त रीति से बलि देनी चाहिए । फिर प्रदक्षिणा एवं नमस्कार कर मूल विद्या का जप करना चाहिए ।

इस प्रकार जितेन्द्रिय साधक प्रतिदिन ९ आरवणों के साथ त्रिपुरसुन्दरी का पूजन करके सब मनोरथों को प्राप्त करता है ।

बलिदान की विधि—'एह्येहि देवीपुत्र बटुकनाथ कपिलजटाभारभासुर-त्रिनेत्रज्वालामुखसर्वविघ्नान्नाशय नाशय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा'—इस मन्त्र से तर्जनी एवं अंगूठा मिलाकर हुतुशेष द्रव्य से ईशानकोण में बटुक को बलि देनी चाहिए ।

तदनन्तर—'ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगनतले भूतले निष्कले वा पाताले वातले वा सलिलपवनयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा । क्षेत्र पीठोपपीठाषु च कृतपदा धूपदीपादिकेन, प्रीता देव्यः सदा नः शुभबलि विधिना पातु वीरेन्द्रवन्द्याः ॥ यां योगिनीभ्यो नमः'—इस मन्त्र से अनामिका, कनिष्ठा एवं अंगुष्ठ के मिलाने से बनी मुद्रा द्वारा हुतशेष द्रव्य से आग्नेय कोण में योगिनियों को बलि देनी चाहिए ।

तत्पश्चात्—'क्षां, क्षीं, क्षूं, क्षैं, क्षौं, क्षः, हुं स्थान क्षेत्रपालेश सर्वकामं पूरय स्वाहा'—इस मन्त्र से बाएँ हाथ के अंगूठा एवं अनामिका को मिलाने से

बनी मुद्रा द्वारा हुतशेष द्रव्य से श्रीचक्र के नैऋत्य कोण में क्षेत्रपाल को बलि देनी चाहिए और फिर 'गां गीं गूं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं में वशमानय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा'—इस मन्त्र से थोड़ी वक्र की हुई मध्यमा से हुतशेष द्रव्य से श्रीचक्र से वायव्यकोण में गणपति को बलि देनी चाहिए।

अथ प्रयोगा वक्ष्यन्ते साधकाभीष्टसिद्धिदाः ।।१४०।।
नव लक्षजपेनास्य रुद्ररूपो नरो भवेत् ।
मल्लिकामालतीपुष्पैर्होमाद्वागीशतामियात् ।।१४१।।
करवीरैर्जपापुष्पैर्होमान्मोहयते जगत् ।
चन्द्रकुंकुमकस्तूरी होमात्कामाधिको भवेत् ।।१४२।।
चम्पकैः पाटलैर्विश्वं वशमानयतेऽचिरात् ।
लाजाहोमोराज्यदायी मधुनोपद्रवक्षयः ।।१४३।।
निशिच्छागपलैर्होमो रिपुसैन्यविनाशकृत् ।
दध्याज्यदुग्धमधुभिः क्रमाद्धोमादवाप्नुयात् ।।१४४।।
आरोग्यं सम्पदं ग्रामं धनं शर्करयासुखम् ।
कमलैर्धनसम्पत्तिर्दाडिमैराज वश्यताम् ।।१४५।।
क्षत्रियामातुलिङ्गैस्तु वैश्या नारं गजैः फलैः ।
शूद्राः कूष्माण्डसम्भूतेर्वश्याः स्युरचिराद्हुतैः ।।१४६।।
पनसानां लक्ष होमाद्वश्यास्पुश्चक्रवर्तिनः ।
द्राक्षाफलैरिष्टसिद्धि रम्भाभिर्मन्त्रिणोवशाः ।।१४७।।
नारिकेलैस्तुसम्पत्तिस्तिलैः सर्वेष्टसिद्धयः ।
गुग्गुलैर्दुःखनाशः स्यात्सर्वेष्टंशर्करागुडैः ।।१४८।।
पायसैर्धनधान्याप्तिर्बन्धूकैः प्राणिनोवशाः ।
पक्वेश्चूतफलैर्होमाल्लक्षमात्राद्धरावशाः ।।१४९।।
लवणै राजिकायुक्तै र्होमाद्दुष्टविनाशनम् ।
कर्पूर होमाल्लाभते वाक्पतित्वं नरोऽचिरात् ।।१५०।।
करञ्जफलहोमेन भूतप्रेतादयो वशाः ।
बिल्वैः स्यादतुलालक्ष्मीरिक्षुदण्डैः सुखाप्तयः ।।१५१।।
घृतहोमादीप्सिताप्तिः शान्तिः स्यात्तण्डुलैः ।
किंबहूक्तेन देवेशि सर्वेष्ट साधितं नृणाम् ।।१५२।।

काम्य प्रयोग—साधक को अभीष्ट सिद्धि देने वाले प्रयोगों को बतलाता हूँ। इस मन्त्र का ९ लाख जप करने से मनुष्य रुद्ररूप प्राप्त करता है।

मल्लिका (बेला) एवं मालती के फूलों के होम से वागीशता मिलती है। कनेर एवं जवाकुसुम के होम से साधक जगत को मोहित कर देता है।

कपूर, कुंकुम एवं कीस्तूर के होम से व्यक्ति कामदेव से भी अधिक रूपवान् बन जाता है।

चम्पा एवं गुलाब के होम से व्यक्ति शीघ्र ही विश्व को अपने वश में कर लेता है।

लाजा (खील) के होम से राज्य मिलता है। मधु के होम से उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। रात्रि में छाग के मांस के होम से शत्रु की सेना नष्ट हो जाती है। दही के होम से आरोग्य, घी के होम से सम्पत्ति, दूध के होम से गाँव तथा मधु के होम से धन मिलता है। कमलों के होम से धन सम्पत्ति मिलतो है तथा अनार के होम से राजा वश में हो जाता है।

बिजौरा के होम से क्षत्रिय, नारङ्गी के होम से वैश्य तथा पेठा के होम से शूद्र शीघ्र ही वश में हो जाते हैं।

कटहल से १ लाख आहुतियाँ देने पर चक्रवर्ती राजा वश में हो जाते हैं। अंगूर के होम से इष्टसिद्धि होती है। केला के होम से मन्त्री वश में हो जाते हैं। नारियल के होम से सम्पत्ति तथा तिल के होम से सब अभीष्टों की सिद्धि होती है। गुग्गुल के होम से दुःख नष्ट हो जाते हैं। शक्कर एवं गुड़ के होम से सब मनोरथ सिद्धि हो जाते हैं।

खीर के होम से धन-धान्य मिलता है। बन्धूक (दूपहरिया) के फूलों के होम से प्राणी वश में होते हैं। पके आमों की १ लाख आहुतियाँ देने से भूमि पर रहने वाले सभी जीव वश में हो जाते हैं।

राई मिलाकर लवण के होम से दुष्टों का नाश होता है। कपूर के होम से शीघ्र ही कवित्व मिलता है। करंजफल के होम से भूत-प्रेत आदि वश में हो जाते हैं। बेलफल के होम से अतुल लक्ष्मी तथा ईख के टुकड़ों के होम से सुख मिलता है। घी के होम से इच्छित वस्तु की प्राप्ति तथा तिल एवं तन्दुल (चावल) के होम से शान्ति मिलती है।

देवेशि ! विशेष क्या कहें, इस मन्त्र से मनुष्य सब अभीष्टों को सिद्ध कर सकता है।

मध्ये कूटत्रिके भेदावर्णान्तरनियोजनात्।
बहवोन्येन गदिता ग्रन्थ गौरवभीतितः ॥१५३॥

श्रीविद्या के भेद—मन्त्र के बीच में तीनों कूटों में अन्य वर्ण लगाने से (इस विद्या के) अनेक भेद हो जाते हैं।

पारिभाषिकी षोडशी मन्त्र—१—कामराज विद्या, २—अगस्त्य पूजिता लोपामुद्रा, ३—मनुपूजिता, ४—चन्द्रपूजिता, ५—कुबेरपूजिता, ६—अगस्त्य पूजिता द्वितीय लोपामुद्रा, ७—नन्दिपूजिता, ८—इन्द्रपूजिता, ९—सूर्यपूजिता,

१०—शंकरपूजिता (चतुष्कूटा), ११—विष्णुपूजिता (षट्कूटा), १२—दुर्वासा-पूजिता—इन बारह मन्त्रों के प्रारम्भ में 'ह्रीं श्रीं' इन दोनों बीजों को लगाने से जो मन्त्र बनते हैं वे पारिभाषिक षोडशी मन्त्र कहलाते हैं।

कामराजविद्या—कएईल ह्रीं, हसकहल ह्रीं, सकल ह्रीं।
प्रथमलोपा मुद्रा—हसकल ह्रीं, हसकहल ह्रीं, सकल ह्रीं।
मनुपूजिता—कहएईल ह्रीं, हकएईल ह्रीं, सकएईल ह्रीं।
चन्द्रपूजिता—सहकएलईल ह्रीं, सहकहईल ह्रीं, सहकएईल ह्रीं।
कुबेरपूजिता—हसकएईल ह्रीं, हसकएईल ह्रीं, हसकएईल ह्रीं।
द्वितीयलोपा मुद्रा—कएईल ह्रीं, हसकहल ह्रीं, सहसकल ह्रीं।
नन्दिपूजिता—सएईल ह्रीं, सहकहल ह्रीं, सकल ह्रीं।
इन्द्रपूजिता—कएईल ह्रीं, हसकहल ह्रीं, सकल ह्रीं।
सूर्य पूजिता—कएईल ह्रीं, सहकल ह्रीं, सहकसकल ह्रीं।
शंकर पूजिता—कएईल ह्रीं, हसकल ह्रीं, सहसकल ह्रीं, कएईल हसकहल सकसकल ह्रीं।
विष्णु पूजिता—कएईल ह्रीं, हसकल ह्रीं, सहसकल ह्रीं, सएईल ह्रीं, सहकहल ह्रीं, सकल ह्रीं।
दुर्वासा पूजिता—कएईल ह्रीं, हसकहल ह्रीं, सकल ह्रीं।

ज्ञानार्णव में लिखा है उक्त १२ मन्त्रों के आदि में 'ॐ ह्रीं श्रीं'—इन तीनों बीजों को लगाने से षोडशी मन्त्र बनते हैं। ऐसा करने से त्रिकूटमन्त्र षट्कूट, षट्कूटवैष्णवमन्त्र नवकूट तथा चतुष्कूट शिवमन्त्र सप्तकूट बन जाते हैं। ये सभी मन्त्र शिवशक्तिमय माने गये हैं।

बीजावली षोडशी—रुद्रयामल के अनुसार—क्रमशः श्री, माया, बाला, श्री, माया, काम, वाक्, माया, श्री परा, काम, वाक् माया एवं श्री—इन बीजों का उच्चारण करने से बीजावली षोडशी मन्त्र बनता है। यह मन्त्र अत्यन्त गोपनीय कहा गया है। आचार्यों का निर्देश है कि परिस्थिति वश अपना राज्य या अपना शिर तक दे देना चाहिए किन्तु इसे नहीं देना चाहिए।

ब्रह्मयामल के अनुसार—क्रमशः श्री, माया, बाला, श्री, माया, काम, वाक्, विलोम बाला, श्री, माया, फिर माया एवं श्री बीजों का उच्चारण करने से षोडशी मन्त्र बनता है। यह मन्त्र आगमशास्त्र में गोपनीय माना गया है।

गुह्यषोडशी मन्त्र—दो माया बीजों के मध्य में श्री बीज, फिर परा बीज, काम बीज एवं बाला का प्रथम बीज—इन बीजों में से माया एवं श्री बीजों के

आदि में प्रणव लगाना चाहिए। फिर लोपामुद्रा त्रिकुटा और अन्त में प्रथम पञ्च बीज लगाने से अत्यन्त गुह्यषोडशी मन्त्र बनता है, जिसका माहात्म्य अतुलनीय एवं अकथनीय है। यह मन्त्र इस प्रकार है।

ॐ ह्रीं ॐ श्रीं ह्रीं सौः क्लीं ऐं हसकल ह्रीं हसकहल ह्रीं, सकलह्रीं ॐ ह्रीं ॐ श्रीं ह्रीं।

महाषोडशी मन्त्र—प्रारम्भ में ह्रीं श्रीं—ये दो बीज विपरीत क्रम में और फिर वाला के मध्य बीज को प्रारम्भ में करके लिखने से 'श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः'—ये ५ बीज होते हैं। इन पाँच बीजों द्वारा अनुलोम विलोम क्रम से षट्कूट मन्त्र को पुटित करने से षोडशाक्षर मन्त्र बनता है।

उक्त पञ्चबीजों से सप्तकूट को पुटित करने पर सप्तदशाक्षर मन्त्र तथा नवकूट को पुटित करने पर ऊनविंश अक्षर मन्त्र बनता है। इस प्रकार षट्कूट षोडशाक्षर शैवमन्त्र सप्तदशाक्षर तथा वैष्णव मन्त्र ऊनविंशाक्षर होता है।

श्रीक्रम संहिता में भी इसी प्रकार का उल्लेख है, यथा—श्रीबीज, माया-बीज, कामबीज, वाग्भवबीज एवं पराबीज को पहले रखे। फिर प्रणव, भुवनेश्वरी बीज, लक्ष्मीबीज एवं त्रिकूट—इस प्रकार बने षड्कूट को उक्त पाँच बीजों से पुटित करने पर महाषोडशी मन्त्र बनता है। माया तन्त्र, कुलामृत एवं यामल ग्रन्थों में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है।

कुब्जिका तन्त्र में महाषोडशी मन्त्र का उद्धार इस प्रकार है—परा, श्री, काम, वाग्भव एवं शक्ति बीज इन पाँचों के बाद प्रणव, माया. श्रीबीज त्रिकूट और फिर उक्त पाँचों को विलोम क्रम से लगाने पर महाषोडशी मन्त्र बनता है, जिसे भुवन सुन्दरी मन्त्र भी कहते हैं। यह मन्त्र भुक्ति एवं मुक्तिदायक माना गया है। मन्त्र इस प्रकार है—"ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं सौः ॐ ह्रीं श्रीं कएलई ह्रीं हसकहल ह्रीं सकल ह्रीं सौः ऐं क्लीं श्रीं ह्रीं।"

इस मन्त्र के प्रारम्भ में श्रीबीज लगाने से यह कमलसुन्दरी मन्त्र बनता है। इसी प्रकार इस मन्त्र के आदि में क्रमशः कामबीज, वाक्बीज, शक्तिबीज और प्रणव लगाने पर ये मन्त्र क्रमशः कामसुन्दरी, वाक्सुन्दरी, शक्तिसुन्दरी एवं तार-सुन्दरी मन्त्र कहलाते हैं।

सिद्धयामल में महाषोडशी मन्त्र का उद्धार इस प्रकार है—प्रणव, काम, माया, बाला, त्रिकूट, स्त्री, भग, अंकुश, काली, कामकला एवं कूर्च बीज लगाने से महाषोडशी मन्त्र बनता है। यह विद्या सभी आम्नायों में पूजिता है। मन्त्र इस प्रकार है—"ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः कएईल ह्रीं हसकहल ह्रीं सकल ह्रीं श्रीं ऐं क्रों क्रीं ईं हूं।"

अपरीक्षितशिष्याय न देयं कदाचन।
पुत्राय वा सुशिष्याय दत्त्वाभीष्टप्रदायिनी ।।१५४।।

यह विद्या अपरीक्षित शिष्य को कभी भी नहीं देनी चाहिए। अपने पुत्र एवं सुपरीक्षित शिष्य को ही अभीष्टफलदायिनी विद्या देनी चाहिए।

गोपालसुन्दरीं वक्ष्ये भोगमोक्षप्रदायिकाम्।
मायारमाचित्तजन्माकृष्णायेतिपद ततः ।।१५५।।
आद्यं वाक्कूटमुच्चार्य गोविन्दायपदं वदेत्।
द्वितीयं तु ततःकूटं गोपीजनपदं ततः ।।१५६।।
वल्लभायपदान्तं तु तृतीयं कूटमुच्चरेत्।
स्वहान्ता वह्नियुग्मार्णा स्मृता गोपालसुन्दरी ।।१५७।।

गोपाल सुन्दरी मन्त्र का उद्धार—भोग एवं मोक्षदायक गोपाल सुन्दरी मन्त्र बतलाता हूँ।

माया (ह्रीं) रमा (श्रीं) चित्तजन्मा (क्लीं) फिर 'कृष्णाय'—इस प्रथम वाक् कूट को बोलकर 'गोविन्दाय' पद बोलना चाहिए—यह द्वितीय कूट है और फिर 'गोपीजन' एवं 'वल्लभाय' यह द्वितीय कूट बोलना चाहिए। अन्त में 'स्वाहा' लगाने से २३ अक्षर का गोपालसुन्दरी का मन्त्र बनता है।

गोपाल सुन्दरी का मन्त्र— ह्रीं श्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन वल्लभाय स्वाहा—

विद्याया द्वौ मुनी उक्तौविधात्रानन्दभैरवौ।
छन्दस्तुदेवी गायत्रीदेवतासुन्दरीयुता ।।१५८।।
गोपालो मन्मथोबीजं शक्तिः पावकवल्लभा।
मायाश्रीर्मन्मथैर्हृत्स्यात्कृष्णाय शिरईरितम् ।।१५९।।
गोविन्दाय शिखागोपीजनेतिकवचं मतम्।
वल्लभायस्मृतं नेत्रमस्त्रंपावकभार्यया ।।१६०।।

विनियोग एवं षडङ्गन्यास—इस विद्या के विधाता एवं आनन्दभैरव दो ऋषि हैं, देवी गायत्री छन्द हैं, गोपालसुन्दरी देवता हैं, कामबीज बीज है तथा स्वाहा शक्ति है।

माया, श्री एवं कामबीज से हृदय, 'कृष्णाय' से शिर, 'गोविन्दाय' से शिखा, 'गोपीजन' से कवच, 'वल्लभाय' से नेत्र तथा 'स्वाहा' से अस्त्र पर न्यास करना चाहिए।

विनियोग—अस्य गोपालसुन्दरीमन्त्रस्य विधात्रानन्दभैरवो ऋषिः देवी गायत्री छन्दः गोपालसुन्दरी देवता, क्लीं बीजं, स्वाहा शक्तिः ममाभीष्ट सिद्धये जपे विनियोगः।

षडङ्गन्यास—ह्रीं श्रीं क्लीं हृदयाय नमः। कृष्णाय शिरसे स्वाहा। गोविन्दाय शिखायै वषट्। गोपीजन कवचाय हुम्। वल्लभाय नेत्रत्रयाय वौषट्। स्वाहा अस्त्राय फट्।

मूर्ध्नि भाले भ्रुवोरक्ष्णोः कर्णयोर्नासयोर्मुखे।
चिबुके च गले बाह्वोर्हृदयेजठरे न्यसेत् ॥१६१॥
नाभौ लिङ्गे गुदे सक्थ्नोर्जानुनोर्जङ्घयोरपि।
गुल्फयोः पादयोर्वर्णान्कूटत्रयविवर्जितान् ॥१६२॥
सृष्टन्यासोऽयमुदितो हृदाद्यंसान्तिकास्थितिः।
संहारोंध्र्यादिमूर्द्धान्त पुनः सृष्टि स्थितिं चरेत् ॥१६३॥

सृष्टि, स्थिति एवं संहारन्यास—शिर, ललाट, भौंह, नेत्र, कान, नासिका, मुख, चिबुक, कण्ठ, कन्धा, हृदय, उदर, नाभि, लिङ्ग, गुदा, कमर, जानु, जंघा, गुल्फ एवं पैरों में कूटत्रय को छोड़कर वर्णों का न्यास करना चाहिए। यह सृष्टि न्यास कहा जाता है।

हृदय से कन्धों तक स्थितिन्यास तथा पैरों से शिर तक संहारन्यास होता है। इसके बाद पुनः सृष्टिन्यास करना चाहिये।

सृष्टिन्यास—श्री विद्याभास्करकार के अनुसार सृष्टिन्यास इस प्रकार बतलाया गया है—

ह्रीं नमः—मूर्ध्नि।	गों नमः—हृदि।
श्रीं नमः—ललाटे।	पीं नमः—उदरे।
क्लीं नमः—भ्रुवोः।	जं नमः—नाभौ।
कृं नमः—नेत्रयोः।	नं नमः—लिङ्गे।
ष्णां नमः—कर्णयोः।	वं नमः—गुदे।
यं नमः—नसोः।	ल्लं नमः—कट्यां।
गों नमः—मुखे।	भां नमः—जान्वोः।
विं नमः—चिबुके।	यं नमः—जङ्घयोः।
न्दां नमः—कण्ठे।	स्वां नमः—गुल्फयोः।
यं नमः—बाहुमूले।	हां नमः—पादयोः।

स्थितिन्यास—

ह्रीं नमः—हृदि।	गों नमः—मूर्ध्नि।
श्रीं नमः—उदरे।	पीं नमः—ललाटे।
क्लीं नमः—नाभौ।	जं नमः—भ्रुवोः।
कृं नमः—लिङ्गे।	नं नमः—नेत्रयोः।
ष्णां नमः—आधारे।	वं नमः—कर्णयोः।

यं नमः—कट्यां । ल्लं नमः—नसोः ।
गों नमः—जान्वोः । मां नमः—मुखे ।
विं नमः—जंघयोः । थं नमः—चिबुके ।
न्दां नमः—गुल्फयोः । स्वां नमः—कण्ठे ।
यं नमः—पादयोः । हां नमः—बाहुमूले ।

संहारन्यास—

ह्रीं नमः—पादयोः । पीं नमः—कण्ठे ।
श्रीं नमः—गुल्फयोः । जं नमः—चिबुके ।
क्लीं नमः—जंघयोः । नं नमः—मुखे ।
क्रं नमः—जान्वोः । वं नमः—नसोः ।
ण्णां नमः—कट्यां । ल्लं नमः—कर्णयोः ।
य नमः—गुदे । भां नमः—नेत्रयोः ।
गों नमः—लिङ्गे । यं नमः—भ्रुवोः ।
विं नमः—नाभौ । स्वां नमः—ललाटे ।
न्दां नमः—उदरे । हां नमः—मूर्ध्नि ।
यं नमः—हृदि ।
गों नमः—बाहुमूले ।

इस रीति से सृष्टि, स्थिति एवं संहार न्यास करने के बाद पुनः सृष्टिन्यास करना चाहिए। कुछ आचार्यों का मत है कि इसके बाद विभूतिपञ्चर न्यास करना चाहिए।

विभूतिपञ्जर न्यास—इस न्यास के करने से भूति-ऐश्वर्य की वृद्धि होती है। न्यास का क्रम इस प्रकार है—

गों नमः—आधारे । नं नमः—हृदि ।
पीं नमः—लिङ्गे । व नमः—दक्षिण स्तने ।
जं नमः—नाभौ । ल्लं नमः—वामस्तने ।
नं नमः—हृदि । भां नमः—दक्षिण पार्श्वे ।
वं नमः—कण्ठे । यं नमः—वामपार्श्वे ।
ल्लं नमः—मुखे । स्वां नमः—दक्षिण श्रोण्याम् ।
भां नमः—दक्षिणांसे । हां नमः—वाम श्रोण्याम् ।
यं नमः—वामांसे । गों नमः—शिरसि ।
स्वां नमः—दक्षिणोरौ । पीं नमः मुखे ।
हां नमः—वामोरौ । जं नमः—दक्षिणनेत्रे ।

गों नमः—कन्धरायाम।
पीं नमः—नाभौ।
जं नमः—कुक्षौ।
भां नमः—दक्षिण नासापुटे।
यं नमः—वाम नासापुटे।
स्वां नमः—दक्षिण कपोले।
हां नमः—वाम कपोले।
गों नमः—दक्षिण हस्तमूले।
पीं नमः—दक्षिण कूर्परे।
जं नमः—दक्षिण मणिबन्धे।
नं नमः—दक्षांगुलिमूले।
वं नमः—दक्षांगुल्यग्रे।
ल्लं नमः—अंगुष्ठे।
भां नमः—तर्जन्याम्।
यं नमः—मध्यमायाम्।

नं नमः—वामनेत्रे।
वं नमः—दक्षिण कर्णे।
ल्लं नमः—वामकर्णे।
स्वां नमः—अनामिकायाम्।
हां नमः—कनिष्ठिकायाम्।
गों नमः—वामहस्तमूले।
पीं नमः—वाम कूर्परे।
जं नमः—वाम मणिबन्धे।
नं नमः—वामांगुलिमूले।
वं नमः—वामांगुल्यग्रे।
ल्लं नमः—वामअंगुष्ठे।
भां नमः—वाम तर्जन्याम्।
यं नमः—वाम मध्यमायाम्।
स्वां नमः—वाम अनामिकायाम्।
हां नमः—वामकनिष्ठिकायाम्।

× × ×

गों नमः—दक्षपाद मूले।
पीं नमः—दक्षगुल्फे।
जं नमः—दक्ष जंघायाम्।
नं नमः—दक्षपादांगुलिमूले।
वं नमः—दक्षपादांगुल्यग्रे।
ल्लं नमः—दक्षपादांगुष्ठे।
भां नमः—दक्षतर्जन्याम्।
यं नमः—दक्षमध्यमायाम्।
स्वां नमः—दक्ष अनामिकायाम्।
हां नमः—दक्ष कनिष्ठिकायाम्।

गों नमः—वामपादमूले।
पीं नमः—वामगुल्फे।
जं नमः—वामजंघायाम्।
नं नमः—वामपादांगुलिमूले।
वं नमः—वामपादांगुल्यग्रे।
ल्लं नमः—वामपादांगुष्ठे।
भां नमः—वामतर्जन्याम्।
यं नमः—वाममध्यमायाम्।
स्वं नमः—वाम अनामिकायाम्।
हां नमः—वामकनिष्ठिकायाम्।

× × ×

गों नमः—मूर्ध्नि।
पीं नमः—तत्पूर्वे।
जं नमः—तद्दक्षिणे।
नं नमः—तत्पश्चिमे।
वं नमः—तदुत्तरे।
ल्लं नमः—मूर्ध्नि।

गों नमः—शिरसि।
पीं नमः—नेत्रयोः।
जं नमः—मुखे।
नं नमः—कण्ठे।
वं नमः—हृदि।
ल्लं नमः—जठरे।

भां नमः—दक्षिणभुजे ।	भां नमः—मूलाधारे ।
यं नमः—वामभुजे ।	यं नमः— लिङ्गे ।
स्वां नमः—दक्षिणोरौ ।	स्वां नमः—जानुनो ।
हां नमः—वामोरौ ।	हां नमः—पादयोः ।

× × ×

गों नमः—श्रोत्रयोः ।	भां नमः—ऊर्वो ।
पीं नमः—गण्डयो ।	यं नमः—नानुनोः ।
जं नमः—अंसयो ।	स्वां नमः—जंघयोः ।
नं नमः—स्तनयोः ।	हां नमः—पादयोः ।
वं नमः—पार्श्वयोः ।	
ल्लं नमः—लिङ्गे ।	

× × ×

करशुद्ध्यासनन्यासौ न्यासं वाग्देवताभिधम् ।
कृत्वा पूर्वोदिताङ्कूटत्रयं कास्यहृदि न्यसेत् ।।१६४।।
कूटत्रयद्विरावृत्त्या षडङ्गं पुनराचरेत् ।
कमलावसुधायुक्तं ध्यायेच्छ्रीचक्रगं हरिम् ।।१६५।।

अन्य न्यास—फिर पूर्वोक्त रीति से कर शुद्धिन्यास, आसन न्यास एवं वाग्देवता न्यास करके तीनों कूटों का शिर, मुख एवं हृदय में न्यास करना चाहिए।

फिर तीन कूटों की २ आवृत्तियों से पुनः षडङ्गन्यास करना चाहिए (तत्पश्चात्) कमला एवं वसुधा के साथ श्रीचक्र में स्थित हरि का ध्यान करना चाहिए।

पिछले प्रकरण से बतलायी गयी रीति से कर शुद्धि न्यास, आसन न्यास एवं वाग्देवता न्यास करने के बाद निम्न रीति से तीन कूटों का न्यास करना चाहिए, यथा—कृष्णाय नमः मूर्ध्नि । गोविन्दाय नमः मुखे । गोपीजन वल्लभाय नमः हृदये ।

षडङ्गन्यास—कृष्णाय हृदयाय नमः । गोविन्दाय शिरसे स्वाहा । गोपीजन वल्लभाय शिखायै वषट् । कृष्णाय कवचाय हुम् । गोविन्दाय नेत्रत्रयाय वौषट् । गोपीजन वल्लभाय अस्त्राय फट् ।

क्षीराम्भोधिस्थकल्पद्रुमवनविलसद्रत्नयुङ्मण्डपान्तः,
प्रोद्यच्छ्रीपीठसंस्थं करधृतजलजारीक्षुचापांकुशेषुम् ।
पाशं वीणां सुवेणुं दधतमवनिमाशोभितं रक्तकान्ति,
ध्यायेद्गोपालभीशं विधिमुखविबुधैरीड्यमानं समंतात् ।।१६६।।

ध्यान—क्षीरसागर के कल्पवृक्षवाले वन में सुशोभित रत्नमण्डप के भीतर श्रीपीठ पर स्थित (आठ भुजा वाले) हाथों में क्रमशः पद्म, चक्र, इक्षुचाप, वाण, अंकुश, पाश, वीणा एवं वेणु धारण करने वाले, धरा एवं लक्ष्मी से सुशोभित तथा ब्रह्मा आदि देवताओं से स्तूयमान गोपाल का ध्यान करना चाहिए।

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं दशांशं पायसान्धसा।
जुहुयाद्वैष्णवे पीठे पूजयेत्सुन्दरींहरिम् ॥१६७॥

जपसंख्या एवं हवन—ऐसा ध्यान कर एक लाख जप करना चाहिए। खीर से दशांश होम करना चाहिए तथा वैष्णवपीठ पर गोपालसुन्दरी का पूजन करना चाहिए।

आदावङ्गानि सम्पूज्यप्रागाद्याशासु पूजयेत्।
वासुदेवं संकर्षणं प्रद्युम्नमनिरुद्धकम् ॥१६८॥
पूज्यावह्न्यादिकोणेषु शान्तिः श्रीश्चसरस्वती।
रतिः पुनर्दिक्षु पूज्या रुक्मणी सत्यभामिका ॥१६९॥
कालिन्दी जाम्बवत्याख्या मित्रबिन्दासुनन्दया।
सुलक्षणानाग्निजिती ततोर्च्या निधयोपि च ॥१७०॥
महापद्मश्चपद्मश्चशङ्खोमकरकच्छपौ।
मुकुन्द कुन्दनीलाश्चखर्वश्चनिधयो नव ॥१७१॥
ततश्चसुन्दरी प्रोक्तावृतिपूजां समाचरेत्।
प्रयोगानपि तत्रोक्तान्कुर्यादिष्ट प्रसिद्धये ॥१७२॥

आवरण पूजा—सर्वप्रथम अंगपूजा कर पूर्व आदि दिशाओं में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध का पूजन करना चाहिए। फिर आग्नेय आदि कोणों में शान्ति, श्री, सरस्वती एवं रति का पूजन करना चाहिए।

फिर दिशाओं में रुक्मणी, सत्यभामिका, कालिन्दी, जाम्बवती, मित्रविन्दा, सुनन्दा, सुलक्षणा एवं नाग्निजिती का पूजन करना चाहिए।

इसके बाद निधियों का पूजन करना चाहिए। महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील एवं खर्व ये ९ निधियाँ होती हैं।

तत्पश्चात् त्रिपुरसुन्दरी के प्रयोग में बतलायी गई ९ आवरणों की पूजा करनी चाहिए और अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए वहीं बतलाए गये काम्य प्रयोगों को भी करना चाहिए।

आवरण पूजा विधि— वृत्ताकार, कर्णिका, अष्टदल एवं भूपुर सहित बने यन्त्र पर पूजन करना चाहिए।

इस यन्त्र पर सामान्यपूजा पद्धति के अनुसार पीठ देवताओं एवं विमला आदि वैष्णवी पीठशक्तियों का पूजन कर ध्यान आवाहन आदि उपचारों से पुष्पाञ्जलि दानपर्यन्त पूजन कर आवरण पूजा करनी चाहिए, यथा—

सर्वप्रथम आग्नेय आदि कोणों में षडङ्ग पूजा करनी चाहिए। यथा—

ह्रीं श्रीं क्लीं हृदयाय नमः। कृष्णाय शिरसे स्वाहा। गोविन्दाय शिखायै वषट्। गोपीजन कवचाय हुम्। वल्लभाय नेत्रत्रयाय वौषट्। स्वाहा अस्त्रायफट्।

फिर पूर्व आदि चारों दिशाओं से चारों पत्रों के मूल में निम्नलिखित मन्त्रों से वासुदेव आदि का पूजन करना चाहिए, यथा—

ॐ वासुदेवाय नमः। ॐ संकर्षणाय नमः। ॐ प्रद्युम्नाय नमः। ॐ अनिरुद्धाय नमः।

इसके बाद आग्नेय आदि चारों कोणों के चारों पत्रों के मूल में निम्नलिखित मन्त्रों से शान्ति आदि का पूजन करना चाहिए, यथा—

ॐ शान्त्यै नमः। ॐ ॐ श्रियैः नमः। ॐ सरस्वत्यै नम। ॐ रत्यै नमः।

तत्पश्चात् अष्टदल के पत्रों के मध्य में पूर्व आदि दिशाओं में रुक्मिणी आदि का निम्नलिखित मन्त्रों से पूजन करना चाहिए, यथा—

ॐ रुक्मण्यै नमः। ॐ सत्यभामायै नमः। ॐ कालिन्द्यै नमः। ॐ जाम्बवत्यै नमः। ॐ मित्रविन्दायै नमः। ॐ सुनन्दायै नमः। ॐ सुलक्षणायै नमः। ॐ नाग्निजित्यै नमः।

और फिर दलों के बहिर्भाग में पूर्व आदि दिशाओं में तथा मध्य में निम्नलिखित मन्त्रों से ९ निधियों का पूजन करना चाहिए, यथा—

ॐ महापद्माय नमः। ॐ पद्माय नमः। ॐ शंखाय नमः। ॐ मकराय नमः। ॐ कच्छपाय नमः। ॐ मुकुन्दाय नमः। ॐ कुन्दाय नमः। ॐ नीलाय नमः। ॐ खर्वाय नमः।

इसके बाद त्रिपुरसुन्दरी की पूजा के प्रसङ्ग में बतलाई गयी रीति से ९ आवरणों की पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार आवरण पूजा करने के बाद धूप, दीप आदि उपचारों का पूजन करना चाहिए।

एवं यो भजते नित्यं श्रीमद्गोपालसुन्दरीम्।
सर्वान्कामानवाप्यान्ते सायुज्यं ब्रह्मणो ब्रजेत् ॥१७३॥

इस रीति से जो व्यक्ति प्रतिदिन गोपालसुन्दरी की उपासना करता है, उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हाती हैं तथा वह अन्त में ब्रह्मस्वरूप प्राप्त करता है।

॥ इति श्री बृहत् पूजा विधानम् ॥

सातवाँ अध्याय

अथ संक्षेपेण श्रीचक्र पूजनम्

तत्र प्रातः कृत्यादिप्राणायामान्तम्विधाय मातृकादिन्यासांश्च विधाय स्वेष्टमन्त्रस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्, ततः—

बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम्।
पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां भजे॥

इति ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य आनन्दोऽहमिति विभाव्य सपर्याप्रकरणोक्तप्रकारेण कलशं संस्थाप्य तेनोदकेन पूजाद्रव्याणि सम्प्रोक्ष्य, शङ्खस्थापनं कुर्यात्।

तद्यथा—श्रीचक्रपुरतः स्ववामे त्रिकोण-षट्कोण-वृत्त-चतुरस्रं मत्स्यमुद्रया निर्माय मूलषडङ्गैरभ्यर्च्य "फट्" इति शङ्खं प्रक्षाल्य तत्र गन्धपुष्पादिकं निक्षिप्य 'मूलेन' जलेनापूर्य मण्डलादिकम्पूजयेत्।

"अं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने, नमः" इति त्रिपादिकायाम्।

"उं सूर्यमण्डलाय द्वादश कलात्मने नमः" इति शङ्खे।

"मं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः" इति जले।

ततः "गङ्गे च यमुने चैव०" इत्यादिना तीर्थमावाह्य "हुं" इत्यवगुण्ठ्य षडङ्गेन सम्पूज्य धेनुमुद्रां प्रदर्श्य मूलमष्टधा जपित्वा तज्जलं किञ्चित् प्रोक्षणी-तोये निक्षिप्य तेनोदकेनात्मानं पूजोपकरणं चाभ्युक्षयेत्। तद्दक्षिणे पाद्यादिपात्रं संस्थाप्याऽऽसनपूजामारभेत्। यथा—

---

० **अथ श्रीचक्र (यन्त्र) का संक्षिप्त पूजन विधान**—प्रातःकाल के नित्यकर्मों से निवृत्त होने के उपरान्त प्राणायाम करे तथा मातृकादिन्यास पूर्वक अपने इष्ट मन्त्र का त्र ऋष्यादि का न्यास करे। तदनन्तर "बालार्क० मन्त्र पढ़कर भगवती त्रिपुरेश्वरी शिवा का ध्यान करे। मानसिक पूजन करे। मैं स्वयं ही आनन्द हूँ" इस प्रकार की भावना कर पूजन प्रकरण में बताये गये विधान के अनुसार कलश की स्थापना कर, उसके जल से पूजा द्रव्यों को पवित्र करे

उपर्युपरियन्त्रस्य ३ आधारशक्तये नमः । "एवं" प्रकृतये०, कूर्माय०, अनन्ताय०, पृथिव्यै०, रसाम्बुधये०, रत्नद्वीपाय, नन्दनोद्यानाय०, रत्नमण्डपाय०, कल्पवृक्षाय० रत्नवेदिकायै०, रत्नसिंहासनाय नमः ।

पीठोपरि बैन्दवचक्रे—ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः । बैन्दवे हसरैं हसकलरीं हसरौः" इति मन्त्रेण मूर्ति सङ्कल्प्य त्रिखण्डामुद्रां बद्ध्वा पूर्ववद्-ध्यात्वा प्रवहन्नासापुटेन तेजोमयं पुष्पाञ्जलावानीय "३ महापद्मवनान्तःस्थे कारणानन्द विग्रहे । सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि ।" इति मूर्तौ संस्थाप्यावाहनादि यथाशक्त्युपचारेण पूजाम्विधाय श्रीचक्रे लयाङ्गदिपूजां विदध्यात् ।

षडङ्गार्चनम्

"ऐं ह्लीं श्रीं ह्लीं क ए ई ल ह्रीं हसकहल ह्लीं सकल ह्लीं" श्री ललिता महात्रिपुर सुन्दरी (पराभट्टारिका) श्रीपादुकां पूजयामि नमः "इति ब्रिन्दौ ढेवींत्रिः" सम्पूजयेत् ।

देव्यङ्गे (बिन्दौ) अग्नीशासुरवायुकोणेषु मध्ये दिक्षु च ।
ऐं ह्लीं श्रीं ऐं क—ए ई ल ह्लीं हृदयाय नमः हृदयशक्ति श्रीपा० पू० नमः ।
" " " क्लीं हसकहल ह्लीं शिरसे स्वाहा शिरः शक्ति श्रीपा० पू० नमः ।
" " " सौः स—कल ह्लीं शिखायै वषट् शिखाशक्ति श्रीपादुकां पू० नमः ।
" " " ऐं क—ए ई ल ह्लीं कवचाय हुँ कवचशक्ति श्रीपादुकां पू० नमः ।
" " " क्लीं ह—सकहल ह्लीं नेत्रयाय वौषट् नेत्रशक्ति श्रीपादुकां पू० नमः ।
" " " सौः स—कल ह्लीं अस्त्राय फट् अस्त्रशक्ति श्रीपादुकां पू० नमः ।
ततोमध्य प्राक्त्यस्रमध्येषु गुरुपङ्क्ति पूजयेत्—तद्यथाः—
ऐं ह्लीं श्रीं गुरु पङ्क्तिभ्यो नमः ।

शंख की स्थापना करे। श्री चक्र के आगे अपनी बाईं ओर षट्कोणवृत्त, चतुरस्र को मत्स्य मुद्रा से बनाकर मूल मन्त्र से षडंगपूजन करे। 'फट्' कह कर शंख को प्रक्षालित करे। गन्ध पुष्प और जल मूलमन्त्र से शंख में पूरित करे। मण्डल की पूजा करे। अं० आदि मन्त्र पढ़े। गंगे च यमुने० कहकर तीर्थों का आवाहन करे। हुं कहकर पूजा करे। धेनु मुद्रा प्रदर्शित कर मूल-मन्त्र को आठ बार जपे। थोड़ा सा जल प्रोक्षणी पात्र में डाले। पूजन की सामग्री एवं स्वयं को पवित्र करे। दाहिनी ओर पाद्यादि पात्रों को रखकर आसन पूजा प्रारम्भ करे। यन्त्र के ऊपर 'ऐं ह्लीं श्रीं आधार शक्तये० आदि पढ़कर पूजा करे। पीठ के ऊपर बिन्दु चक्र में लयाङ्ग पूजा करे। फिर षडं-गार्चन करे। फिर मध्य में गुरु पंक्ति की पूजा करे। ऐं ह्लीं श्रीं गुरु० आदि मन्त्र पढ़े।

ऐं ह्रीं श्रीं गुरु पादुकाभ्यो नमः ऐं ह्रीं श्रीं परमगुरुपादुकाभ्यो नमः, ऐं ह्रीं श्रीं परापर गुरु पादुकाभ्यो नमः ऐं ह्रीं श्रीं आचार्य तत्पादुकाञ्च पूजयेत् ।

अथावरण पूजा

चतुरस्रे त्रैलोक्य मोहन चक्रे—

तत्र चतुरस्रस्य प्रथम रेखायां ऐं ह्रीं श्रीं अणिमाद्यष्टदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

मध्यरेखायां—ऐं ह्रीं श्रीं ब्राह्म्याद्यष्टदेवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

अन्त्यरेखायां—ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसङ्क्षोभिण्यादिमुद्रा श्री पादुकां पूजयामि नमः ।

चक्राग्रे—ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुराचक्रेश्वरी श्री पादुकां पूजयामि नमः ।

एताः प्रकटयोगिन्यः त्रैलोक्य मोहन चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तर्पिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः (इत्यर्घ्यजलेन मूलदेव्यै समर्पयेत्) ।

ततः षोडशदले सर्वाशापरिपूरके चक्रे—ऐं ह्रीं श्रीं अं..........अः कामाकर्षिण्यादिषोडशनित्याकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

चक्राग्रे—ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरेशीचक्रेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

ऐं ह्रीं श्रीं एता गुप्तयोगिन्यः सर्वाशापरिपूरके चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तर्पिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः (इत्यर्घ्यजलेन मूलदेव्यै समर्पयेत्) अष्टदले सर्वसङ्क्षोभणचक्रे—

अनङ्गकुसुमाद्यष्ट देवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

चक्राग्रे—ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरसुन्दरीचक्रेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

अत्र सर्वसङ्क्षोभणचक्रे अनङ्गकुसुमाद्यागुप्ततरयोगिन्यः समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तर्पिताः सन्तुष्टा सन्तु नमः (इत्यर्घ्यजलेन मूलदेव्यै समर्पयेत्) ।

चतुर्दशारे सर्वसौभाग्यदायके चक्रे—

ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसङ्क्षोभिण्यादिचतुर्दशदेवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

---

० **अथ आवरण पूजा**—चतुरस्र त्रैलोक्य मोहन चक्र में—प्रथम-मध्य व अन्त्य रेखाओं में पूजन करे । चक्र के आगे पूजन करे फिर षोडश दल वाले सर्वाशा परिपूरक चक्र में पूजा करे । चक्र के आगे पूजा करे । फिर अष्टदल वाले सर्व संक्षोभण चक्र में तथा चक्र के आगे मन्त्रों को पढ़ते हुए पूजा करे ।

चक्राग्रे—ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरवासिनी चक्रेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

अत्र सर्वसौभाग्यदायके चतुर्दशारचक्रे सम्प्रदाययोगिन्यः समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तर्पिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः (इत्यर्घ्यजलेन मूलदेव्यै समर्पयेत्) ।

सर्वार्थसाधके बहिर्दशारचक्रे—

ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसिद्धिप्रदादिदशदेवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

चक्राग्रे—ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरा श्रीचक्रेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

अत्र सर्वार्थसाधके बहिर्दशारचक्रे कुलोत्तीर्णयोगिन्यः समुद्राः ससिद्धयः, सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तर्पिता सन्तुष्टा सन्तु नमः (इत्यर्घ्यजलेन मूलदेव्यै समर्पयेत्) ।

सर्वरक्षाकरे—अन्तर्दशारचक्रे—ऐं ह्रीं श्रीं सर्वज्ञादिदशदेवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

चक्राग्रे—ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरमालिनी चक्रेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

ऐं ह्रीं श्रीं अत्र सर्व रक्षाकरे अन्तर्दशारचक्रे निगर्भयोगिन्यः समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तर्पिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः (इत्यर्घ्यजलेन मूलदेव्यै समर्पयेत्) ।

सर्वरोगहरे अष्टारचक्रे—ऐं ह्रीं श्रीं वशिन्याद्यष्टदेवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

चक्राग्रे—ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरासिद्धाचक्रेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

अत्र सर्वरोगहरे चक्रे एता वशिन्याद्यष्टरहस्ययोगिन्यः समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तर्पिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः (इत्यर्घ्यजलेनमूलदेव्यै समर्पयेत्) ।

सर्वसिद्धिप्रदे अन्तरालत्रिकोणे—अग्रकोणे ऐं ह्रीं श्रीं महाकामेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः । दक्षिण कोणे—ऐं ह्रीं श्रीं महावज्रेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः । वामकोण—ऐं ह्रीं श्रीं महाभगमालिनी श्रीपादुकां पूजयामि नमः । चक्राग्रे—ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुराम्बाचक्रेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

ऐं ह्रीं श्रीं अत्र सर्वसिद्धिप्रदेचक्रे—कामेश्वर्याद्या अतिरहस्ययोगिन्यः समुद्राः

तदनन्तर चतुर्दशार सर्व सौभाग्यदायक चक्र में व चक्र के आगे पूजा करे। तत्पश्चात् बहिर्दशारचक्र में (सर्वार्थ साधक चक्र में) तथा आगे मन्त्र पढ़कर पूजा करे। फिर सर्वरक्षाकर अन्तर्दशारचक्र में व चक्र के आगे पूजा करे। फिर सर्व रोग हर अष्टारचक्र की व चक्र के आगे मन्त्र पढ़कर पूजा करे।

ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सम्पूजिताः सन्तर्पिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः (इत्यर्घ्यजलेन मूलदेव्यै समर्पयेत्)।

सर्वानन्दमये बिन्दु चक्रे—ऐं ह्रीं श्रीं महात्रिपुरसुन्दरी श्रीविद्यापादुकां पूजयामि नमः (त्रिवारम्)।

ऐं ह्रीं श्रीं वामे योनिमुद्रा श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

चक्राग्रे—ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरसुन्दरी चक्रेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

ऐं ह्री श्रीं अत्र सर्वानन्दमये बैन्दवचक्रे सच्चिदानन्दस्वरूपिणी परापरातिरहस्य योगिनी समुद्रा ससिद्धिः सायुधा सशक्ति सवाहना सपरिवारा सर्वोपचारैः सम्पूजिता सन्तर्पिता सन्तुष्टाऽस्तु नमः (इत्यर्घ्यजलेनमूलदेव्यै समर्पयेत्)।

ततः सपर्याप्रकरणोक्त प्रकारेण धूपदोपनैवेद्यारार्तिक्यं कुर्यात्। पुनर्यथाशक्ति मूलमन्त्रं जपित्वा सहस्रनामादिभिर्जगन्मातरं संस्तूय पूजासमर्पणादि पात्रोद्वासनान्तं कर्म समापयेत्।

फिर सर्व सिद्धि प्रद अन्तराल त्रिकोण में—आगे-दाहिने-वायें एवं सामने पूजा करे। फिर सर्वानन्द मय विन्दु चक्र में पूजा करे। धूप-दीप-नैवेद्य आरार्तिक्य आदि करे। मूल मन्त्र का जप करे। फिर शतनाम, त्रिशत नाम व सहस्रनाम का पाठ कर माता की स्तुति करे। पूजा समर्पण एवं पात्रोद्वासन के उपरान्त पूजन की समाप्ति करे। इति संक्षिप्त पूजा विधि।

आठवाँ अध्याय

मन्त्र, स्तोत्र, कवच, सहस्त्रनाम आदि

सम्बुद्ध्यन्तखड्गमाला-मन्त्र

अस्य श्री शुद्धशक्तिसंबुद्ध्यन्तमालामहामन्त्रस्य, उपस्थेन्द्रियाधिष्ठायिवरुणादित्यऋषये नमः शिरसि। गायत्रीच्छन्दसे नमः मुखे। सात्त्विककरभट्टारकपीठस्थित शिवकामेश्वराङ्कनिलयायै कामेश्वरीललितामहाभट्टारिकायै देवतायै नमः हृदये।

ऐं वीजं, सौः शक्तिः क्लीं कीलकं, खड्गसिद्धौ विनियोगः।

ह्लीं इत्यादिना करहृदयादिन्यासः।

ध्यानम्—

ताद‍ृशं खड्गमाप्नोति येन हस्तस्थितेन वै।
अष्टादशमहाद्वीपसम्राड्भोक्ता भविष्यति॥

लमित्यादि पञ्चपूजा।

ऐं ह्लीं श्रीं नमस्त्रिपुरसुन्दरि (१२) हृदयदेवि शिरोदेवि शिखादेवि कवचदेवि नेत्रदेव्यस्त्रदेवि (३७) कामेश्वरि भगमालिनि नित्यक्लिन्ने भेरुण्डे वह्निवासिनि महावज्रेश्वरि शिवदूति त्वरिते कुलसुन्दरि नित्ये नीलपताके विजये सर्वमङ्गले ज्वालामालिनी चित्रे महानित्ये (१०२) परमेश्वर परमेश्वरि मित्रीशमयि षष्ठीशमय्युड्डीशमयि चर्यानाथमयि लोपामुद्राभय्यगस्त्यमयि कालतापनमयि धर्माचारमयि मुक्तकेशीश्वरमयि दीपकलानाथमयि विष्णुदेवमयि प्रभाकर देवमयि तेजोदेवमयि मनोजदेवमयि कल्याण देवमयि रत्नदेवमयि वासुदेवमयि (२१७) श्रीरामानन्दमय्यणिमासिद्धे लघिमासिद्धे महिमासिद्धेईशित्वसिद्धेवशित्वसिद्धे प्राकाम्यसिद्धे भुक्तिसिद्धे इच्छासिद्धे प्राप्तिसिद्धे सर्वकाम सिद्धे (२७१) ब्राह्मि माहेश्वरि कौमारि वैष्णवि वाराहि माहेन्द्रि चामुण्डे महालक्ष्मी (२९६) सर्वसंक्षोभिणि सर्वविद्राविणि सर्वाकर्षिणि सर्ववशंकरि सर्वोन्मादिनि सर्वमहाङ्कुशे सर्वखेचरि सर्वबीजे सर्वयोने

सर्वत्रिखण्डे त्रैलोक्यमोहन चक्रस्वामिनि प्रकटयोगिन (३६५) कामाकर्षिणि बुद्ध्याकर्षिण्यहंकाराकर्षिणि शब्दाकर्षिणि स्पर्शाकर्षिणि रूपाकर्षिणि रसाकर्षिणि गन्धाकर्षिणि चित्ताकर्षिणि धैर्याकर्षिणि स्मृत्याकर्षिणि नामाकर्षिणि बीजाकर्षिण्यात्माकर्षिण्यमृताकर्षिणि शरीराकर्षिणि सर्वाशापरिपूरकचक्रस्वामिनि (४५६) गुप्तयोगिन्यनङ्गकुसुमेऽनङ्गमेखलेऽनङ्गमदनेऽनङ्गमदनातुरेऽनङ्गरेखेऽनंगवेगिन्यनङ्गाङ्कुशेऽनङ्गमालिनि सर्वसंक्षोभचक्रस्वामिनि गुप्ततरयोगिनि (५२२) सर्वसंक्षोभिणि सर्वविद्राविणि सर्वाकर्षिणि सर्वाह्लादिनि सर्वसम्मोहिनि सर्वस्तम्भिनि सर्वजृम्भिणि सर्ववशंकरि सर्वरञ्जिनि सर्वोन्मादिनि सर्वार्थसाधिनि सर्वसंपत्तिपूरणि सर्वमन्त्रमयि सर्वद्वन्द्वक्षयंकरि सर्वसौभाग्यदायकचक्रस्वामिनि सम्प्रदाययोगिनि (६२४) सर्वसिद्धिप्रदे सर्वसंपत्प्रदे सर्वप्रियंकरि सर्वमङ्गलकारिणि सर्वकामप्रदे सर्वदुःखविमोचिनि सर्वमृत्युप्रशमनि सर्वविघ्ननिवारिणि सर्वाङ्गसुन्दरि सर्वसौभाग्यदायिनि सर्वार्थसाधकचक्रस्वामिनि कुलोत्तीर्णयोगिनि (७१२) सर्वज्ञे सर्वशक्ते सर्वैश्वर्यप्रदे सर्वज्ञानमयि सर्वव्याधिविनाशिनि सर्वाधारस्वरूपे सर्वपापहरे सर्वानन्दमयि सर्वरक्षास्वरूपिणि सर्वेप्सितप्रदे सर्वरक्षाकर चक्रस्वामिनि निगर्भयोगिनि (७८६) वशिनि कामेश्वरि मोदिनि विमलेऽरुणे जयिनि सर्वेश्वरि कौलिनि सर्वरोगहरचक्रस्वामिनि रहस्ययोगिनि (८३१) बाणिनि चापिनि पाशिन्यङ्कुशिनि महाकामेश्वरि महावज्रेश्वरि महाभगमालिनि महाश्रीसुन्दरिसर्वसिद्धिप्रदचक्रस्वामिन्यतिरहस्ययोगिनि (८८६) श्री श्री महाभट्टारिके सर्वानन्दमयचक्रस्वामिनि परापररहस्ययोगिनि (९१५) त्रिपुरे त्रिपुरेशि त्रिपुरसुन्दरि त्रिपुरवासिनि त्रिपुरा श्री-स्त्रिपुरमालिनि त्रिपुरासिद्धे त्रिपुराम्ब महात्रिपुरसुन्दरि (९६१) महामहेश्वरि महामहाराज्ञि महामहाशक्ते महामहागुप्ते महामहाज्ञप्ते महामहानन्दे महामहास्पन्दे म ामहशये महामहाश्रीचक्रनगरसम्राज्ञि नमस्ते .त्रिः) स्वाहा श्रीं ह्रीं ऐं ॥१०३१॥

एकत्रिंशदधिकसहस्राक्षराणि । इति सम्बुद्ध्यन्तखड्गमाला ।

चतुर्थ्यन्त–खड्गमाला मन्त्रः

अस्य श्रीखड्गमालामन्त्रस्य उपस्थाधिष्ठायिने वरुणादित्यऋषये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमः मुखे, ललितादेवतायै नमः हृदये कएईलह्रीं बीजाय नमः गुह्ये, हसकहलह्रीं शक्तये नमः पादयोः, सकलह्रीं कीलकाय नमः नाभौ, श्रीललिताप्रसादसिद्ध्यर्थे पूजने विनियोगः । कूटत्रयद्विरावृत्या करहृदयादिन्यासः ।

ध्यानम्

बालार्कारुणतेजसं त्रिनयनां रक्ताम्बरोल्लासिनीं
नानालङ्कृतिराजमानवपुषं बालोडुराड्शेखराम्

हस्तैरिक्षुधनुः सृणीसुमकरां पाशं मुदा बिभ्रतीं
श्रीचक्रस्थितसुन्दरीं त्रिजगतामाधारभूतां स्मरेत् ।।

इति ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य ।

ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरसुन्दर्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं हृदयदेव्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं शिरोदेव्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं शिखादेव्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं कवचदेव्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं नेत्रदेव्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं अस्त्रदेव्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं कामेश्वर्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं भगमालिन्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं विजयायै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं सर्वमङ्गलायै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं ज्वालामालिन्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं चित्रायै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं महानित्यायै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं परमेश्वरपरमेश्वर्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं मित्रीशमय्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं षष्ठीशमय्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं उड्डीशमय्यै नमः
ऐं ह्रीं श्री चर्यानाथमय्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं लोपामुद्रामय्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं अगस्त्यमय्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं कालतापनमय्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं धर्माचायमय्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं मुक्तकेशीश्वरमय्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं दीपकलानाथमय्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं विष्णुदेवमय्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं प्रभाकरदेवमय्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं तेजोदेवमय्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं मनोजदेवमय्यै नमः

ऐं ह्रीं श्रीं नित्यक्लिन्नायै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं भेरुण्डायै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं वह्निवासिन्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं महावज्रेश्वर्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं शिवदूत्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं त्वरितायै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं कुलसुन्दर्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं नित्यायै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं नीलपताकायै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं सर्वकामसिद्ध्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं ब्राह्म्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं माहेश्वर्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं कौमार्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं वैष्णव्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं वाराह्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं माहेन्द्र्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं चामुण्डायै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसंक्षोभिव्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं सर्वविद्रावण्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं सर्वकर्षिण्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं सर्ववशङ्कर्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं सर्वोन्मादेन्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं सर्वमहांकुशायै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं सर्वखेचर्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं सर्वबीजायै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं सर्वयोन्यै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं सर्वत्रिखण्डायै नमः
ऐं ह्रीं श्रीं त्रैलोक्यमोहनचक्रस्वामिन्यै नमः

ऐं ह्रीं श्रीं कल्याणदेवमय्यै नमः
,, ,, रत्नदेवमय्यै नमः
,, ,, वासुदेवमय्यै नमः
,, ,, श्रीरामानन्दमय्यै नमः
,, ,, अणिमासिद्ध्यै नमः
,, ,, लघिमासिद्ध्यै नमः
,, ,, महिमासिद्ध्यै नमः
,, ,, ईशित्वसिद्ध्यै नमः
,, ,, वशित्वसिद्ध्यै नमः
,, ,, प्राकाम्यसिद्ध्यै नमः
,, ,, भुक्तिसिद्ध्यै नमः
,, ,, इच्छासिद्ध्यै नमः
,, ,, प्राप्तिसिद्ध्यै नमः
,, ,, बीजाकर्षिण्यै नमः
,, ,, आत्माकर्षिण्यै नमः
,, ,, अमृताकर्षिण्यै नमः
,, ,, शरीराकर्षिण्यै नमः
,, ,, सर्वाशापरिपूरकचक्रस्वामिन्यै नमः
,, ,, गुप्तयोगिन्यः नमः
,, ,, अनङ्गकुसुमायै नमः
,, ,, अनङ्गमेखलायै नमः
,, ,, अनङ्गमदनायै नमः
,, ,, अनङ्गमदनातुरायै नमः
,, ,, अनङ्गरेखायै नमः
,, ,, अनङ्गवेगिन्यै नमः
,, ,, अनङ्गांकुशायै नमः
,, ,, अनङ्गमालिन्यै नमः
,, ,, सर्वक्षोभणचक्रस्वामिन्यै नमः
,, ,, गुप्तरयोगिन्यै नमः
,, ,, सर्वसंक्षोभिण्यै नमः
,, ,, सर्वविद्राविण्यै नमः
,, ,, सर्वाकर्षिण्यै नमः
,, ,, सर्वाह्लादिन्यै नमः

ऐं ह्रीं श्रीं प्रकटयोगिन्यै नमः
,, ,, कामाकर्षिण्यै नमः
,, ,, बुद्ध्याकर्षिण्यै नमः
,, ,, अहंकाराकर्षिण्यै नमः
,, ,, शब्दाकर्षिण्यै नमः
,, ,, स्पर्शाकर्षिण्यै नमः
,, ,, रूपाकर्षिण्यै नमः
,, ,, रसाकर्षिण्यै नमः
,, ,, गन्धाकर्षिण्यै नमः
,, ,, चित्ताकर्षिण्यै नमः
,, ,, धैर्याकर्षिण्यै नमः
,, ,, स्मृत्याकर्षिण्यै नमः
,, ,, नामाकर्षिण्यै नमः
,, ,, सर्वसम्पत्प्रदायै नमः
,, ,, सर्वप्रियङ्कर्यै नमः
,, ,, सर्वमङ्गलकारिण्यै नमः
,, ,, सर्वकामप्रदायै नमः
,, ,, सर्वदुःखविमोचिन्यै नमः
,, ,, सर्वमृत्युप्रशमिन्यै नमः
,, ,, सर्वविघ्ननिवारिण्यै नमः
,, ,, सर्वाङ्गसुन्दर्यै नमः
,, ,, सर्वसौभाग्यदायिन्यै नमः
,, ,, सर्वार्थसाधकचक्रस्वामिन्यै नमः
,, ,, कुलोत्तीर्णयोगिन्यै नमः
,, ,, सर्वज्ञायै नमः
,, ,, सर्वशक्त्यै नमः
,, ,, सर्वैश्वर्यप्रदायै नमः
,, ,, सर्वज्ञानमय्यै नमः
,, ,, सर्वव्याधिविनाशिन्यै नमः
,, ,, सर्वाधारस्वरूपायै नमः
,, ,, सर्वपापहरायै नमः
,, ,, सर्वानन्दमय्यै नमः
,, ,, सर्वरक्षास्वरूपिण्यै नमः

ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसम्मोहिन्यै नमः
,, ,, सर्वस्तम्भिन्यै नमः
,, ,, सर्वजृम्भिण्यै नमः
,, ,, सर्ववशङ्कर्यै नमः
,, ,, सर्वरञ्जिन्यै नमः
,, ,, सर्वोन्मादिन्यै नमः
,, ,, सर्वार्थसाधिन्यै नमः
,, ,, सर्वसम्पत्तिपूरण्यै नमः
,, ,, सर्वमन्त्रमय्यै नमः
,, ,, सर्वद्वन्द्वक्षयङ्कर्यै नमः
,, ,, सर्वसौभाग्यदायकचक्र स्वामिन्यै नमः
,, ,, सम्प्रदाययोगिन्यै नमः
,, ,, सर्वसिद्धिप्रदायै नमः
,, ,, रहस्योगिन्यै नमः
,, ,, बाणिन्यै नमः
,, ,, चापिन्यै नमः
,, ,, पाशिन्यै नमः
,, ,, अंकुशिन्यै नमः
,, ,, महाकामेश्वर्यै नमः
,, ,, महावज्रेश्वर्यै नमः
,, ,, महाभगमालिन्यै नमः
,, ,, महाश्रीसुन्दर्यै नमः
,, ,, सर्वसिद्धिप्रदचक्र स्वामिन्यै नमः
,, ,, अतिरहस्ययोगिन्यै नमः
,, ,, श्री श्रीमहाभट्ठारिकायै नमः
,, ,, सर्वानन्दमयचक्रस्वामिन्यै नमः
,, ,, परापररहस्ययोगिन्यै नमः
,, ,, त्रिपुरायै नमः
,, ,, त्रिपुरेश्यै नमः
,, ,, त्रिपुरसुन्दर्यै नमः
,, ,, त्रिपुरवासिन्यै नमः
,, ,, त्रिरापुश्रियै: नमः

ऐं ह्रीं श्रीं सर्वेप्सितप्रदायै नमः
,, ,, सर्वरक्षाचकरक्रस्वामिन्यै नमः
,, ,, निगर्भयोगिन्यै नमः
,, ,, वशिन्यै नमः
,, ,, कामेश्वर्यै नमः
,, ,, मोदिन्यै नमः
,, ,, विमलायै नमः
,, ,, अरुणायै नमः
,, ,, जयिन्यै नमः
,, ,, सर्वेश्वर्यै नमः
,, ,, कौलिन्ये नमः
,, ,, सर्वरोगहरचक्रस्वामिन्यै नमः
,, ,, नमस्ते स्वाहा श्रीं ह्रीं ऐं ॐ
श्री परदेवतार्पणमस्तु ।

ऐं श्रीं ह्रीं त्रिपुरमालिन्यै नमः
,, ,, त्रिपुरासिद्धायै नमः
,, ,, त्रिपुराम्बमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः
,, ,, महामहेश्वर्यै नमः
,, ,, महामहाराज्ञ्यै नमः
,, ,, महामहाशक्त्यै नमः
,, ,, महामहागुप्तायै नमः
,, ,, महामहाज्ञप्तायै नमः
,, ,, महामहानन्दायै नमः
,, ,, महामहास्पन्दायै नमः
,, ,, महामहाशयायै नमः
,, ,, महामहाश्रीचक्रनगर साम्राज्ञ्यै नमस्ते नमस्ते ।

श्रीललितात्रिशतीस्तोत्ररत्ननामावलिः

अस्य श्रीललितात्रिशतीस्तोत्रमालामन्त्रस्य हयग्रीवऋषये नमः शिरसि अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे २। श्रीललिताम्बादेवतायै नमः हृदये ऐं ह्रीं श्रीं। कएईल ह्रीं बीजाय नमः गुह्ये सकलह्रीं। सकलह्रीं शक्तये नमः पादयोः कएईल-ह्रीं। हसकहलह्रीं कीलकाय नमः नाभौ। हसकहलह्रीं। श्रीललिताम्बाप्रसाद-सिद्धये जपे (पूजने) विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे। कूटत्रयं द्विरावृत्य बालया वा षडङ्गद्वयम्।

अथ ध्यानम्

अतिमधुरचापहस्तामपरिमितामोदबाणसौभाग्याम्
अरुणामतिशयकरुणामभिनवकुलसुन्दरीं वन्दे ॥१॥

लमिति पञ्चोपचारैः सम्पूज्य ॐ ऐं ह्रीं श्रीं

ॐ ककाररूपायै नमः
ॐ कल्याण्यै नमः
ॐ कल्याणगुणशालिन्यै नमः
ॐ कल्याणशैलनिलयायै नमः
ॐ कमनीयायै नमः
ॐ कलावत्यै नमः
ॐ कमलाक्ष्यै नमः
ॐ कल्मषघ्न्यै नमः
ॐ एकाररूपायै नमः
ॐ एकाक्षर्यै नमः
ॐ एकानेकाक्षराकृत्यै नमः
ॐ एतत्तदित्यनिर्देश्यायै नमः
ॐ एकानन्दचिदाकृत्यै नमः
ॐ एवमित्यागमाबोध्यायै ॥
ॐ एकभक्तिमदर्चितायै नमः
ॐ एकाग्रचित्तनिर्ध्यातायै ॥

ॐ करुणामृतसागरायै नमः
ॐ कदम्बकाननावासायै नमः
ॐ कदम्बकुसुमप्रियायै नमः
ॐ कन्दर्पविद्यायै नमः
ॐ कन्दर्पजनकापाङ्गवीक्षणायै नमः
ॐ कर्पूरवीटीसौरभ्यकल्लोलितककुप्तटायै नमः
ॐ कलिदोषहरायै नमः
ॐ कञ्जलोचनायै नमः
ॐ कम्रविग्रहायै नमः
ॐ कर्मादिसाक्षिण्यै नमः
ॐ कारयित्र्यै नमः
ॐ कर्मफलप्रदायै नमः
ॐ एकारूपायै नमः
ॐ एकाक्षर्यै नमः
ॐ एकानेकाक्षराकृत्यै नमः
ॐ एतत्तदित्यनिर्देश्यायै नमः
ॐ एकानन्दचिदाकृत्यै नमः
ॐ एवमित्यागमाबोध्यायै नमः
ॐ एकभक्तिमदर्चितायै नमः
ॐ एकाग्रचित्तनिर्ध्यातायै नमः
ॐ एषणारहितादृतायै नमः
ॐ एलासुगन्धिचिकुरायै नमः
ॐ एनःकूटविनाशिन्यै नमः
ॐ एक भोगायै नमः
ॐ एकरसायै नमः
ॐ एकैश्वर्यप्रदायिन्यै नमः
ॐ एकातपत्रसाम्राज्यप्रदायै
ॐ एकान्तपूजितायै नमः
ॐ एधमानप्रभायै नमः
ॐ एजदनेकजगदीश्वर्यै नमः
ॐ एकवीरादिससेव्यायै नमः
ॐ एकप्राभवशालिन्यै नमः
ॐ ईकाररूपायै नमः
ॐ ईशित्र्यै नमः
ॐ ईप्सितार्थप्रदायिन्यै नमः
ॐ ईदृगित्यविनिर्देश्यायै नमः
ॐ ईश्वरत्वविधायिन्यै नमः
ॐ ईशानादिब्रह्ममय्यै नमः
ॐ ईशित्वाद्यष्टसिद्धिदायै नमः
ॐ ईक्षित्र्यै नमः
ॐ ईक्षणसृष्टाण्डकोट्यै नमः
ॐ ईश्वरवल्लभायै नमः
ॐ ईडितायै नमः
ॐ ईश्वरार्धाङ्गशरीरायै नमः
ॐ ईशाधिदेवतायै नमः
ॐ ईश्वरप्रेरणकर्यै नमः
ॐ ईशताण्डवसाक्षिण्यै नमः
ॐ ईश्वरोत्सङ्ग निलयायै नमः
ॐ ईतिबाधाविनाशिन्यै नमः
ॐ ईहाविरहितायै नमः
ॐ ईशशक्त्यै नमः
ॐ ईषत्स्मिताननायै नमः ।।
ॐ लकाररूपायै नमः
ॐ ललितायै नमः
ॐ लक्ष्मीवाणीनिषेवितायै नमः
ॐ लाकिन्यै नमः
ॐ ललनारूपायै नमः
ॐ लसद्दाडिमपाटलायै नमः
ॐ ललन्तिकालसत्फालायै नमः
ॐ ललामराजदलिकायै नमः
ॐ लम्बिमुक्तालताञ्चितायै नमः
ॐ लम्बोदरप्रसुवे नमः
ॐ लभ्यायै नमः
ॐ लज्जाढ्यायै नमः
ॐ लयवर्जितायै नमः
ॐ ह्रींकाररूपायै नमः
ॐ ह्रींकारनिलयायै नमः
ॐ ह्रींपदप्रियायै नमः
ॐ ह्रींकारबीजायै नमः
ॐ ह्रींकारमन्त्रायै नमः
ॐ ह्रींकारलक्षणायै नमः
ॐ ह्रींकारजपसुप्रीतायै नमः
ॐ ह्रींमत्यै नमः
ॐ ह्रींविभूषणायै नमः
ॐ ह्रींशीलायै नमः
ॐ ह्रींपदाराध्यायै नमः
ॐ ह्रींगर्भायै नमः
ॐ ह्रींपदाभिधायै नमः
ॐ ह्रींकारवाच्यायै नमः

ॐ ललितायै नमः
ॐ लक्ष्मीवाणीनिषेवितायै नमः
ॐ लाकिन्यै नमः
ॐ ललनारूपायै नमः
ॐ लसद्दाडिमपाटलायै नमः
ॐ ललन्तिकालसत्फालायै नमः
ॐ ललाटनयनार्चितायै नमः
ॐ लक्षणोज्ज्वलदिव्याङ्ग्यै नमः
ॐ लक्षकोट्यण्डनायिकायै नमः
ॐ लक्ष्यार्थायै नमः
ॐ लक्षणगम्यायै नमः
ॐ लब्धकामायै नमः
ॐ लतातनवे नमः
ॐ हयमेध समर्चितायै नमः
ॐ हर्यक्षवाहनायै नमः
ॐ हंसवाहनायै नमः
ॐ हतदानवायै नमः
ॐ हत्यादिपापशमन्यै नमः
ॐ हरिदश्वादिसेवितायै नमः
ॐ हस्तिकुम्भोत्तुङ्गकुचायै नमः
ॐ हस्तिकृत्तिप्रियाङ्गनायै नमः
ॐ हरिद्राकुङ्कुमादिग्धायै नमः
ॐ हर्यश्वाद्यमरार्चितायै नमः
ॐ हरिकेशसख्यै नमः
ॐ हादिविद्यायै नमः
ॐ हालामदालसायै नमः
ॐ सकाररूपायै नमः
ॐ सर्वज्ञायै नमः
ॐ सर्वेश्यै नमः
ॐ सर्वमङ्गलायै नमः
ॐ सर्वकर्त्र्यै नमः
ॐ सर्वभर्त्र्यै नमः
ॐ सनातन्यै नमः

ॐ ह्लींकारपूज्यायै नमः
ॐ ह्लींकारपीठिकायै नमः
ॐ ह्लींकारवेद्यायै नमः
ॐ ह्लींकारचिन्त्यायै नमः
ॐ ह्लीं नमः
ॐ ह्लीं शरीरिण्यै नमः
ॐ हकाररूपायै नमः
ॐ हलधृक्पूजितायै नमः
ॐ हरिणेक्षणायै नमः
ॐ हरिप्रियायै नमः
ॐ हराराध्यायै नमः
ॐ हरिब्रह्मेन्द्रसेवितायै नमः
ॐ हयारूढासेविताङ्घ्र्यै नमः
ॐ कालहन्त्र्यै नमः
ॐ कामेश्यै नमः
ॐ कामितार्थदायै नमः
ॐ कामसञ्जीविन्यै नमः
ॐ कल्यायै नमः
ॐ कठिन स्तनमण्डलायै नमः
ॐ करभोरवे नमः
ॐ कलानाथमुख्यै नमः
ॐ कचजिताम्बुदायै नमः
ॐ कटाक्षस्यन्दिकरुणायै नमः
ॐ कपालिप्राणनायिकायै नमः
ॐ कारुण्यविग्रहायै नमः
ॐ कान्तायै नमः
ॐ कान्तिधूतजपावल्यै नमः
ॐ कलालापायै नमः
ॐ कम्बुककण्ठ्यै नमः
ॐ करनिर्जितपल्लवायै नमः
ॐ कल्पवल्लीसमभुजायै नमः
ॐ कस्तूरीतिलकाञ्चितायै नमः
ॐ हकारार्थायै नमः

ॐ सर्वानवद्यायै नमः
,, सर्वाङ्गसुन्दर्यै नमः
,, सर्वसाक्षिण्यै नमः
,, सर्वात्मिकायै नमः
,, सर्वसौख्यदात्र्यै नमः
,, सर्वविमोहिन्यै नमः
,, सर्वाधारायै नमः
,, सर्वगतायै नमः
,, सर्वावगुणवर्जितायै नमः
,, सर्वारुणायै नमः
,, सर्वमात्रे नमः
,, सर्वभूषणभूषितायै नमः
,, ककारार्थायै नमः
,, हानोपादाननिर्मुक्तायै नमः
,, हर्षिण्यै नमः
,, हरिसोदर्यै नमः
,, हाहाहूहूमुखस्तुत्यायै नमः
,, हानिवृद्धिविवर्जितायै नमः
,, हय्यङ्गवीनहृदयायै नमः
,, हरिगोपारुणांशुकायै नमः
,, लकाराख्यायै नमः
,, लतापूज्यायै नमः
,, लयस्थित्युद्भवेश्वर्यै नमः
,, लास्यदर्शनसन्तुष्टायै नमः
,, लाभालाभविवर्जितायै नमः
,, लंघ्येतराज्ञायै नमः
,, लघुसिद्धिदायै नमः
,, लाक्षारससवर्णाभायै नमः
,, लक्ष्मणाग्रजपूजितायै नमः
,, लभ्येतरायै नमः
,, लब्धभक्तिसुलभायै नमः
,, लाङ्गलायुधायै नमः

ॐ हंसगत्यै नमः
,, हाटकाभरणोज्ज्वलायै नमः
,, हारहारिकुचभोगायै नमः
,, हाकिन्यै नमः
,, हल्यवर्जितायै नमः
,, हरित्पतिसमाराध्यायै नमः
,, हठात्कारहतासुरायै नमः
,, हर्षप्रदायै नमः
,, हविर्भोक्त्र्यै नमः
,, हार्दसन्तमसापहायै नमः
,, हल्लीसलास्य सन्तुष्टायै नमः
,, हंसमन्त्रार्थरूपिण्यै नमः
,, ह्रींकाराम्भोदचञ्चलायै नमः
,, ह्रींकारकन्दांकुरिकायै नमः
,, ह्रींकारैकपरायणायै नमः
,, ह्रींकारदीर्घिकाहंस्यै नमः
,, ह्रींकारोद्यानकेकिन्यै नमः
,, ह्रींकारारण्यहरिण्यै नमः
,, ह्रींकारावालवल्लर्यै नमः
,, ह्रींकारपञ्जरशुक्यै नमः
,, ह्रींकाराङ्गणदीपिकायै नमः
,, ह्रीङ्कारकन्दरासिंह्यै नमः
,, ह्रींकाराम्भोजभृङ्गिकायै नमः
,, ह्रींकारसुमनोभृङ्गिकायै नमः
,, ह्रींकारतरुमञ्जर्यै नमः
,, सकाराख्यायै नमः
,, समरसायै नमः
,, सकलागमसस्तुतायै नमः
,, सर्ववेदान्ततात्पर्यभूम्यै नमः
,, सदसदाश्रयायै नमः
,, सकलायै नमः
,, सच्चिदानन्दायै नमः

ॐ लग्नचामरहस्तश्रीशारदापरिवी-
जितायै नमः
,, लज्जापदसमाराध्यायै नमः
,, लम्पटायै नमः
,, लकुलेश्वर्यै नमः
,, लब्धमानायै नमः
,, लब्धरसायै नमः
,, लब्धसम्पत्समुन्नत्यै नमः
,, ह्लींकारिण्यै नमः
,, ह्लींकाराद्यायै नमः
,, ह्लींमध्यायै नमः
,, ह्लींशिखामणये नमः
,, ह्लींकारकुण्डाग्निशिखायै नमः
,, ह्लींकारशशिचन्द्रिकायै नमः
,, ह्लींकारभास्कररुच्यै नमः ।

ॐ साध्व्यै नमः
,, सद्गतिदायिन्यै नमः
,, सनकादिमुनिध्येयायै नमः
,, सदाशिवकुटुम्बिन्यै नमः
,, सकलाधिष्ठानरूपायै नमः
,, सत्यरूपायै नमः
,, समाकृत्यै नमः
,, सर्वप्रपञ्चनिर्मात्र्यै नमः
,, समानाधिकवर्जितायै नमः
,, सर्वोत्तुंगायै नमः
,, सङ्गहीनायै नमः
,, सगुणायै नमः
,, सकलेष्टदायै नमः

अथ षोडषी कल्याणी स्तोत्रम्

कल्याणवृष्टिभिरिवामृतपूरिताभिर्लक्ष्मी स्वयंवरणमङ्गलदीपिकाभिः ॥ सेवाभिरम्ब तव पादसरोजमूले नाकारि किम्मनसि भक्तिमताञ्जनानाम् ॥१॥ एतावदेव जननि स्पृहणीयमास्ते त्वद्वन्दनेषु सलिलस्थसरोजनेत्रे । सान्निध्यमुद्यदरुणाम्बुजसोदरस्य त्वद्विग्रहस्य सुधया परया प्लुतस्य ॥२॥ ईषत्प्रभावकलुषा ऽ कतिनाम सन्ति ब्रह्मादय ऽ प्रतिदिनम्प्रलयाभिभूताः ॥ एकस्य एव जननि स्थिरसिद्धिरास्ते य ऽ पादयोस्तव सकृत्प्रणतिङ्करोति ॥३॥ लब्ध्वा सकृत्त्रिपुरसुन्दरि तावकीनङ्कारुण्यकन्दलतिकान्तिभरङ्कटाक्षम् ॥ कन्दर्प्पभावसुभगास्त्वयि भक्तिभाजः सम्मोहयन्ति तरुणीम्भुवनत्रयेऽपि ॥४॥ ह्लींकारमेव तव नाम गृणन्ति ये वा मातस्त्रिकोणनिलये त्रिपुरे त्रिनेत्रे ॥ त्वत्संस्मृतौ यमभटाभिभवं विहाय दिव्यति नन्दनवने सह लोकपालैः ॥५॥ हन्तु ऽ पुरामधिगलत्परिपूर्णमान ऽ क्रर ऽ कथन्न भविता गरलस्य वेगः ॥ नाश्वासनाय यदि मातरिदन्तवार्द्धदेहस्य शश्वदमृताप्लुतशीतलस्य ॥६॥ सर्व्वज्ञतां सदसि वाक्पटुताम्प्रसूते देवि त्वदङ्घ्रिसरसीरुहयो ऽ प्रणामः ॥ किञ्च स्फुरन्मुकटमुज्ज्वलमातपत्रन्द्वे चामरे च महतीं वसुधान्दधाति ॥७॥ कल्पद्रुमैरभिमतप्रतिपादनेषु कारुण्यवारिधिभिरम्ब भवत्कटाक्षैः ॥ आलोकय त्रिपुरसुन्दरि मामनाथन्त्वय्येवभक्तिभरितन्त्वयि बद्धदृष्टिम् ॥८॥ हन्तेतरेष्वपि निधाय मनांसि चान्ये भक्तिं वहन्ति किल सापरदैवतेषु ॥ त्वामेव

देवि मनसाऽहमनुस्मरामि त्वामेव नौमि शरणञ्जननि त्वमेव ।।९।। लक्षेषु सत्स्वपि तवाक्षिविलोकनानामालोकय त्रिपुरसुन्दरि माङ्कथञ्चित् ।। नूनम्मया च सदृशङ्क-रुणैकपात्रञ्जातो जनिष्यति जनो न च जायते वा ।।१०।। ह्रीं ह्रींमिति प्रतिदिनञ्ज-पतान्तवाख्याङ्किन्नाम दुर्ल्लभमिह त्रिपुराभिधाने ।। मालाकिरीटमदवारणमाननीयां-स्तान्सेवते मधुमती स्वमेव लक्ष्मीः ।।११।। सम्पत्कराणि सकलेन्द्रियनन्दनानि साम्राज्यदानकुशलानि सरोरुहाक्षि ।। त्वद्वन्दनानि दुरितोद्धरणोद्यतानि मामेव मातरनिशङ्कलयन्तु नान्यम् ।।१२।। कल्पोपसंहरणकल्पिततताण्डवस्य देवस्य खण्ड-परशो ऽ परभैरवस्य ।। पाशाङ्कुशैक्षवशरासनपुष्पबाणाः सा साक्षिणी विजयते तव मूर्त्तिरेका ।।१३।। लग्नं सदा भवतु मातरिदन्त्वदीयन्तेज ऽ परम्वहुलकुङ्कम-पङ्कशोणम् ।। भास्वत्किरीटममृतांशुकलावतंसं रूपं त्रिकोण मुदितम्परमामृताक्तम् ।।१४।। ह्रीङ्कारत्रयसम्पुटेन महता मन्त्रेण सन्दीपितं, स्तोत्रं य्य ऽ प्रतिवासस्तव पुरो मातर्ज्जपेन्मन्त्रवित् । तस्य क्षोणिभुजो भजन्ति वशगा लक्ष्मीश्शिवरं स्थायिनी, वाणी निर्म्मलसूक्ति भावभरिता जार्गति दीर्घं य्यशः ।।१५।। इतिब्रह्मविरचितं षोडशीकल्याणीस्त्रोत्रं समाप्तम् ।।

अथ श्री षोडशी विद्या कवचम्

देव्युवाच ।। देवदेव महादेव भक्तानाम्प्रीतिदायक ।। सुचिन्तयन्महादेव्याः कवचङ्कथयस्व मे ।।१।। श्री महादेव उवाच ।। शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कवचन्देव-दुर्ल्लभम् ।। अप्रकाश्यम्परङ्गुह्यं साधकाभीष्टसिद्धिदम् ।।२।। कवचस्य ऋषिर्द्देवि दक्षिणामूर्तिरव्ययः ।। छन्द ऽ पङ्क्तिः समुद्दिष्टन्देवी त्रिपुरसुन्दरी ।।३।। धर्म्मार्त्थकाममोक्षाणाँ व्विनियोगस्तु साधने ।। वाग्भवङ्कामबीजञ्च शक्तिबीजं सुरेश्वरि ।।४।। वाग्भवम्पातु शीर्ष्षे माङ्कामबीजन्तथा हृदि ।। शक्तिबीजं सदा पातु नाभौ गुह्ये च पादयोः ।।५।। ऐंक्लींसौंवदने पातु बाला मां सर्व्वसिद्धये ।। हसौः सकलह्रीं पातु भैरवी कण्ठदेशतः ।।६।। सुन्दरी नाभिदेशे च शीर्ष्षे कामकला सदा ।। भ्रूनासयोरन्तराले महात्रिपुरसुन्दरी ।।७।। ललाटे सुभगा पातु भगामाङ्कण्ठ-देशतः ।। भगोदया तु हृदये उदरे भगसर्पिणी ।।८।। भगमाला नाभिदेशे लिङ्गे पातु मनोभवा ।। गुह्ये पातु महादेवी राजराजेश्वरी शिवा ।।९।। चैतन्यरूपिणी पातु पादयोर्ज्जगदम्बिका ।। नारायणी सर्व्वगात्रे सर्व्वकाये शुभङ्करी ।।१०।। ब्रह्माणी पातु माम्पूर्व्वे दक्षिणे वैष्णवी तथा ।। पश्चिमे पातु वाराही उत्तरे च महेश्वरी ।।११।। आग्नेय्याम्पातु कौमारी महालक्ष्मीस्तु नैर्ऋते ।। वायव्याम्पातु चामुण्डा इन्द्राणी पातु ईशके ।।१२।। जले पातु महामाया पृथिव्यां सर्व्वमङ्गला ।। आकाशे पातु वरदा सर्व्वत्रिभुवनेश्वरी ।।१३।। इदन्तु कवचन्देव्या देवानामपि दुर्ल्लभम् ।। य ऽ पठेत्प्रातरुत्थाय शुचि ऽ प्रयतमानसः ।।१४।। नाधयो व्याध-

यस्तस्य न भयञ्च क्वचिद्भवेत् ।। न तु मारीभयन्तस्य पातकानाम्भयन्तथा ।।१५।। न दारिद्र्यवशङ्गच्छेत्तिष्ठेन्मृत्युवशे न च ।। गच्छेत्स्थिर पुरन्देवि सत्य सत्यं व्वदाम्यहम् ।।१६।। इदङ्कवचमज्ञात्वा श्रीविद्याँय्यो जपेत्प्रिये स नाप्नोति फलन्तस्य प्राप्नुयाच्छस्रघातनम् ।।१७।। इति सिद्धयामले श्रीषोडशीविद्याकवचं समाप्तम् ।।

अथ षोडशी हृदयम्

कैलासे करुणाक्रान्ता परोपकृतिमानसा ।। पप्रच्छ करुणासिन्धुं सुप्रसन्नम्महेश्वरम् ।।१।। श्रो पार्व्वत्युवाच ।। आगामिनि कलौ ब्रह्मन् धर्म्मकर्म्मविवर्ज्जिताः ।। भविष्यन्ति जनास्तेषाङ्कथं श्रेयो भविष्यति ।।२।। श्रीशिवउवाच ।। शृणु देवि प्रवक्ष्यामि तव स्नेहान्महेश्वरि ।। दुर्लभन्त्रिषु लोकेषु सुन्दरीहृदयस्तवम् ।।३।। ये नरा दुःखसन्तप्ता दारिद्र्यहतमानसाः ।। अस्यैव पाठमात्रेण तेषां श्रेयो भविष्यति ।।४।। ओमस्य श्रीमहाषोडशीहृदयस्तोत्रमन्त्रस्य आनन्दभैरवऋषिर्दैवीगायत्रीछन्दः श्रीमहात्रिसुन्दरीदेवता ऐंबीजं सौः शक्तिः क्लींकीलकं धर्म्मार्त्थकाममोक्षार्त्थे विनियोगः ।। आनन्दभैरवऋषयेनमशिशरसि ।। देवीगायत्रीछन्दसेनमः मुखे ।। श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीदेवतायै नमः हृदये ।। एंबीजाय नमः नाभौ । सौः शक्तये नमः स्वाधिष्ठाने ।। क्लींकीलकाय नमः मूलाधारे । धर्म्मार्त्थकाममोक्षार्त्थे विनियोगः पादयोः ।। अथकराङ्गन्यासौ ।। ऐं ह्रीं क्लीं अङ्गुष्ठाभ्यान्नामः ।। क्लीं श्रीं सौः ऐं तर्ज्जनीभ्यांस्वाहा । सौः ॐ ह्रीं श्रीं मध्यमाभ्याँव्वषट् । ऐंकएईलह्रीं हसकहलह्रीं अनाम्िकाभ्यांहूम् । क्लीं सकलकनिष्ठाभ्याँव्वौषट् । सौः सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं करतलकरपृष्ठाभ्याम्फट् ।। एवमङ्गन्यासः ।। ध्यानम् । बालव्यक्तविभाकरामितनिभाम्भव्यप्रदाम्भारतीभीषत्फुल्लमुखाम्बुजस्मितकरैराशाभवान्धापहाम् ।। पाशँ साभयमङ्कशञ्च वरदं सम्बिभ्रतीम्भूतिदां भ्राजन्तीञ्चतुरम्बुजाकृतिकरैर्भक्त्या भजे षोडशीम् ।।५।। सुन्दरी सकलकल्मषापहा कोटिकञ्जप्रियकाम्यकान्तिका ।। कोटिकल्पकृतपुण्यकर्म्मणा पूजनीयपदपुण्यपुष्करा ।।६।। शर्व्वगेशसमसुन्दरानना श्रीशशक्तिसुकृताश्रयश्रिता ।। सज्जनानुशरणीयसत्पदा सङ्कटे सुरगणैः सुवन्दिता ।।७।। या सुरासुररणे जवान्विता आजघान जगदम्बिकाऽजिता ।। ताम्भजामि जगताञ्जनिञ्जयाँ य्युद्धयुक्तदितिजान्सुदुर्ज्जयान् ।।८।। योगिनां हृदयसङ्गतां शिवाँ योगयुक्तमनसाँ य्यतात्मनाम् ।। जाग्रतीञ्जगति यत्नतो द्विजा याञ्जपन्ति हृदि ताम्भजाम्यहम् ।।९।। कल्पकास्तु कलयन्ति कलिकाँ य्यत्कला कलिजनोपकारिका ।। कौलिकालिकलिताङ्घ्रिकञ्जकान्ताम्भजामि कलिकल्मषापहाम् ।।१०।। बालार्क्कानन्तशोर्चिन्निजतनुकिरणैर्द्दीपयन्ती दिगन्तान् दीप्तैर्देदीप्यमानान्दनुजदलवनानलपदावानलाभाम् ।। दान्तोदन्तोग्रचित्तान्दलितदिति

सुतान्दर्शनीयान्दुरन्तान्देवीन्दीनाद्र्द्रचित्तां हृदि मुदितमनाः षोडशीं संस्मरामि ॥११॥ धीरान्धन्यान्धरित्रीं धवविधृतशिरोधूतधूल्यब्जपादान्धृष्टान्धाराधराधोविनिधृतचपलाचारुचन्दत्प्रभाभाम् ॥ धर्म्मान्धूतोपहारान्धरणिसुरधवोद्धारिणी ध्येयरूपान्धीमद्धन्यातिधन्यान्धनदधनवृतां सुन्दरीञ्चिन्तयामि ॥१२॥ जयतु-जयतु जल्पा योगिनी योगयुक्ता जयतु-जयतु सौम्या सुन्दरी सुन्दरास्या ॥ जयतु जयतु पद्मा पद्मिनी केशवस्य जयतु जयतु काली कालिनी कालकान्ता ॥१३॥ जयतु जयतु खर्व्वा षोडशी वेदहस्ता जयतु जयतु धात्री धर्म्मिणी धातृशांतिः । जयतु जयतु वाणी ब्राह्मणी ब्रह्मवन्द्या जयतु जयतु दुर्ग्गा दारिणी देवशत्रोः ॥१४॥ देवि त्वं सृष्टिकाले कमलभवभृता राजसी रक्तरूपा, रक्षाकाले त्वमम्बा हरिहृदयधृता सात्त्विकी श्वेतरूपा ॥ भूरिक्रोधा भवान्ते भवभवनगता तामसी कृष्णरूपा, एताश्चान्यास्त्वमेव क्षितिमनुजमता सुन्दरी केवलाद्या ॥१५॥ सुमलसुमनमेतद्देवि गोप्यङ्गणज्ञे ग्रहणमननयोग्यं षोडशीयङ्क्लघ्नम् ॥ सुरतरुसमशोलं सम्प्रदम्पाठकानाम्प्रभवति हृदयाख्यं स्तोत्रमत्यन्तमान्यम् ॥१६॥ इदं त्रिपुरसुन्दर्य्याः षोडश्या ऽ परमाद्भुतम् ॥ यः शृणोति नरः स्तोत्रं स सदा सुखमश्नुते ॥१७॥ न शूद्राय प्रदातव्यं शठाय समलात्मने ॥ देयन्दान्ताय भक्ताय ब्राह्मणाय विशेषतः ॥१८॥ इति श्रीत्रिपुरसुन्दरीतन्त्रे षोडशीहृदयस्तोत्रं समाप्तम् ॥

अथोपनिषत्

ॐ परमकारणभूता शक्ति ऽ केन नवचक्ररूपो देहः नवचक्रशक्तिमयं श्रीचक्रँ व्वाराही पितृरूपा कुरुकुल्लाचीलदेवता मातापुरुषार्थाः सागराः देहो नवरत्ने द्वीपः आधारनवकमुद्राः शक्तयः त्वगादिसप्तधातुभिरनेकैः संयुक्ताः सङ्कल्पा ऽ कल्पतरवः तेज ऽ कल्पकोद्यानं रसनया भासमाना मधुराम्लतिक्तकटुकषायलवणरसाः षड्सा ऽ क्रियाशक्तिपीठङ्कुण्डलिनीज्ञानशक्तिः अहम् इच्छाशक्तिर्म्महात्रिपुरसुन्दरी ज्ञाता होता ज्ञानम घर्य्यं ज्ञेयं हविः ज्ञातृज्ञानज्ञेयानमो भेदभावनं श्रीचक्रपूजनन्नियतिसहितशृंङ्गारादयो नव रसा अणिमादय ऽ कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्य्यपुण्यपापमया ब्राह्म्याद्यष्टशक्तयः आधारं नवकमुद्राशक्तयः पृथ्व्यप्तेजोवाय्वाकाशश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूप स्थाविकाराः षोडशशक्तयः वचनादानगमनविसर्ग्गानन्दादानोपादानोपेक्षा बुद्धयोऽनङ्गकुसुमादिशक्तयोष्टौ अलम्बुषाकुहूविश्वोदरीवरुणाहस्तिजिह्वायशस्विनी गान्धारीपूषासरस्वतीइडापिङ्गलासुषुम्ना चेति चतुर्द्दशनाड्यः सर्व्वसङ्क्षोभिण्यादिचतुर्द्दशार देवता ऽ प्राणापानव्यानोदानसमाननागकूर्म्मकृकलदेवदत्तधनञ्जया दश वायवः सर्व्वसिद्धिप्रदादिवहिर्द्दशारदेवताः एतद्वायुदशकं ससर्ग्गोपाधिभेदेन रेचकपूरकपोषकदाहकालपावकामृतमिति प्राणसख्यत्वेन पञ्चविधोऽस्ति जाठराग्निर्म्मनुष्याणाम्मोहको भक्ष्य-

भोज्यलेह्यचोष्यात्मकञ्चतुर्व्विधमन्नम्पाचयति ।। तदाकाशवान् सकलाः सर्व्वज्ञत्वाद्यन्तर्द्दशारदेवताः शीतोष्णसुखदुःखेच्छासत्त्वरजस्तमोगुणादिवशिन्यादिशक्तयोऽष्टा शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः पञ्चतन्मात्राः पञ्चपुष्पवाणाः मनेक्षुधनुर्व्वल्यो वाणो राग पाशो द्वेषोऽङ्कुशोऽव्यक्तमहत्तत्त्वाहङ्कारकामेश्वरी—वज्रेश्वरीभगमालिन्योऽन्तस्त्रिकोणाग्रदेवताः पञ्चदशतिथिरूपेण कालस्य परिणामावलोकनपञ्चदशनित्या शुद्धानुरूपाधिदेवता निरुपाधिसार्व्वदेवकामेश्वरी सदानन्दपूर्णाः स्वात्म्यैक्यरूपललिता कामेश्वरी सदानन्दघनपूर्णाः स्वात्म्यैक्यरूपा देवता ललितामिति साहित्यकरणं सत्त्वं कर्त्तव्यमाकर्त्तव्यमिति भावनामुक्ता उपचारा अहन्त्वमस्ति नास्ति कर्त्तव्याकर्त्तव्यमुपासितव्यानुपासितव्यमिति विकल्पनामनोविलापनं होमः बाह्याभ्यन्तरकरणानां रूपग्रहणयोग्यतास्तीत्यावाहनम् तस्य बाह्याभ्यन्तरकरणानामेकरूपविषयग्रहणमासनम् रक्तशुक्लपदैकीकरणम्पाद्यम् उज्ज्वलदामोदानन्दासानन्दमर्घ्यम् स्वच्छास्वतः शक्तिरित्याचमनम् चिच्चन्द्रमयीस्मरणं स्नानम् चिदग्निस्वरूपपरमानन्द शक्तिस्मरणं व्वस्त्रम् प्रत्येकं सप्तविंशतिधा भिन्नत्वेन इच्छाक्रियात्मकब्रह्मग्रन्थिमयी सतन्तुब्रह्मनाडीब्रह्मसूत्रम् सव्यातिरिक्तवस्त्रसङ्गरहितस्मरणं व्विभूषणम् स्वच्छन्दपरिपूर्णस्मरणङ्गन्धः समस्तविषयाणाम्मनः स्थैर्य्येणानुसन्धानङ्कुसुमन्तेषामेव सर्वदा स्वीकरणन्धूपः पवनाच्छिन्नोर्द्ध्वंज्वला सच्चिदाह्लादाकाशदेहो दीपः समस्तयातायातिवर्ज्जनन्नैवेद्यम् अवस्थात्रयैकीकरणन्ताम्बूलम् मूलाधारादाब्रह्मरन्ध्रपर्य्यन्तम्ब्रह्मरन्ध्रादामूलाधारपर्य्यन्तङ्गतागतरूपेण प्रादक्षिण्यन्तुरीयावस्थानं संस्कार देहशून्यप्रमादितावतिमज्जनम्बलिहरणं सत्त्वमस्ति कर्त्तव्यमकर्त्तव्यमौदासीन्यमात्मविलापनं होमः भावनाविषयाणामभेद भावना तर्पणम् स्वयन्तत्पादुकानिमज्जनम्परिपूर्णध्यानम् एवम्मूर्त्तित्रयभावनया युक्तो मुक्तो भवति तस्य देवतात्मैक्यसिद्धिः चितिकार्य्याण्यप्रयत्नेन सिद्ध्यन्ति स एव शिवयोगीति कथ्यते ।। इति षोडश्युपनिषत् समाप्ता ।।

अथ शतनाम

भृगुरुवाच ।। चतुर्व्वक्त्र जगन्नाथ स्तोत्रं व्वद मयि प्रभो ।। यस्यानुष्ठानमात्रेण नरो भक्तिमवाप्नुयात् ।।१।। ब्रह्मोवाच ।। सहस्रनाम्नामाकृष्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।। गुह्याद्गुह्यतरङ्गुह्यं सुन्दर्य्याः परिकीर्तितम् ।।२।। ओमस्य श्रीषोडश्यष्टोत्तर शतनामस्तोत्रस्य शम्भुर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीषोडशीदेवता धर्म्मार्थकाममोक्षसिद्धये विनियोगः ।। ॐ त्रिपुरा षोडशीमाता त्र्यक्षरा त्रितया त्रयी ।। सुन्दरी सुमुखी सेव्या सामवेदपरायणा ।।३।। शारदा शब्दनिलया सागरा सरिताम्बरा ।। शुद्धाशुद्धतनुस्साध्वी शिवध्यानपरायणा ।।४।। स्वामिनी शम्भुवनिता शाम्भवी च सरस्वती ।। समुद्रमथिनी शीघ्रगामिनी शीघ्रसिद्धदा ।।५।।

साधुसेव्या साधुगम्या साधुसन्तुष्टमानसा ।। खट्वाङ्गधारिणी खर्व्वा खड्गखर्प्पर-धारिणी ।।६।। षड्वर्गभावरहिता षड्वर्गपरिचारिका ।। षड्वर्ग्गा च षडङ्गा च षोढा षोडशवार्षिकी ।।७।। ऋतुरूपा ऋतुमती ऋभुक्षाक्रतुमण्डिता ।। कवर्गादि-पवर्गान्ता अन्वस्थानन्तरूपिणी ।।८।। अकाराकाररहिता कालमृत्युजरापहा ।। तन्वी तत्त्वेश्वरी तारा त्रिवर्षा ज्ञानरूपिणी ।।९।। काली कराली कामेशी च्छाया सञ्ज्ञाप्यरुन्धती ।। निर्व्विकल्पा महावेगा महोत्साहा महोदरी ।।१०।। मेघा बलाका विमला विमलज्ञानदायिनी ।। गौरी वसुन्धरा गोप्त्री गवाम्पतिनिषेविता ।।११।। भगाङ्गा भगरूपा च भक्तिभावपरायणा ।। छिन्नमस्ता महाधूमा तथा धूम्रविभू-षणा ।।१२।। धर्म्मकर्म्मादिरहिता धर्म्मकर्म्मपरायणा ।। सीता मातङ्गिनी मेधा मधुदैत्यविनाशिनी ।।१३।। भैरवी भुवना माताऽभयदा भवसुन्दरी ।। भावुका बगला कृत्या बाला त्रिपुरसुन्दरी ।।१४।। रोहिणी रेवती रम्या रम्भा रावण-वन्दिता ।। शतयज्ञमयी सत्त्वा शतक्रतुवरप्रदा ।।१५।। शतचन्द्रानना देवी सहस्रा-दित्यसन्निभा ।। सोमसूर्य्याग्निनयना व्याघ्रचर्म्माम्बरावृता ।।१६।। अर्द्धेन्दुधारिणी मत्ता मदिरा मदिरेक्षणा ।। इति ते कथितङ्गोप्यन्नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।।१७।। सुन्दर्य्याः सर्व्वदं सेव्यम्महापातकनाशनम् ।। गोपनीयङ्गोपनीयङ्गोपनीयङ्कलौ युगे ।।१८।। सहस्रनामपाठस्य फलँ य्यद्वै प्रकीर्त्तितम् ।। तस्मात्कोटिगुणम्पुण्यं स्तव-स्यास्य प्रकीर्तनात् ।।१९।। पठेत्सदा भक्तियुतो नरो यो निशीथकालेऽप्यरुणोदये वा ।। प्रदोषकाले नवमीदिनेऽथवा लभेत भोगान्परमाद्भुतान् प्रियान् ।।२०।। इति ब्रह्मयामले पूर्व्वखण्डे षोडश्यष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं समाप्तम् ।।

अथ सहस्रनाम

कैलाशशिखरे रम्ये नानारत्नोपशोभिते ।। कल्पपादपमध्यस्थे नानापुष्पोप-शोभिते ।। मणिमण्डपमध्यस्थे मुनिगन्धर्व्वसेविते ।। तङ्कश्चित्सुखमासीन-म्भगवन्तञ्जगद्गुरुम् ।। कपालखट्वाङ्गधरञ्चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ।। त्रिशूल-डमरूहस्तम्महावृषभवाहनम् ।। जटाजूटधरन्देवं व्वासुकीकण्ठभूषणम् ।। विभूतिभूषणन्देवन्नीलकण्ठन्त्रिलोचनम् ।। द्वीपिचर्म्मपरीधानं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।। सहस्रादित्यसङ्काशङ्गिरिजार्द्धांगभूषणम् ।। प्रणम्य शिरसा नाथङ्कारणं व्विश्वरूपिणम् ।। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्राहैनं शिखिवाहनः ।। कार्त्तिकेय उवाच ।। देवदेव जगन्नाथ सृष्टिस्थितिलयात्मक ।। त्वमेव परमात्मा च त्वङ्गतिः सर्वदेहि-नाम् ।। त्वं गतिस्सर्व्वलोकानान्दीनानञ्च त्वमेव हि त्वमेव जगदाधारस्त्वमेव विश्वकारणः ।। त्वमेव पूज्यस्सर्व्वेषान्त्वदन्यो नास्ति मे गतिः ।। किंगुह्यम्परमं ल्लोके किमेकं सर्व्वसिद्धिदम् ।। किमेकम्परमं श्रेष्ठङ्कि य्योगं स्वर्गमोक्षदम् ।। विना तीर्त्थेन तपसा विना दानैर्व्विना मखैः ।। बिना लयेन ध्यानेन नरः सिद्धिम-वाप्नुयात् ।। कस्मादुत्पद्यते सृष्टिः कस्मिंश्च प्रलयो भवेत् ।। कस्मादुत्तीर्य्यते

देव संसाराण्णवसङ्कटात् ।। तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महेश्वर ।। ईश्वर उवाच ।। साधु साधु त्वया पृष्टम्पार्व्वतीप्रियनन्दन ।। अस्ति गुह्यतमम्पुत्र कथयिष्याम्यसंशयम् ।। सत्त्वं रजस्तमश्चैव ये चान्ये महादादयः ।। ये चान्ये बहवो भूताः सर्व्वंप्रकृतिसम्भवाः ।। सैव देवी पराशक्तिर्म्महात्रिपुरसुन्दरी ।। सैव प्रसूयते विश्वं व्विश्वं सैव प्रयास्यति ।। सैव संहरते विश्वञ्जगदेतच्चराचरम् ।। आधारस्सर्व्वभूतानां सैव रोगार्त्तिहारिणी ।। इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिर्ब्ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।। त्रिधा शक्ति स्वरूपेण सृष्टिस्थितिविनाशिनी ।। सृज्यते ब्रह्मरूपेण विष्णुरूपेण पाल्यते ।। संहरेद्रुद्ररूपेण जगदेतच्चराचरम् ।। यस्या योनौ जगत्सर्व्वमद्यापि परिवर्त्तते ।। यस्याम्प्रलीयते चान्ते यस्याञ्च जायते पुनः ।। यां समाराध्य त्रैलोक्यं सम्प्राप्तम्पदमुत्तमम् ।। तस्या नाम सहस्रन्तु कथयामि श्रृणुष्व तत् । ॐ अस्य श्री महात्रिपुरसुन्दरीसहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीभगवान्दक्षिणामूर्त्तिऋषिः जगतीच्छन्दः समस्तप्रकटगुप्तसम्प्रदायकुलकौलोत्तीर्णनिर्ग्गर्भरहस्याचिन्त्यप्रभावती देवता ॐ बीजम् ।। मायाशक्तिः कामराजबीजकीलकम् जीवो बीजम् सुषुम्ना नाडी सरस्वती शक्तिर्धर्म्मार्त्थकाममोक्षार्त्थे जपे विनियोगः ।। आधारे तरुणार्क्कबिम्ब रुचिरं हेमप्रभम्वाग्भवम्बीजम्मन्मथमिन्द्रगोपसदृशं हृत्पङ्कजे संस्थितम् ।। विष्णुब्रह्मपदस्थशक्तिकलितं सोमप्रभाभासुरंय्ये ध्यायन्ति पदत्रयन्तव शिवे ते यान्ति सौख्यम्पदम् ।। कल्याणी कमला काली कराली कामरूपिणी ।। कामाख्या कामदा काम्या कामना कामचारिणी ।। कालरात्रिर्म्महारात्रिः कपाणी कालरूपिणी ।। कौमारी करुणामुक्तिः कलिकल्मषनाशिनी ।। कात्यायनी कराधारा कौमुदी कमलप्रिया ।। कीर्त्तिदा बुद्धिदा मेधा नीतिज्ञा नीतिवत्सला ।। माहेश्वरी महामाया महातेजा महेश्वरी ।। महाजिह्वा महाघोरा महादंष्ट्रा महाभुजा ।। महामोहान्धकारघ्नी महामोक्षप्रदायिनी ।। महादारिद्र्यनाशा च महाशत्रुविमर्दिनी ।। महामाया महावीर्य्या महापातकनाशिनी ।। महामखा मन्त्रमयी मणिपूरकवासिनी ।। मानसी मानदा मान्या मनश्चक्षू रणेचरा ।। गणमाता च गायत्री गणगन्धर्व्वसेविता ।। गिरिजा गिरिशा साध्वी गिरिस्था गिरिवल्लभा ।। चण्डेश्वरी चण्डरूपा प्रचण्डा चण्डमालिनी ।। चर्व्विका चर्चिकाकारा चण्डिका चारुरूपिणी ।। यज्ञेश्वरी यज्ञरूपा जपयज्ञपरायणा ।। यज्ञमाता यज्ञभोक्त्री यज्ञेशी यज्ञसम्भवा ।। सिद्धयज्ञक्रियासिद्धिर्य्यज्ञाङ्गी यज्ञरक्षिका ।। यज्ञक्रिया यज्ञरूपा यज्ञाङ्गी यज्ञरक्षिका ।। यज्ञक्रिया च यज्ञा च यज्ञायज्ञक्रियालया ।। जालन्धरी जगन्माता जातवेदा जगत्प्रिया ।। जितेन्द्रिया जितक्रोधा जननी जन्मदायिनी ।। गङ्गा गोदावरी चैव गौमती च शतद्रुका ।। घर्घरा वेदगर्ब्भा च रेचिका समवासिनी ।। सिन्धुर्म्मन्दाकिनी क्षिप्रा यमुना च सरस्वती ।। भद्रा रागविपाशा च गण्डकी विन्ध्यवासिनी ।। नर्मदा सिन्धु कावेरी वेत्रवत्या सुकौशिकी ।। महेन्द्रतनया चैव अहल्या चर्म्मकावती ।। अयोध्या

मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका ।। पुरी द्वारावती तीर्था महाकिल्बिष-नाशिनी ।। पद्मिनी पद्ममध्यस्था पद्मकिञ्चल्कवासिनी ।। पद्मवक्त्रा चकोराक्षी पद्मस्था पद्मसम्भवा ह्रींङ्कारी कुण्डलीधारी हृत्पद्मस्था सुलोचना ।। श्रीङ्करी-भूषणा लक्ष्मीः क्लीङ्कारी क्लेशनाशिनी ।। हरिवक्त्रोद्भवा शान्ता हरिवक्त्रकृता-लया ।। हरिवक्त्रोद्भवा शान्ता हरिवक्षस्स्थलस्थिता ।। वैष्णवी विष्णुरूपा च विष्णुमातृस्वरूपिणी ।। विष्णुमाया विशालाक्षी विशालनयनोज्ज्वला ।। विश्वेश्वरी च विश्वात्मा विश्वेशी विश्वरूपिणी ।। विश्वेश्वरी शिवाराध्या शिवनाथा शिव-प्रिया ।। शिवमाता शिवाख्या च शिवदा शिवरूपिणी ।। भवेश्वरी भवाराध्या भवेशीभवनायिका ।। भवमाता भवगम्या भवकण्टकनाशिनी ।। भवप्रिया भवानन्दा भवानी भवमोहिनी ।। गायत्री चैव सावित्री ब्रह्माणी ब्रह्मरूपिणी । ब्रह्मेशी ब्रह्मदा ब्रह्मा ब्रह्माणी ब्रह्मवादिनी ।। दुर्गस्था दुर्गरूपा च दुर्गा दुर्गा-र्त्तिनाशिनी ।। सुगमा दुर्गमा दान्ता दया दोग्ध्री दुरापहा ।। दुरितघ्नी दुराध्यक्षा दुरा दुष्कृतनाशिनी ।। पञ्चास्या पञ्चमी पूर्णा पूर्णपीठनिवासिनी ।। सत्त्वस्था सत्त्वरूपा च सत्त्वस्था सत्त्वसम्भवा ।। रजस्स्था च रजोगुणसमुद्भवा ।। तमस्स्था च तमोरूपा तामसी तामसप्रिया ।। तमोगुणसमुद्भूता सात्त्विकी राजसी कला ।। काष्ठा मुहूर्ता निमिषा अनिमेषा ततः परम् । अर्द्धमासा च मासा च सँव्वत्सर-स्वरूपिणी ।। योगस्था योगरूपा च कल्पस्था कल्परूपिणी ।। नानारत्नविचित्राङ्गी नानाभरणमण्डिता ।। विश्वात्मिका विश्वमाता विश्वपाशविनाशिनी ।। विश्वास-कारिणी विश्वा विश्वशक्तिर्विचारणा ।। जवाकुसुमसङ्काशा दाडिमीकुसुमोपमा ।। चतुरंगी चतुर्व्वाहुश्चतुराचारवासिनी ।। सर्वेशी सर्व्वदा सर्व्वा सर्व्वदा सर्व्वदायिनी ।। माहेश्वरी च सर्व्वाद्या शर्व्वाणी सर्वमङ्गला ।। नलिनी नन्दिनी नन्दा आनन्दा नन्दवर्द्धिनी ।। व्यापिनी सर्व्वभूतेषु भवभारविनाशिनी ।। सर्व्वश्रृङ्गारवेषाढ्या पाशांकुशकरोद्यता ।। सूर्यकोटिसहस्राभा चन्द्रकोटिनिभानना ।। गणेशकोटिलावण्या विष्णुकोट्यरिमर्दिनी ।। दावाग्निकोटिनलिनी रुद्रकोट्युग्ररूपिणी ।। समुद्रकोटि-गम्भीरा वायुकोटिमहाबला ।। आकाशकोटिविस्तारा यमकोटिभयङ्करी ।। मेरुकोटि समुच्छ्राया गणकोटि समृद्धिदा । निष्कस्तोका निराधारा निर्गुणा गुणवर्ज्जिता ।। अशोका शोकरहिता तापत्रयविवर्ज्जिता ।। वसिष्ठा विश्वजननी विश्वाख्या विश्व-वर्द्धिनी ।। चित्रा विचित्रचित्राङ्गी हेतुगर्भा कुलेश्वरी ।। इच्छाशक्तिर्ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः शुचिस्मिता ।। शुचिः स्मृतिमयी सत्या श्रुतिरूपा श्रुतिप्रिया ।। महा-सत्त्वमयी सत्त्वा पञ्चतत्त्वोपरिस्थिता ।। पार्व्वती हिमवत्पुत्री पारस्था पार-रूपिणी ।। जयन्ती भद्रकाली च अहल्या कुलनायिका ।। भूतधात्री च भूतेशी भूतस्था भूतभावना ।। महाकुण्डलिनी शक्तिर्म्महाविभववर्द्धिनी ।। हंसाक्षी हंसरूपा च हंसस्था हंसरूपिणी ।। सोमसूर्य्याग्निमध्यस्था मणिमण्डलवासिनी ।। द्वादशार-

सरोजस्था सूर्य्यमण्डलवासिनी ।। अकलङ्का शशाङ्काभा षोडसारनिवासिनी ।। डांकिनी राकिनी चैव लाकिनी काकिनी तथा ।। शाकिनी हाकिनी चैव षट्चक्रेषु निवासिनी ।। सृष्टि स्थितिविनाशाय सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।। श्रीकण्ठप्रिय-हृत्कण्ठा नन्दाख्या त्रिन्दुमालिनी ।। चतुष्षष्टिकलाधारा देहदण्डसमाश्रिता ।। माया काली धृतिर्म्मेधा क्षुधा तुष्टिर्म्महाद्युतिः ।। हिङ्गला मङ्गला सीता सुषुम्ना-मध्यगामिनी ।। परघोरा करालाक्षी विजया जयदायिनी ।। हृत्पद्मनिलया भीम-महाभैरवनादिनी ।। आकाशलिङ्गसम्भूता भुवनोद्यानवासिनी ।। महत्सूक्ष्मा च कङ्काली भीमरूपा महाबला ।। मेनकागर्भसम्भूता तप्तकाञ्चनसन्निभा ।। अन्त-रस्था कूटबीजा त्रिकूटाचलवासिनी ।। वर्णाख्या वर्णरहिता पञ्चाशद्वर्ण-भेदिनी ।। विद्याधरी लोकधात्री अप्सरा अप्सर ऽ प्रिया ।। दीक्षा दाक्षायणी दक्षा दक्षयज्ञविनाशिनी ।। यश ऽ पूर्ण्णा यशोदा च यशोदागर्भसम्भवा ।। देवकी देव-माता च राधिका कृष्णवल्लभा ।। अरुन्धती शचीन्द्राणी गान्धारी गन्धमालिनी ।। ध्यानातीता ध्यानगम्या ध्यानज्ञा ध्यानधारिणी ।। लम्बोदरी च लम्बोष्ठी जाम्ब-वन्ती जलोदरी ।। महोदरी मुक्तकेशी मुक्तकामार्त्थसिद्धिदा ।। तपस्विनी तपोनिष्ठा सुपर्ण्णा धर्म्मवासिनी ।। बाणचापधरा धीरा पाञ्चाली पञ्चमप्रिया ।। गुह्याङ्गी च सुभीमा च गुह्यतत्त्वा निरञ्जना ।। अशरीरा शरीरस्था संसारार्ण्णवतारिणी ।। अमृता निष्कला भद्रा सकला कृष्णपिङ्गला ।। चक्रप्रिया च चक्राह्वा पञ्चचक्रादि-दारिणी ।। पद्मरागप्रतीकाशा निर्म्मलाकाशसन्निभा ।। अधःस्था ऊद्ध्र्वरूपा च ऊद्ध्र्वपद्मनिवासिनी ।। कार्य्यकारणकर्त्तृत्वे शश्वद्रूपेषु संस्थिता ।। रसज्ञारस मध्यस्था गन्धस्था गन्धरूपिणी ।। परब्रह्मस्वरूपा च परब्रह्मनिवासिनी ।। शब्द-ब्रह्मस्वरूपा च शब्दस्था शब्दवर्ज्जिता ।। सिद्धिर्ब्बुद्धि ऽ पराबुद्धिः सन्दीप्ति-र्म्मध्यसंस्थिता ।। स्वगुह्याशाम्भवी-शक्तिस्तत्त्वस्था तत्त्वरूपिणी ।। शाश्वती भूत-माता च महाभूताधिपप्रिया ।। शुचिप्रेता धर्म्मसिद्धिर्धर्म्मवृद्धि ऽ पराजिता ।। कामसन्दीपिनी कामा सदा कौतूहलप्रिया ।। जटाजूटधरा मुक्ता सूक्ष्मा शक्ति विभू-षणा ।। द्वीपिचर्म्मपरीधाना चीरवल्कलधारिणी ।। त्रिशूलडमरूधरा नरमाला-विभूषणा ।। अत्युग्ररूपिणी चोग्रा कल्पान्तदहनोपमा ।। त्रैलोक्यसाधिनी साध्या सिद्धिसाधकवत्सला ।। सर्व्वविद्यामयी सारा चासुराणां व्विनाशिनी ।। दमनी दामनी दान्ता दया दोग्ध्री दुरापहा ।। अग्निजिह्वोपमा घोरा घोरघोर तरानना ।। नारायणी नारसिंही नृसिंह हृदयेस्थिता ।। योगेश्वरी योगरूपा योगमाता च योगिनी ।। खेचरी खेचरी खेला निर्व्वाणपदसंश्रया ।। नागिनी नागकन्या च सुवेशा नागनायिका ।। विषज्वालावती दीप्ता कलाशतविभूषणा ।। तीव्रवक्त्रा महावक्त्रा नागकोटित्वधारिणी ।। महासत्त्वा च धर्म्मज्ञा धर्म्मातिसुखदायिनी ।। कृष्णमूर्द्धा घोरमूर्द्धा वरानना ।। सर्व्वेन्द्रियमनोन्मत्ता सर्व्वेन्द्रियमनोमयी ।। सर्व्वसङ्ग्राम-

जयदा सर्व्वप्रहरणोद्यता ।। सर्व्वपीडोपशमनी सर्व्वारिष्टनिवारिणी ।। सर्व्वैश्वर्य्य-समुत्पन्ना सर्व्वग्रहविनाशिनी ।। मातङ्गी मत्तमातङ्गी मातङ्गीप्रियमण्डला ।। अमृतोदधिमध्यस्था कटिसूत्रैरलङ्कृता ।। अमृतोदधिमध्यस्था प्रवालवसनाम्बुजा ।। मणिमण्डलमध्यस्था ईषत्प्रहसितानना ।। कुमुदा ललिता लोला लाक्षा लोहित लोचना ।। दिग्वासा देवदूती च देवदेवाधिदेवता ।। सिंहोपरिसमारूढा हिमाचल निवासिनी ।। अट्टाट्टहासिनी घोरा घोरदैत्यविनाशिनी ।। अत्युग्ररक्तवस्त्राभा नागकेयूरमण्डिता ।। मुक्ताहारलतोपेता तुङ्गपीनपयोधरा ।। रक्तोत्पलदलाकारा मदाघूर्णितलोचना ।। समस्तदेवतामूर्तिः सुरारिक्षयकारिणी ।। खड्गिनी शूलहस्ता च चक्रिणी चक्रमालिनी ।। शङ्खिनीचापिनीवाणी वज्रिणी वज्रदण्डिनी ।। आनन्दोदधिमध्यस्था कटिसूत्रैरलङ्कृता ।। नानाभरणदीप्ताङ्गा नानामणिविभू-षिता ।। जगदानन्दसम्भूता चिन्तामणिगुणान्विता ।। त्रैलोक्यनमिता तुर्य्या चिन्मया-नन्दरूपिणी ।। त्रैलोक्यनन्दिनी देवी दुःखदुस्स्वप्ननाशिनी ।। घोराग्निदाहशमनी राज्यदेवार्त्थसाधिनी ।। महापराधराशिघ्नी महाचौरभयापहा ।। रागादिदोषरहिता जरामरणवर्जिता ।। चन्द्रमण्डलमध्यस्था पीयूषार्णवसम्भवा ।। सर्व्वदेवैः स्तुता देवी सर्व्वसिद्धैर्न्नमस्कृता ।। अचिन्त्यशक्तिरूपा च मणिमन्त्रमहौषधी ।। अस्ति-स्वस्तिमयी बाला मलयाचलवासिनी ।। धात्री विधात्री संहारी रतिज्ञा रति-दायिनी ।। रुद्राणी रुद्ररूपा च रुद्ररौद्रार्त्तिनाशिनी ।। सर्व्वज्ञा चैव धर्म्मज्ञा रसज्ञा दीनवत्सला ।। अनाहता त्रिनयना निर्भ्भारा निर्व्वृतिः परा ।। पराघोरा करालाक्षी सुमती श्रेष्ठदायिनी ।। मन्त्रालिका मन्त्रगम्या मन्त्रमाला सुमन्त्रिणी ।। श्रद्धानन्दा महाभद्रा निर्द्वन्द्वा निर्गुणात्मिका ।। धरणी धारिणी पृथ्वी धरा धात्री वसुन्धरा ।। मेरुमन्दरमध्यस्था स्थितिः शंकरवल्लभा ।। श्रीमती श्रीमयी श्रेष्ठा श्रीकरी भाव-भाविनी ।। श्रीदा श्रीमा श्रीनिवासा श्रीमती श्रीमताङ्गतिः ।। उमा सारङ्गिणी कृष्णा कुटिला कुटिलालका ।। त्रिलोचना त्रिलोकात्मा पुण्यपुण्या प्रकीर्त्तिता ।। अमृता सत्यसंकल्पा सासत्या ग्रन्थिभेदिनी ।। परेशी परमा साध्या पराविद्या परात्परा ।। सुन्दराङ्गी सुवर्णाभा सुरासुरनमस्कृता ।। प्रजा प्रजावती धन्या धन-धान्यसमृद्धिदा ।। ईशानी भुवनेशानी भवानी भुवनेश्वरी ।। अनन्तानन्तमहिता जगत्सारा जगद्भवा ।। अचिन्त्यात्मा चिन्त्यशक्तिश्चिन्त्याचिन्त्यस्वरूपिणी ।। ज्ञानगम्या ज्ञानमूर्त्तिर्ज्ज्ञानिनी ज्ञानशालिनी ।। असिता घोररूपा च सुधाधारा सुधावहा ।। भास्करी भास्वती भीतिभस्विदक्षानुशायिनी ।। अनसूया क्षमा लज्जा दुर्ल्लभा भरणात्मिका ।। विश्वघ्नी विश्ववीरा च विश्वघ्नी विश्वसंस्थिता ।। शीलस्था शीलरूपा च शीलाशीलप्रदायिनी ।। बोधनी बोधकुशला रोधनी बोधनी तथा ।। विद्योतिनी विचित्रात्मा विद्युत्पटलसन्निभा ।। विश्वयोनिर्म्महायोनिः कर्म्मयोनिः प्रियात्मिका ।। रोहिणी रोगशमनी महारोगज्वरापहा ।। रसदा

पुष्टिदा पुष्टिर्म्मानदा मानवप्रिया ।। कृष्णाङ्गवाहिनी कृष्णा कृष्णा कृष्णसहोदरी ।। शाम्भवी शम्भुरूपा च शम्भुस्था शम्भुसम्भवा ।। विश्वोदरी योगमाता योगमुद्राघ्न योगिनी ।। वागीश्वरी योगनिद्रा योगिनीकोटिसेविता ।। कौलिका मन्दकन्या च शृङ्गारपीठवासिनी ।। क्षेमङ्करी सर्व्वरूपा दिव्यरूपा दिगम्बरी ।। धूम्रवक्त्रा धूम्रनेत्रा धूम्रकेशी च धूसरा ।। पिनाकी रुद्रवेताली महावेतालरूपिणी ।। तपिनी तापिनी दीक्षा विष्णु विद्यात्मनाश्रिता ।। मन्थरा जठरा तीव्रा अग्निजिह्वा भयापहा ।। पशुघ्नी पशुरूपा च पशुहा पशुवाहिनी ।। पिता माता च धीरा च पशुपाशविनाशिनी ।। चन्द्रप्रभा चन्द्ररेखा चन्द्रकान्तिविभूषिणी ।। कुंकुमांकित सर्व्वाङ्गी सुधासद्गुरुलोचना ।। शुक्लाम्बरधरा देवी वीणापुस्तकधारिणी ।। ऐरावत पद्मधारा श्वेतपद्मासनस्थिता ।। रक्ताम्बरधरा देवी रक्तपद्मविलोचना ।। दुस्तरा तारिणो तारा तरुणीताररूपिणी ।। सुधाधारा च धर्म्मज्ञा धर्म्मसङ्गोपदेशिनी ।। भगेश्वरी भगाराध्या भगिनी भगनायिका ।। भगविम्बाभगक्लिन्ना भगयोनिर्भगप्रदा ।। भगेश्वरी भगाराध्या भगिनी भगनायका ।। भगेशी भगरूपा च भगगुह्या भगावहा ।। भगोदरी भगानन्दा भगस्था भगशालिनी ।। सर्व्वसङ्गोभिणी शक्तिस्सर्व्वविद्राविणी तथा ।। मालिनी माधवी माध्वी मधुरूपा महोत्कटा ।। भरुण्डचन्द्रिका ज्योत्स्ना विश्वचक्षुस्तमोपहा ।। सुप्रसन्ना महादूती यमदूती भयङ्करी ।। उन्मादिनी महारूपा दिव्यरूपा सुरार्च्चिता ।। चैतन्यरूपिणी नित्या क्लिन्ना काममदोद्धता ।। मदिरानन्दकैवल्या मदिराक्षी मदालसा ।। सिद्धेश्वरी सिद्धविद्या सिद्धाद्या सिद्धसम्भवा ।। सिद्धर्द्धिः सिद्धमाता च सिद्धिस्सर्व्वार्त्थसिद्धिदा ।। मनोमयी गुणातीता परञ्ज्योतिः स्वरूपिणी ।। परेशी परगा पारा परासिद्धिः परागतिः ।। विमला मोहिनी आद्या मधुपानपरायणा ।। वेदवेदाङ्गजननी सर्व्वशास्त्रविशारदा ।। सर्व्वदेवमयी विद्या सर्व्वशास्त्रमयी तथा ।। सर्व्वज्ञानमयी देवी सर्व्वधर्म्ममयीश्वरी ।। सर्व्वयज्ञमयी यज्ञा सर्व्वमन्त्राधिकारिणी ।। सर्व्वसम्पत्प्रतिष्ठात्री सर्व्वविद्राविणी परा ।। सर्व्वसङ्क्षोभिणी देवी सर्व्वमङ्गलकारिणी ।। सर्व्वकामप्रदा देवी सर्व्वदुःखविमोचिनी । सर्व्वमृत्युप्रशमनी सर्व्वविघ्नविनाशिनी ।। सर्व्वाङ्गसुन्दरी माता सर्व्वसौभाग्यदायिनी ।। सर्व्वज्ञा सर्व्वशक्तिश्च सर्वैश्वर्य्यफलप्रदा ।। सर्व्वज्ञानमयी देवी सर्व्वव्याधिविनाशिनी ।। सर्व्वाधारस्वरूपा च सर्व्वपापहरा तथा ।। सर्वानन्दमयी देवी सर्व्वेक्षायाः स्वरूपिणी ।। सर्व्वलक्ष्मीमयी विद्या सर्व्वेप्सितफलप्रदा ।। सर्व्वारिष्टप्रशमनी परमानन्ददायिनी ।। त्रिकोणनिलया त्रिस्था त्रिमात्रा त्रितनुस्थिता ।। त्रिवेणी त्रिपथा त्रिस्था त्रिमूर्त्तिस्त्रिपुरेश्वरी ।। त्रिधाम्नी त्रिदशाध्यक्षा त्रिवित्त्रिपुरवासिनी ।। त्रयीविद्या च त्रिशिरा त्रैलोक्या च त्रिपुष्करा ।। त्रिकोटरस्था त्रिविधा त्रिपुरा त्रिपुरात्मिका ।। त्रिपुराश्री त्रिजननी त्रिपुरात्रिपुरसुन्दरी ।। इदन्त्रिपुरसुन्दर्य्याः स्तोत्रन्नाम सहस्रकम् ।। गुह्याद्गुह्यतरम्पुत्र

तव प्रीत्यै प्रकीत्तितम् ।। गोपनीयम्प्रयत्नेन पठनीयम्प्रयत्नतः ।। नात ऽ परतरम्पुण्यन्नात ऽ परतरन्तपः ।। नात ऽ परतरं स्तोत्रन्नात ऽ परतरा गतिः ।। स्तोत्रं सहस्रनामाख्यं मम वक्त्राद्विनिर्गतम् ।। य ऽ पठेत्प्रयतो भक्त्या शृणुयाद्वा समाहितः ।। मोक्षार्त्थी लभते मोक्षं स्वर्गार्थी स्वर्गमाप्नुयात् ।। कामांश्च प्राप्नुयात्कामी धनार्त्थी च लभेद्धनम् ।। विद्यार्त्थी लभते विद्या य्यशोर्त्थी लभते यशः ।। कन्यार्त्थी लभते कन्यां सुतार्त्थी लभते सुतम् ।। गुर्व्विणी जनयेत्पुत्रङ्कन्या विन्दति सत्पतिम् ।। मूर्क्खोऽपि लभते शास्त्रं हीनोऽपि लभते गतिम् ।। सङ्क्रान्त्या व्वार्क्कामावस्यामष्टम्याञ्च विशेषतः ।। पौर्ण्णमास्याञ्चतुर्द्दश्यान्नवम्याम्भौमवासरे ।। पठेद्वा पाठयेद्वापि शृणुयाद्वा समाहितः ।। स मुक्तस्सर्वपापेभ्य ऽ कामेश्वरसमो भवेत् ।। लक्ष्मी वान्धर्मवांश्चैव वल्लभस्सर्व्वयोषिताम् ।। तस्य वश्यम्भवेदाशु त्रैलोक्यं सच राचरम् ।। रुद्रन्दृष्ट्वा यथा देवा विष्णुन्दृष्ट्वा च दानवाः ।। यथाहिर्ग्गरुडन्दृष्ट्वा सिंहन्दृष्ट्वा यथा गजाः ।। कीटवत्प्रपलायन्ते तस्य वक्त्रावलोकनात् ।। अग्निचौरभयन्तस्य कदाचिन्नैव सम्भवेत् ।। पातका विविधाः शान्तिर्म्मेरुपर्व्वतसन्निभाः ।। यस्मात्तच्छृणुयाद्विघ्नांस्तृणं व्वह्निहुतं य्यथा ।। एकदा पठनादेव सर्व्वपापक्षयो भवेत् ।। दशधा पठनादेव वाचा सिद्धि ऽ प्रजायते ।। शतधा पठनाद्वापि खेचरो जायते नरः ।। सहस्रदशसङ्ख्यातँ य्य ऽ पठेद्भक्तिमानसः ।। मातास्य जगतान्धात्री प्रत्यक्षा भवति ध्रुवम् ।। लक्षपूर्ण्णे यथा पुत्र स्तोत्रराजम्पठेत्सुधीः ।। भवपाशविनिर्म्मुक्तो मम तुल्यो न संशयः ।। सर्वतीर्त्थेषु यत्पुण्यं सकृज्जप्त्वा लभेन्नरः ।। सर्व्ववेदेषु यत्प्रोक्तन्तत्फलम्परिकीर्त्तितम् ।। भूत्वा च बलवान्पुत्र धनवान्सर्व्वसम्पदः ।। देहान्ते परमं स्थानं य्युत्सुरैरपि दुर्ल्लभम् ।। स यास्यति न सन्देहः स्तवराजस्य कीर्त्तनात् ।।

।। इति श्री वामकेश्वर तन्त्रे हर कुमार सम्वादे महात्रिपुरसुन्दर्याः षोडश्याः सहस्रनामस्तोत्रम् समाप्तम् ।।

तन्त्र राजोक्तं नित्याकवचम्

समस्तापद्विमुक्त्यर्थं सर्वसम्पदवाप्तये ।
भूतप्रेतपिशाचादिपीडाशान्त्यै सुखाप्तये ।।
समस्तरोगनाशाय समरे विजयाय च ।
चौरसिंहद्वीपिगजगवयादि - भयानके ।।
अरण्ये शैलगहने मार्गे दुर्भिक्षके तथा ।
सलिलाग्निमरुत्पीडास्वब्धौ पोतादिसङ्कटे ।।
प्रजप्य नित्याकवचं सकृत्सर्वं तरत्यसौ ।
सुखी जीवति निर्द्वन्द्वो निःसपत्नो जितेन्द्रियः ।।

श्रृणु तत्कवच देवि ! वक्ष्ये तव तदात्मकम् ।
येनाहमपि युद्धेषु देवासुरजयी सदा ।।
सर्वतः सर्वदाऽऽत्मानं ललिता पातु सर्वदा ।
कामेशी पुरतः पातु भगमाला त्वनन्तरम् ।।
दिशं पातु तथा दक्षः पार्श्वं मे पातु सर्वदा ।
नित्यक्लिन्ना तु भेरुण्डा दिशं पातु सदामम ।।
तथैव पश्चिम भागं रक्षेत्सा वह्निवासिनी ।
महावज्रेश्वरी रक्षेदनन्तरदिशं सदा ।।
वामपार्श्वं सदा पातु दूती मे त्वरिता ततः ।
पालयेत्तु दिशं वात्यां रक्षेन्मां कुलसुन्दरी ।।
नित्या मामूर्ध्वतः पातु साऽधो मे पातु सर्वदा ।
नित्या नीलपताकाख्या विजया सर्वतश्च माम् ।।
करोतु मे मङ्गलानि सर्वदा सर्वमङ्गला ।
देहेन्द्रियमनः प्राणान् ज्वालामालिनिविग्रहा ।।
पालयेदनिशं चित्रा चित्तं मे पातु सर्वदा ।।
कामात् क्रोधात् तथा लोभान्मोहान्मानान्मदादपि ।।
पापान्मत्सरतः शोकात् संशयात्सर्वतः सदा ।
स्तैमित्याच्च समुद्योगादशुभेषु तु कर्मतु ।।
असत्यात्क्रूरचिन्तातो हिंसातश्चौरतस्तथा ।
रक्षन्तु मां सर्वदा ताः कुर्वन्त्विच्छां शुभेषु च ।।
नित्याः षोडशमां पान्तु गजारूढाः स्वशक्तिभिः ।
तथा हयासमारूढाः पान्तु मां सर्वतः सदा ।।
सिंहारूढास्तथा पान्तु मां तरक्षुगता अपि ।
रथारूढाश्च मां पान्तु सर्वतः सर्वदा रणे ।।
ताक्ष्यारूढाश्च मां पान्तु तथा व्योमगतास्तु ताः ।
भूगताः सर्वदा पान्तु मां सर्वत्र च सर्वदा ।।
भूत-प्रेतपिशाचापस्मारकृत्यादिकान् गदान् ।
द्रावयन्तु स्वशक्तीनां भीषणैरायुधैर्मम ।।
गजाश्वद्वीपिपञ्चास्यताक्ष्यारूढाखिलायुधाः ।
असंख्या शक्तयो देव्याः पान्तु मां सर्वतः सदा ।।
सायं प्रातर्जपन्नित्याकवचं सर्वरत्नकम् ।
कदाचिन्नाशुभं पश्येन्न श्रृणोति च तत्समः ।।

।। इति तन्त्रराजोक्तं नित्याकवचं समाप्तम् ।।

श्रीसर्वसिद्धिकरश्चण्डीचरित्रस्तवः

यत्कर्मधर्मनिलयं प्रवदन्ति तज्ज्ञा यज्ञादिपुण्यमखिलं सकलं त्वयैव ।
त्वं चेतना यत इति प्रविचार्य चित्ते नित्यं त्वदीयचरणौ शरणम्प्रपद्ये ॥१॥
पाथोधिनाथतनयापतिरेष शेषपर्यङ्कलालितवपुः पुरुषः पुराणः ।
त्वन्मोहपाशविवशो जगदम्ब ! सोऽपि व्याघूर्णमाननयनः शकनञ्चकार ॥२॥
तत्कौतुकं जननि यस्य जनार्दनस्य कर्णप्रसूतमलजौमधुकैटभाख्यो ।
तस्यापि यौ न भवतः सुलभौनिहन्तुंत्वन्माययाकवलितौ विलयं गतौ तौ ॥३॥
यन्माहिषं वपुरपूर्वबलोपपन्नं यन्नाकनायकपराक्रमजित्वरञ्च ।
यल्लोकशोकजननव्रतबद्धहार्दं तल्लीलयैव दलितं गिरिजे भवत्या ॥४॥
यो धूम्रलोचन इति प्रथितः पृथिव्यां भस्मीवभूव स रणे तव हुङ्कृतेन ।
सर्वासुरक्षयकरे गिरिराजकन्ये मन्ये स्वमन्युदहनेकृत एव होमः ॥५॥
केषामपि त्रिदशनायकपूर्वकाणां हन्तुं न जातु सुलभाविति चण्डमुण्डौ ।
तौ दुर्मदौ सपदि चाम्बरतुल्यभूर्तेर्मातस्तवासिकुलिशात्पतितौ विशीर्णौ ॥६॥
दौत्येन ते शिव इति प्रथितः प्रभावो देवोऽपि दानवपतेः सदनं जगाम ।
भूयोऽपि तस्य चरितं प्रथयाञ्चकार सा त्वं प्रसीद शिवदूति विजृम्भितेन ॥७॥
चित्रं तदेतदमरैरपि ये न जेयाः शस्त्राभिघातपतिताद्रुधिरादपर्णे ।
भूमौ वभूवुरमिताः प्रतिरक्तबीजास्तेऽपि त्वयैव गगने गिलिताः समस्ताः ॥८॥
आश्चर्यमेतदतुलं यदभूत्सुरारी त्रैलोक्यवैभवविलुण्ठनहृष्टपाणी ।
शस्त्रैर्निहत्य भुवि शुम्भनिशुम्भसञ्ज्ञौनीतौ त्वया जननितावपिनाकलोकम् ॥९॥
त्वत्तेजसि प्रलयकालहुताशनेऽस्मिं स्तस्मिन्प्रयान्ति विलयं भुवनानि सद्यः ।
तस्मिन्निपत्य शलभा इव दानवेन्द्रा भस्मीभवन्ति हि भवानि किमत्र चित्रम् ॥१०॥
तत्किं गृणामि भवतीं भवतीव्रतापनिर्वापणप्रणयिनीं प्रणमज्जनेषु ।
तत्किं गृणामि भवतीं भवतीव्रतापसम्वर्धनप्रणयिनीं विपदि स्थितेषु ॥११॥
वामे करे तदितरे च तथोपरिष्टात् पात्रं सुधारसयुतं वरमातुलुङ्गम् ।
खेटं गदां च दधतीं भवतीं भवानि ध्यायन्ति येऽरुणनिभांकृतिनस्त एव ॥१२॥
यद्वारुणात्परमिदं यदि मानवस्ते बीजं स्मरेदनुदिनं दहनाधिरूढम् ।
मायाङ्कितं तिलकितं तरुणेन्दुबिन्दुनातौ रमन्दमिह राज्यमसौ भुनक्ति ॥१३॥
आवाहनं यजनवर्णनमग्निहोत्रं कर्मार्पणं तव विसर्जनमत्र देवि ।
मोहान्मया कृतमिदं सकलापराधं मातःक्षमस्व वरदे वहिरन्तरस्थे ॥१४॥
अन्तःस्थिताऽप्यखिलजन्तुषु जन्तुरूपा विद्योतसे बहिरिवाऽखिलविश्वरूपा ।
का भूरि शब्दरचना वचनाधिका सा दीनं जनं जननि ! मामव निष्प्रपञ्चम् ॥१५॥

एतत्पठेदनुदिनं दनुजान्तकारि चण्डीचरित्रमतुलं भुवि यस्त्रिकालम् ।
श्रीमान् सुखी स विजयी सुभगः कृती स्यात् त्यागी चिरन्तनवपुः कविचक्रवर्ती ।।१६।।
श्रीसिद्धनाथपरनामधेयः श्रीशम्भुनाथो भुवनैकनाथः ।
तस्य प्रसादात्सकलागमश्रीः पृथ्वीधरः स्तोत्रमिदं चकार ।।१७।।

।। श्री पृथ्वीधराचार्य विरचितं सर्वसिद्धिकरं चण्डोचरित्रस्तोत्रं समाप्तम् ।।

श्री ललिताचतुष्षष्ट्युपचार संग्रह

ॐ हृन्मध्यनिलये देवि ललिते परदेवते ।
चतुष्षष्ट्युपचारांस्ते भक्त्या मातः समर्पये ।।१।।
कामेशोत्सङ्गनिलये पाद्यं गृह्णीष्व सादरम् ।
भूषणानि समुत्तार्यं गन्धतैलं च तेऽर्पये ।।२।।
स्नानशालां प्रविश्याऽथ तत्रत्यमणिपीठके ।
उपविश्य सुखेन त्वं देहोद्वर्त्तनमाचर ।।३।।
उष्णोदकेन ललिते स्नापयाम्यथ भक्तितः ।
अभिषिञ्चामि पश्चात्त्वां सौवर्णकलशोदकैः ।।४।।
धौतवस्त्रप्रोञ्छनं चारक्तक्षौमाम्बरं तथा ।
कुचोत्तरीयमरुणमर्पयामि महेश्वरि ।।५।।
ततः प्रविश्य चालेपमण्डपं श्रीमहेश्वरि ।
उपविश्य च सौवर्णपीठे गन्धान् विलेपय ।।६।।
कालागुरुजधूपैश्च धूपये केशपाशकम् ।
अर्पयामि च मल्ल्यादिसर्वर्तुकुसुमस्रजः ।।७।।
भूषामण्डपमाविश्य स्थित्वा सौवर्णपीठके ।
माणिक्य मुकुटं मूर्ध्नि दयया स्थापयाऽम्बिके ।।८।।
शरत्पार्वणचन्द्रस्य शकलं तत्र शोभताम् ।
सिन्दूरेण च सीमन्तमलङ्कुरु दयानिधे ।।९।।
भाले च तिलकं न्यस्य नेत्रयोरञ्जनं शिवे ।
वालीयुगलमप्यम्ब भक्त्या ते विनिवेदये ।।१०।।
मणिकुण्डलमप्यम्ब नासाभरणमेव च ।
ताटङ्कयुगलं देवि यावकञ्चाधरेऽर्पये ।।११।।
आद्यभूषणसौवर्ण चिन्ताकपदकानि च ।
महापदक मुक्तावल्येकावल्यादिभूषणम् ।।१२।।
धन्नवीरं गृहाणाऽम्ब केयूरयुगलन्तथा ।
वलयावलिमंगुल्याभरणं ललिताम्बिके ।।१३।।

ओड्याणमथ कट्यन्ते कटिसूत्रञ्च सुन्दरि ।
सौभाग्याभरणं पादकटकं नूपुरद्वयम् ।।१४।।
अर्पयामि जगन्मातः पादयोश्चांगुलीयकम् ।
पाशं वामोर्ध्वहस्ते च दक्षहस्ते तथाङ्कुशम् ।।१५।।
अन्यस्मिन्वामहस्ते च तथा पुण्ड्रेक्षुचापकम् ।
पुष्पबाणांश्च दक्षाधः पाणौ धारय सुन्दरि ।।१६।।
अर्पयामि च माणिक्यपादुके पादयोः शिवे ।
आरोहावृतिदेवीभिश्चक्रं परशिवे मुदा ।।१७।।
समानवेशभूषाभिः साकं त्रिपुरसुन्दरि ।
तत्र कामेशवामाङ्कपर्यङ्कोपनिवेशिनीम् ।।१८।।
अमृतासवपानेन मुदितां त्वां सदा भजे ।
शुद्धेन गाङ्गतोयेन पुनराचमनं कुरु ।।१९।।
कर्पूरवीटिकामास्ये ततोऽम्ब विनिवेशय ।
आनन्दोल्लासहासेन विलसन्मुखपङ्कजाम् ।।२०।।
भक्तिमत्कल्पलतिकां कृती स्यां त्वां स्मरन् कदा ।
मङ्गलारार्तिकं छत्रं चामरं दर्पणं तथा ।।२१।।
तालवृन्तं गन्धपुष्पधूपदीपांश्चतेऽर्पये ।
श्री कामेश्वरि ! तप्तहाटककृतैः स्थालीसहस्रैर्भृतम् ।
दिव्यान्नं घृतसूपशाकभरितं चित्रान्नभेदैर्युतम् ।।
दुग्धान्नं मधुशर्करादधियुतं माणिक्यपात्रार्पितं ।
भाषापूपकपूरिकादिसहितं नैवेद्यमम्बाऽर्पये ।।२२।।
साग्रविंशतिपद्योक्तचतुष्षष्ट्युपचारतः ।
हृन्मध्यनिलया माता ललिता परितुष्यतु ।।२३।।

।। इति महायागक्रमोक्तं मानस पूजनम् ।।

श्रीमन्त्र-मातृका-पुष्पमाला

कल्लोलोल्लसितामृताब्धिलहरीमध्ये विराजन्मणि-
द्वीपे कल्पकवाटिकापरिवृते कादम्बवाट्युज्ज्वले ।
रत्नस्तम्भसहस्रनिर्मितसभामध्ये विमानोत्तमे
चिन्तारत्नविनिर्मितं जननि ते सिंहासनं भावये ।।१।।
एणाङ्कानलभानुमण्डललसच्छ्रीचक्रमध्ये स्थितां
बालार्कद्युतिभासुरां करतलैः पाशाङ्कुशौबिभ्रतीम ।

चापं बाणमपि प्रसन्नवदनां कौसुम्भवस्त्रान्वितां
तां त्वां चन्द्रकलावतंसमुकुटां चारुस्मितां भावये ॥२॥
ईशानादिपदं शिवैकफलकं रत्नासनं ते शुभं
पाद्यं कुंकुम चन्दनादिभरितैरर्घ्यं सरत्नाक्षतैः ।
शुद्धै राचमनीयकं तव जलैर्भक्त्या मया कल्पितं
कारुण्यामृतवारिधे तदखिलं सन्तुष्टये कल्पताम् ॥३॥
लक्ष्ये योगिजनस्य रक्षित जगज्जाले विशालेक्षणे
प्रालेयाम्बुपटीरकुंकुमलसत्कर्पूरमिश्रोदकैः ।
गोक्षीरैरपि नारिकेलसलिलैः शुद्धोदकैर्मन्त्रितैः
स्थानं देवि धिया मयैतदखिलं सन्तुष्टये कल्पताम् ॥४॥
ह्रींकाराङ्कितमन्त्रलक्षिततनो हेमाचलात्संचितैः
रत्नैरुज्ज्वलमुत्तरीयसहितं कौसुम्भवर्णांशुकम् ।
मुक्तासन्ततियज्ञसूत्रममलं सौवर्णतन्तूद्भवं
दत्तं देवि धिया मयैतदखिलं सन्तुष्टये कल्पताम् ॥५॥
हंसैरप्यतिलोभनीयगमने हारावलीमुज्ज्वलां
हिन्दोलद्युतिहीरपूरिततरे हेमाङ्गदेकंकणे ।
मञ्जीरौ मणिकुण्डले मुकुटमप्यर्धेन्दुचूडामणिं
नासामौक्तिकमङ्गुलीयकटकौ काञ्चीमपिस्वीकुरु ॥६॥
सर्वाङ्गे घनसारकुंकुमघनश्रीगन्धपङ्काङ्कितं
कस्तूरीतिलकं च भालफलके गोरोचनापत्रकम् ।
गण्डादर्शनमण्डले नयनयोर्दिव्याञ्जनं तेऽञ्चितं
कण्ठाब्जे मृगनाभिपंकममल त्वत्प्रीतये कल्पताम् ॥७॥
कल्हारोत्पलमल्लिकामरुवकैः सौवर्णपंकेरुहै-
र्जातीचम्पकमालतीबकुलकैर्मन्दारकुन्दादिभिः ।
केतक्या करवीरकैर्बहुविधैः क्लृप्ताः स्रजो मालिकाः
संकल्पेन समर्पयामि वरदे सन्तुष्टये गृह्यताम् ॥८॥
हन्तारं मदनस्य नन्दयसि यैरङ्गैरनङ्गोज्ज्वलै-
र्यैर्भृङ्गावलिनीलकुन्तलभरैर्बध्नासि तस्याशयम् ।
तानी मानी तवाम्ब कोमलतराव्यामोदलीलागृहा-
ण्यामोदायदशाङ्गगुग्गुलघृतैर्धूपैरहं धूपये ॥९॥
लक्ष्मीभुज्ज्वलयामि रत्ननिवहोद्भास्वत्तरे मन्दिरे
मालारूपविलम्बितैर्मणिमयस्तम्भेषु सम्भावितैः ।
चित्रैर्हाटकपुत्रिकाकरधृतैर्गव्यैर्घृतैर्वर्धितै-
र्दिव्यैर्दीपगणैर्धिया गिरिसुते सन्तुष्टये कल्पताम् ॥१०॥

ह्रींकारेश्वरितप्तहाटककृतैः स्थालीसहस्रैर्भृतं
दिव्यान्नं घृतसूपशाकभरितंचित्रान्नभेदं तथा।
दुग्धान्नं मधु शर्करादधियुतं माणिक्यपात्रे स्थितं
माषापूपसहस्रमम्ब सफलं नैवेद्यमावेदये ॥११॥

सच्छायैर्वरकेतकीदलरुचा ताम्बूलवल्लीदलैः
पूगैर्भूरिगुणैः सुगन्धिमधुरैः कर्पूरखण्डोज्ज्वलैः।
मुक्ताचूर्णविराजितैर्बहुविधैर्वक्त्राम्बुजामोदनैः
पूर्णा रत्नकलाचिका तव मुदे न्यस्तापुरस्तादुमे ॥१२॥

कन्याभिः कमनीयकान्तिभिरलंकारामलारार्तिका
पात्रे मौक्तिकचित्रपंक्तिविलसत्कर्पूरदीपालिभिः।
तत्तत्तालमृदङ्गगीतसहितं नृत्यत्पदाम्भोरुहं
मन्त्राराधनपूर्वकं सुविहितं नीराजनं गृह्यताम् ॥३१॥

लक्ष्मीर्मौक्तिकलक्ष कल्पितसितच्छत्रं तु धत्ते रसा
दिन्द्राणी च रतिश्च चामरवरे धत्ते स्वयं भारती।
वीणामेणविलोचनाः सुमनतां नृत्यन्ति तद्रागव-
द्भावैराङ्गिकसात्विकैः स्फुटरसं मातस्तदालोक्यताम् ॥१४॥

ह्रींकारत्रयसम्पुटेन मनुनोपास्ये त्रयीमौलिभि-
र्वाक्यैर्लक्ष्यतनोस्तव स्तुतिविधौको वा क्षमेताम्बिके।
संलापाः स्तुतयः प्रदक्षिणशतं संचार एवास्तु ते
संवेशो नमसः सहस्रमखिलं त्वत्प्रीतये कल्पताम् ॥१५॥

श्री मन्त्राक्षरमालया गिरिसुतां यः पूजयेच्चेतसा
सन्ध्यासु प्रतिवासरं सुनियतस्तस्यामलं स्यान्मनः।
चित्ताम्भोरुहमण्डपे गिरि सुता नृत्तं विधत्ते रसा
द्वाणीवक्त्रसरोरुहे जलधिजा गेहे जगन्मङ्गला ॥१६॥

इति गिरिवर पुत्री पादराजीवभूषा
भुवनममलयन्ती सूक्तिसौरभ्यसारैः।
शिवपदमकरन्दस्यन्दिनीयं निबद्धा
मदयतु कविभृङ्गान्मातृका पुष्पमाला ॥१७॥

॥ इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकार्य श्रीमदाद्यशंकर भगवत्पादाचार्य वर्यैः प्रणीता श्री मन्त्रमातृका पुष्पमाला सम्पूर्णं ॥

मकरन्द स्तोत्रम्

श्रीबीजे नादविन्दुद्वितय शशिकलाकाररूपे स्वरूपे,
मातर्मे देहि बुद्धिं जहि जहि जड़तांपाहिमां दीन दीनम् ।
अज्ञान ध्वान्तनाश क्षमरुचि रुचिर प्रोल्लसत्पादपद्मे,
ब्रह्मेशाद्यैः सुरेन्द्रैः सुरगण विनतैः संस्तुतां त्वां नमामि ॥१॥
लज्जा बीजस्वरूपे त्रिजगति वरदे ब्रोऽयाया स्थिते यं,
तां नित्यां शम्भु शक्ति त्रिभुवन जननीं पालयन्तीं जगच्च ।
संसारे तान्निदानं सकलगुणमयीं सच्चिदानन्द रूपां,
तेजोरूपां प्रदीप्तां त्रिभुवनतिमिराज्ञानहन्त्रीं नमामि ॥२॥
क्लीं वीजे कामकूटे धृतकुसुमधनुर्बाण पाशाङ्कुशां तां,
वन्देभास्वत्सरोजोदरनिभवपुषं मोहयन्तीं त्रिलोकीम् ।
काञ्ची मंजरी हाराङ्गदमुकुट लसत्स्वर्णमाणिक्य रत्नै,
राजन्तीमिन्दु वक्रांस्तनभरनमितांक्षीणमध्यांत्रिनेत्राम् ॥३॥
ऐंवाणी वीजरूपां त्रिभुवन जड़ताध्वान्तविध्वंसिनीं त्वां,
शब्द ब्रह्मस्वरूपा श्रुतिभिरनुपदंगीयमाना त्वमेव ।
मातर्मे देहि बुद्धि ममसदसिपरद्वन्द्वसंक्षोभकर्त्री-
मैन्द्रीं वाचस्पतेरप्यति विविधपदां त्वत्पदाम्भोजमीडे ॥४॥
सौः शक्तिः कार्यं जाते घट पट प्रभृताविष्टहेतौ सहाया,
केचिन्यायासहत्वं प्रकृतिपरिणतौ मूलभूता त्वमेव ।
केचिद्वाह्य प्रपंचे मणिरिव हिमणौ हेतुभूता त्वविद्या-
विद्या विश्रान्ति युग्मक्षय इति जगतां मेनिरेशुद्धभावाः ॥५॥
ओं मातस्ते नमस्ते श्रुतिमथितगुरुत्र्यक्षरे ब्रह्मरूपे,
मिथ्याज्ञानान्धकारे पतितमनुदिनैः पाहिमामक्षहीनम् ।
कामक्रोधप्रतिलोभप्रमदगदचयैः शत्रुभिः पीड्यमानं,
पत्नी पुत्रादि भृत्यैर्नत विविधजनैः श्रृङ्खलाभिर्निबद्धम् ॥६॥
ह्रींकारे ह्रीं स्वरूपे ममदह दुरितं व्याधि दारिद्रय बीजं
मातस्त्वत्पादपद्मद्वितयपरिसरे प्रार्थये भक्तिमेकाम् ।
त्वं वाणी त्वं च लक्ष्मीस्त्वमसिगिरिसुता ब्रह्मविष्णुत्रिनेत्र,
श्रीरूपं नित्यसख्यं कृतमिह जननि त्वत्कटाक्षैक वृन्दैः ॥७॥
श्रींकारे श्रीस्वरूपे वितर मयि धनंधान्य हस्त्यश्व युक्तं,
सौख्यं माणिक्यरत्नाद्यभिलषितयुतं त्वत्पदार्चासुयोग्यम् ।

विद्यां त्वं देहि मोक्षमयिभव दहनैर्देविदन्दह्य माने,
योगीन्द्रैः सेव्यमाना हतकलुष चयैर्मोक्षमन्वेष यद्भिः ॥८॥
कामोयोनिश्चतुर्थः स्मरविबुध पतिर्भैविनेशीं च बीजं,
तावद्वर्णावली त्वं नतजनवरदे त्वत्पदे भक्तिमीहे ।
त्वत्पादाम्भोजयुग्मं हृदय सरसिजे संनिधायैक चित्ता,
ध्यात्वा तत्कर्मबन्धादतिविमलधियो मुक्तवन्तोमुनीन्द्राः ॥९॥
ब्रह्मेन्दुः कामदेवो वियदमर गुरुर्भैविनेशीं च बीजं,
तावद्वर्णस्विरूपैर्घटित तनुलता त्वां प्रपन्नोऽस्मि मातः ।
विष्णु ब्रह्मेश मूर्ध्नि स्थितमुकुटमणि प्रोल्लसत्पाद पद्मं,
योगीन्द्रिर्ध्येय पादाङ्कर नरवर शशिद्योत विद्योतितांत्वाम् ॥१०॥

इन्दुः कामः सुरेशो वियदनल लसद्वामनेत्रार्ध चन्द्रै-
र्युक्तं यद्वीजमे तत्तदपि तव वपुः सच्चिदानन्दरूपम् ।
बाला त्वं भैरवी त्वं त्रिभुवनजननी तारणी नीलवाणी,
त्वं गौरी त्वं च काली सकलमनुमयी त्वं महामोक्षदात्री ॥११॥
सौः कारे बीजराजे त्रिभुवन जननी शक्तिराद्या त्वमेव,
त्वद्युक्तः शम्भुरेषप्रभवति चलितुं त्वांविना जाड्यवान्सः ।
ब्रह्मा विष्णुः कपर्दी तवजननि कृपालेश मात्राच्छरीरं,
गृह्णन्तः सृष्टि रक्षाप्रलयमविरतं चक्रिरे त्वद्रथस्थाः ॥१२॥

ऐं बीजं वाग्भवाख्यं त्वमिह हि जड़ताध्वान्त चण्डप्रकाशा,
मातः कारुण्यधारामृतगलितदृशापश्य मां नाथहीनम् ।
मोह्यन्ते मोहितास्ते तव जननि महामायया बद्धचित्ताः,
कारुण्यं प्रार्थयन्ते तवपदयुगले ज्ञानवन्तो मुनीन्द्राः ॥१३॥
क्लींकारो बीजराजस्तव जननि मनुश्रेष्ठ मध्यप्रवेशा-
त्साक्षाद् ब्रह्मस्वरूपी मदन तनुलता ब्रह्मणो मोदकर्त्ता ।
सुज्ञाने स्मेर वक्त्राम्बुज कुहर लसत्सृष्ट पीयूष धारा,
वेदाश्चत्वार एते तुहिनगिरिसुते प्राप्तमीनेन्द्र रूपे ॥१४॥
ह्रींकारोंकाररूपा त्वमिह शशिमुखी ह्रींस्वरूपा त्वमेव,
त्वं क्षान्तिस्त्वं च कान्तिर्हरिहरकमलोद्भूतरूपा त्वमेव ।
त्वं सिद्धिस्त्वं च ऋद्धिर्मदनरिपुमनस्त्वं च सम्मोहयन्ती,
विद्या त्वं मुक्तिहेतुर्भव जलधि जनुर्दुःखहन्त्री त्वमेका ॥१५॥

श्रींबीजे श्रीस्वरूपे मधुरिपुमनसोमध्यमध्यासिता त्वं,
मारस्त्वद्दृष्टि लेशादमरपतिरसौ प्राप्तवान्बुद्धिमेनाम् ।

इत्येवं षोडशार्णं जपति मनुवरं स्वर्गं मोक्षैक हेतुं,
सिद्धीरष्टौ लभन्ते य इदमनुदिनं श्रेष्ठमेतद्भजन्ते॥१६॥
पूजयित्वा विधानेन महात्रिपुरसुन्दरीम्।
इदं स्तोत्रं पठित्वा तु देवीसायुज्यमाप्नुयात्॥१७॥

इति शिवोक्तं मकरन्दाख्यं स्तोत्रम् समाप्तम्॥

त्रैलोक्यमोहन कवचम्

श्री देव्युवाच :

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्या या या विद्या सुदुर्लभाः।
कृपया कथिताः सर्वाः श्रुताश्चाधिगतामया॥
प्राणनाथाधुना ब्रूहि कवचं मन्त्रिविग्रहम्।
त्रैलोक्यमोहनं चेति नामतः कथितं पुरा॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि सर्वार्थकवचं स्फुटम्॥

ईश्वर उवाच :

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि सुन्दरि प्राणवल्लभे।
त्रैलोक्य मोहनं नाम सर्वविद्यौधविग्रहम्॥
यद्धृत्वा दानवान्विष्णुर्निर्जघान मुहुर्मुहुः।
सृष्टिं वितनुते ब्रह्मा यद्धृत्वा पठनाद्यतः॥
संहर्ताह यतोदेवि देवेशो वासवो यतः।
धनाधिपः कुबेरोऽपि यतः सर्वे दिगीश्वराः॥
न देयं यदशिष्येभ्यो देय शिष्येभ्य एव च।
अभक्तेभ्योऽपि पुत्रेभ्यो दत्त्वामृत्युमवाप्नुयात्॥
श्रीमत् त्रिपुरसुन्दर्याः कवचस्य ऋषिः शिवः।
छन्दोविराट् देवता च श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी॥
धर्मार्थे काममोक्षेषु विनियोगः प्रकीतितः।
शिरोमेवाग्भवंपातु 'क ए ई ल ह्रीं' रूपकम्॥
'ह स क ल ह्रीं' ललाटं पातु कामेश्वरी मम।
'ह क ह ल ह्रीं' दृशौ मे पातु कामेश्वरी सदा॥
'क ह ए ल ह्रीं' श्रुती मे सदा पातु तुरीयकम्।
'ह क ल स ह्रीं' पंचमं पातुजिह्वां च पञ्चमी।
'क ए ई ल ह्रीं ह स क ल ह्रीं ह क ह ल ह्रीं
क ह ए ल ह्रीं ह क ल स ह्रीं'—
वदनं सदा पातु पञ्चकूटा तु पञ्चमी॥१॥

'क ए ई ल ह्रीं' घ्राणं मे पातु वाग्भवसंज्ञकम् ।
'ह स क ह ल ह्रीं' कण्ठं पातु कामेशसंज्ञकम् ।
'स क ल ह्रीं' शक्तिकूटं स्कन्धौ पातु सदा मम ।
'क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं' मे-
कामेनोपासिता विद्या कक्षदेशे सदावतु ।।२।।
'क्लीं ह्रीं श्रीं ऐं सौः ओं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः श्रीं
ह्रीं क्लीं ऐं सौः'—
कामादि षोडशी पातु भुजौ त्रिपुरसुन्दरी ।।३।।
'ओं क्लीं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः श्रीं ह्रीं क्लीं स्त्रीं
ऐं क्रों क्रीं श्रीं हुं ।'
तारादि षोडशी पातु मणिबन्ध द्वयं मम ।।४।।
'श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः ओं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः
ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं'—
रमादि षोडशी पातु करौ त्रिपुरसुन्दरी ।।५।।
'ह्रीं ह् सौः ओं ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः स्त्रीं क्रों
ऐं ह्रीं हूं हूं श्रीं'—
मायादि षोडशी ख्याता हृदयं परिरक्षतु ।।६।।
ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौः ऐं क्लीं सौः सौः क्लीं ऐं
सौः क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं'—
वागादि षोडशी पातु स्तनौ मे सुन्दरीपरा ।।७।।
'क ए श्रीं ह स क ल ह्रीं क्लीं ह स क ह ल ह्रीं
सौः स क ल ह्रीं' नरव (२०)'—
वर्णा पाश्वौं पात्वपराजिता ।।८।।
'ह्रीं ह् सौं स्हौं ह्रीं' स्हौं ह् सौं क्लीं ह स क ह
ल ह्रीं ह्रीं ह्रीं सौः सौः ह ह स क ह ल ह्रीं
क्लीं ह् सौं स्हौं ह्रीं स्हौं ह् सौ ह्रीं'—
मे सुन्दरीयं समाख्याता महापुरुष पूजिता ।
महागुह्य स्वरूपा च केवलानन्द चिन्मयी ।
एकत्रिंशद्वर्णरूपा कटिदेशं सदावतु ।।९।।

ह स क ल ह्रीं मे पृष्ठं कूटं वाग्भव संज्ञकम् ।
'ह स क ल ह्रीं' कुक्षि काम कूटं सदावतु ।
वक्षस्थलं शक्तिकूटं 'स क ल ह्रीं' मे ।
लोपामुद्रा पञ्चदशी मध्यदेशं सदावतु ।।१०।।

'क ह ए ई ल ह्रीं' नाभि 'ह क ए ई ल ह्रीं कटिम् ।
सक्थिनी मे सदा पातु 'स क ए ई ल ह्रीं' सदा ।
'क ह ए ई ल ह्रीं ह क ए ई ल ह्रीं स क ए ई ल ह्रीं मे ।
मानवी विद्या सर्वतः परिरक्षतु ।।११।।

'स ह क ए ई ल ह्रीं' मे ऊरुयुग्मं सदावतु ।
'स ह क ह ए ई ल ह्रीं' गुह्यं पातु सदामम ।
'ह स क ए ई ल ह्रीं' तु जानुनी पातु मे सदा ।
'स ह ए ई ल ह्रीं स ह क ह ए ई ह्रीं ह स क
ए ई ल ह्रीं' मम—
जलजे भय संघाते सर्वतः परिरक्षतु ।।१२।।

'ह स क ए ई ल ह्रीं मे गुल्फयुग्मं सदायतु ।
'ह स क ह ए ई ल ह्रीं' पादौ पातु सदामम ।
'स ह क ए ई ल ह्रीं' मे प्रपदौमे पातु सर्वदा ।
'ह स क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ए ई ल ह्रीं
स ह क ए ई ल ह्रीं' सदा कुबेरेण प्रपूजिता ।।१३।।

'क ए ई ल ह्रीं' प्राच्यांमां त्रिपुरापरिरक्षतु ।
'ह स ग ह ल ह्रीं' पातु वह्निकोणे निरन्तरम् ।
'स ह स क ल ह्रीं' याम्यांपातु मां सर्वसिद्धिदा ।
'क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स ह स क ल ह्रीं'
विद्यागस्त्य सेव्या च चक्रस्था मां सदावतु ।।१४।।

'स ए ई ल ह्रीं' च नित्यं नैऋत्यां मां सदावतु ।
'स ह क ह ल ह्रीं' पातु प्रतीच्यां मेद्वितीयकम् ।
'स क ल ह्रीं' पातु वायव्ये सदा मां परिरक्षतु ।
'स ए ई ल ह्रीं स ह क ल ह्रीं स क ल ह्रीं तु ।
नन्द्याराधित विद्येयं सर्वाङ्गं मे सदावतु ।।१५।।

'ह स क ल ह्रीं' वायव्ये 'स ह क ल ह्रीं' उत्तरे ।
'स क ह ल ह्रीं' ईशान्ये सुन्दरीपातु मां सदा ।
'ह स क ल ह्रीं स ह क ल ह्रीं स क ह ल ह्रीं मां ।
ऊर्ध्वं रक्षतु मे नित्यं सूर्यपूज्या महोदया ।।१६।।

'क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं मे ।
सर्वाङ्गवै शक्रपूज्या सततं परिरक्षतु ।।१७।।

'क ए ई ल ह्रीं ह क ह ल ह्रीं ह स क ल ह्रीं च
ब्रह्माणी मां सदा पायाच्छ्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ॥१८॥

'ह स क ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं च।
'ह स क ल ह स क ह ल स क ल ह्रीं शाङ्करी।
चतुष्कूटा महाविद्या पाताले मां सदावतु ॥१९॥

'ह स क ल ह्रीं आधारं।'
'ह स क ल ह्रीं लिङ्गे।'
'स क ल ह्रीं पातु नाभि।'
'स ह क ल ह्रीं हृदये।'
'स ह क ह ल ह्रीं कण्ठं।'
'स ह स क ल ह्रीं नाभ्याम्।'

'ह स क ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं।
स ह क ल ह्रीं स ह क ल ह्रीं स ह क ल ह्रीं।
मनोभवा सदापातु रस संख्या महाप्रभा।
षट्कूटा वैष्णावी विद्या पातु मां सुन्दरीपारा ॥२०॥

'क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं च।
दुर्वाससा प्रपूज्यां मां दिक्षु विद्या सदावतु ॥२१॥

'क ह ए ई ल ह्रीं ह ल ए ई ल ह्रीं स क ए ई ल ह्रीं।
क्रोधेन पूजिता देवी विदिक्षु परिरक्षतु ॥२२॥
'ह स क ल ह्रीं ह स क ल ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं।
महाज्ञानमयी विद्या षोडशी मां सदावतु ॥२३॥

'श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः ओं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः सौः ऐं
क्लीं ह्रीं श्रीं।'
सर्वाङ्ग मे सदा पातु बीजरूपा च षोडशी ॥२४॥

मतान्तरे :

श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः ओं ह्रीं श्रीं क ए ई ल ह्रीं
ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं।
सर्वाङ्गं मे सदा पातु पूर्णरूपा तु षोडशी ॥२५॥

'ओं क्लीं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः क ए ई ल ह्रीं ह स
क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं स्त्रीं ऐं क्रों क्रीं ई हुं महादेवी।
श्री महाषोडशी पूर्णा प्रथिता भुवनत्रये।

ज्ञानेन मृत्युशमनी शिरस्था सर्वतोऽवतु ।
श्री महाषोडशी पूर्णा महादेवेन पूजिता ।
यस्या विज्ञान मात्रेण मृत्योर्मृत्युभवेत्स्वयम् ।।२६।।

ऐं क ए ई ल ह्रीं क्लीं ह स क ह ल ह्रीं सौः स क
ल ह्रीं सोहं हों हं सः ह्रीं स क ल ह्रीं सौः ह स क ह
ल ह्रीं क्लीं क ए ई ल ह्रीं ऐं ब्रह्मस्वरूपिणी ।
अष्टादशाक्षरी विद्या परमानन्दचिद्घना ।
नेत्र वेदा (४२) त्मकैर्वर्णैयुता मां सर्वतोऽवतु ।।२७।।

इतिते कथितं देवि ब्रह्मविद्या कलेवरम् ।
त्रैलोक्य मोहनं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम् ।।

सप्तकोटि महाविद्या तन्त्रेषु कथिताः प्रिये ।
तासां सारात्सारतरा याश्च विद्याः सुगोपिताः ।।

बहुनात्रकिमुक्तेन श्रीमहाषोडशीपरा ।
प्रकाशिता मयादेवि यां प्रच्छसि पुनः पुनः ।।

महाविद्यामयं ब्रह्म कवचं मन्मुखोदितम् ।
गुरुमभ्यर्च्यं विधिवत्पुरश्चर्यां समाचरेत् ।।

अष्टोत्तर शतं जप्त्वा दशांशं हवनादिकम् ।
ततः सुप्रसिद्धकवचः पुण्यात्मामदनोपमः ।।

मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य पुनश्चर्यां विना ततः ।
वक्त्रे तस्य वसेद्वाणी कमला निश्चला गृहे ।।

पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा मूलेनैव पठेत्सकृत् ।
दशवर्षं सहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुपात् ।।

आत्मानं तन्मयं कृत्वा यः पठेत्कवचं परम् ।
यं यं पश्यति वै शीघ्रं तस्यदासो भवेद्ध्रुवम् ।।

विलिख्य भूर्जेघुटिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ।
कण्ठे वा यदि वा बाहौ सकुर्याद्दासवज्जगत् ।।

त्रिलोकीं क्षोभयत्येव त्रैलोक्य विजयी भवेत् ।
तद्गात्रं प्राप्य शस्त्राणि महास्त्रादीनिपार्वति ।।

माल्यानि कुसुमानीव सुखदानि भवन्ति हि ।
इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेत्सुन्दरीं पराम् ।।

नवलक्षं प्रजप्त्वापि तस्य विद्या न सिध्यति ।
सशस्त्र घातमाप्नोति सोऽचिरान्मृत्युमाप्नुयात् ॥
इदमेवपरं यस्माद् भुक्ति मुक्ति प्रदायकम् ।
तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन पठनीयं मुमुक्षुभिः ॥
भूवेश्मगात्रिवृत षोडश नागशक्र-
दिग्युग्मवस्वनलकोणगबिन्दु मध्ये ।
सिंहासनोपरिगतारक पीठ मध्ये ।
प्रोत्फुल्लपद्मनिलयां त्रिपुरांभजेऽहम् ॥
इति रुद्रयामले गौरीश्वर सम्वादे
श्री राजराजेश्वरी श्रीमहात्रिपुर
सुन्दर्यास्त्रैलोक्य मोहनाख्य कवचम् ॥

नौवाँ अध्याय

सौन्दर्य लहरी

(पूर्वार्द्ध)

(१)

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वाराध्यां हरिहरविरञ्चादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति ॥

(२)

तनीयांसं पांसुं तव चरणपंकेरुहभवं
विरिञ्चिः संचिन्वन्विरचयति लोकानविकलम्।
वहत्येनं शौरिः कथमपि सहस्रेण शिरसां
हरः संक्षुद्यैनं भजति भसितोद्धूलनविधिम् ॥

(३)

अविद्यानामन्तस्तिमिरमिहिरोद्दीपनकरी
जडानां चैतन्यस्तबकमकरन्दस्रुतिझरी।
दरिद्राणां चिन्तामणिगुणनिका जन्मजलधौ
निमग्नानां दंष्ट्रा मुररिपुवराहस्य भवती ॥

(४)

त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगण-
स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवराभीत्यभिनया।
भयात्त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छासमधिकं
शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ ॥

(५)

हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजनसौभाग्यजननीं
पुरा नारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत् ।
स्मरोऽपि त्वां नत्वा रतिनयनलेह्येन वपुषा
मुनीनामप्यन्तः प्रभवति हि मोहाय महताम् ।।

(६)

धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी पञ्चविशिखा
वसन्तः सामन्तो मलयमरुदायोधनरथः ।
तथाऽप्येकः सर्वं हिमगिरिसुते ! कामपि कृपा-
मपाङ्गात्ते लब्ध्वा जगदिद (न) मनङ्गो विजयते ।।

(७)

क्वणत्काञ्चीदामा करिकलभकुम्भस्तनभरा (भता)
परिक्षीणा मध्ये परिणतशरच्चन्द्रवदना ।
धनुर्बाणान् पाशं सृणिमपि दधाना करतलैः
पुरस्तादास्तां नः पुरमथितुराहो पुरुषिका ।।

(८)

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे ।
शिवाऽऽकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्क निलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम् ।।

(९)

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि ।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्त्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि ।।

(१०)

सुधाधाराऽऽसारै श्चरणयुगलान्तर्विगलितैः
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नाय महसा ।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्ट वलयं
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणी ।।

(११)

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुतिभिः पञ्चभिरपि
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः ।

त्रयश्चत्वारिंशद्वसुदलकलाश्र (श्च) त्रिवलय-
त्रिरेखाभिः सार्धं तव शरण (भवन) कोणाः परिणताः ॥

(१२)

त्वदीयं सौन्दर्यं तुहिनगिरिकन्ये तुलयितु
कवीन्द्रा कल्पन्ते कथमपि विरिञ्चिप्रभृतयः ।
यदालोकौत्सुक्यादमरललना यान्ति मनसा
तपोभिर्दुष्प्रापामपि गिरिशसायुज्यपदवीम् ॥

(१३)

नरं वर्षीयांसं नयनविरसं नर्मसु जडं
तवापाङ्गालोके पतितमनुधावन्ति शतशः ।
गलद्वेणीबिन्धाः कुचकलशविस्रस्तसिचया
हठात्त्रुट्यत्काञ्च्यो विगलितदुकूला युवतयः ॥

(१४)

क्षितौ षट्पञ्चाशद्विसमधिकपञ्चाशदुदके
हुताशे द्वाषष्टिश्चतुरधिकपंचाशदनिले ।
दिवि द्विषट्त्रिंशन्मनसि च चतुःषष्टिरिति ये
मयूखास्तेषामप्युपरि तव पदाम्बुजयुगम् ॥

(१५)

शरज्ज्योत्स्नाशुभ्रां शशियुतजटाजूटमुकुटां
वरत्रासत्राणस्फटिकघुटि (णि) कापुस्तक कराम् ।
सकृन्न त्वां नत्वा कथमिव सतां सन्निदधते
मधुक्षीरद्राक्षामधुरिमधुरिणा भणितयः ॥

(१६)

कवीन्द्राणां चेतः कमलवनबालातपरुचिम्
भजन्ते ये सन्तः कतिचिदरुणामेव भवतीम् ।
विरिञ्चिप्रेयस्यास्तरुणतर श्रृङ्गारलहरी-
गभीरावाभिर्वाग्भिर्विदधति सतां (भां) रंजनमयी ॥

(१७)

सावित्रिभिर्वाचां शशिमणिशिलाभङ्गरुचिभि-
र्वशिन्याद्याभिस्त्वां सह जननि सञ्चिन्तयति यः ।
स कर्ता काव्यानां भवति महतां भङ्गिसुभगै (रुचिभि)-
र्वचोभिर्वाग्देवीवदनकमलामोदमधुरैः ॥

(१८)

तनूच्छायाभिस्ते तरुणतरणिश्रीध (स) रणिभि-
दिवं सर्वामुर्वीमरुणिमनिमग्नां स्मरति यः।
भवन्त्यस्य त्रस्यद्वनहरिणशालीननयनाः
सहोर्वश्या वश्याः कतिकतिन गीर्वाणगणिकाः ॥

(१९)

मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो
हृ (का) रार्धं ध्यायेद्यो हरमहिषिते मन्मथकलाम् ।
स सद्यः संक्षोभं नयति वनिता इत्यतिलघु
त्रिलोकीमप्याशु भ्रमयति रवीन्दुस्तनयुगाम् ॥

(२०)

किरन्तीमङ्गेभ्यः किरणनिकुरुम्बामृतरसं
हृदि त्वामाधत्ते हिमकरशिलामूर्तिमिव यः ।
स सर्पाणां दर्पं शमयति शकुन्ताधिप इव
ज्वरप्लुष्टान् दृष्ट्या सुखयति सुधाऽऽधा (सा) रसिरया ॥

(२१)

तडिल्लेखातन्वीं तपनशशिवैश्वानरमयीम्
निषण्णां षण्णामप्युपरि कमलानां तव कलाम् ।
महापद्माटव्यां मृदितमलमायेन मनसा
महान्तः पश्यन्ती दधति परमाह्लादलहरीम् ॥

(२२)

भवानि त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणा-
मिति स्तोतुं वाञ्छन् कथयति भवानि त्वमिति यः ।
तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्यपदवीं
मुकुन्दब्रह्मेन्द्रस्फुटमुकुटनीराजितपदाम् ॥

(२३)

त्वया हृत्वा वामं वपुरपरितृप्तेन मनसा
शरीरार्द्धं शम्भोरपरमपि शङ्के हृतमभूत ।
यदेत (तथाहि) त्वद्रूपं सकलमरुणाभ त्रिनयनं
कुचाभ्यामानम्र कुटिलशशिचूडालमुकुटम् ॥

(२४)

जगत्सूते धाता हरिरवति रुद्रः क्षपयते
तिरस्कुर्वन्नेतत्स्वमपि वपुरीशः स्थगयति (स्थिरयति) ।

सदा पूर्वः सर्वं तदिदमनु गृह्णाति च शिव-
स्तवाज्ञामालम्ब्य क्षणचलितयोर्भ्रूलतिकयोः ॥

(२५)

त्रयाणां देवानां त्रिगुणजनितानां तव शिवे
भवेत्पूजा पूजा तव चरणयोर्या विरचिता ।
तथा हि त्वत्पादोद्वहनमणिपीठस्य निकटे
स्थिता ह्येतेशश्वन्मुकुलित करोत्तं समुकुटाः ॥

(२६)

विरञ्चिः पञ्चत्वं व्रजति हरिराप्नोति विरतिं
विनाशं कीनाशो भजति धनदो याति निधनम् ।
वितन्द्राः माहेन्द्री विततिरपि संमीलति दृषां
महासंहारेऽस्मिन्विहरति सति त्वत्पतिरसौ ॥

(२७)

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचनं
गतिः प्रादक्षिण्यं भ्रमणमशनाद्याहुतिविधिः ।
प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदशा
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम् ॥

(२८)

सुधामप्यास्वाद्य प्रतिभयजरामृत्युहरणीं
विपद्यन्ते विश्वे विधिशतमखाद्या दिविषदः ।
करालं यत्क्ष्वेलं (डं) कबलितवतः कालकलना
न शम्भोस्तन्मूलं तव जननि ताटङ्क महिमा ॥

(२९)

किरीटं वैरिञ्च्यं परिहर पुरः कैटभभिदः
कठोरे कोटीरे स्खलसि जहिजम्भा रिमुकुटम् ।
प्रणम्रेष्वेतेषु प्रसभमुपयातस्य भवनं
भवस्याभ्युत्थाने तव परिजनोक्तिर्विजयते ॥

(३०)

स्वदेहोद्भूताभिर्घृणिभिरणिमाऽऽद्याभिरभितो
निषेव्ये नित्ये त्वामहमिति सदा भावयति यः ।
किमाश्चर्यं तस्य त्रिनयनसमृद्धिं तृणयतो
महासंवर्ताग्निर्विरचयति नीराजनविधिम् ॥

(३१)

चतुःषष्ठ्या तन्त्रैः सकलमिति (भि) संधाय भुवनं
स्थितस्तत्तत्सिद्धि प्रसवपरतन्त्रैः पशुपतिः ।
पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिलपुरुषार्थैकघटना-
स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम् ।।

(३२)

शिवः शक्तिः कामः क्षितिरथ रविः शीतकिरणः
स्मरो हंसः शक्रस्तदनु च परामारहरयः ।
अमी हृल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिता
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामावयवताम् ।।

(३३)

स्मरं योनिं लक्ष्मीं त्रितयमिदमादौ तव मनो-
र्निधायैके नित्ये निरवधिमहाभोगरसिकाः ।
भजन्ति त्वां चिन्तामणिगुणनिवद्धाक्षव (र) लयाः
शिवाऽग्नौ जुह्वन्तः सुरभिघृतधाराऽऽहुतिशतः ।।

(३४)

शरीरं त्वं शम्भोः शशिमिहिरवक्षोरुहयुगं
तवात्मानं मन्ये भगवति नवा (भवा) त्मानमनघम् ।
अतः शेषः शेषीत्ययमुभयसाधारणतया
स्थितः सम्बन्धो वां समरस परमानन्दपरयोः ।।

(३५)

मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां नहि परम ।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारं शिवयुवति भावेन विभृषे ।।

(३६)

तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिधरं
परं शम्भुं वन्दे परिमिलितपार्श्वे परचिता ।
यमाराध्यन् भक्त्या रविशशिशुचीनामविषये
निरालोके लोके निवसति हि भालोक भ (भु) वने ।।

(३७)

विशुद्धौ ते शुद्धस्फटिक विशदं व्योमजनकं
शिवं सेवे देवीमपि शिवसमानव्यवसिताम् ।

ययोः कान्त्यायान्त्या शशिकिरण सारूप्य सरणिं
विधूतान्तर्ध्वान्ता विलसति चकोरीव जगती ॥

(३८)

समुन्मीलत्संवित्कमलमकरन्दैकरसिकं
भजे हंस द्वन्द्वं किमपि महतां मानसचरम् ।
यदालापादष्टादशगुणितविद्यापरिणति-
र्यदादत्ते दोषाद्गुणमखिलमद्भ्यः पय इव ॥

(३९)

तव स्वाधिष्ठाने हुतवहमधिष्ठाय निरतं
तमीडे संवर्तं जननि महतीं तां च समयाम् ।
यदालोके लोकान् दहति महति क्रोधकलिते
दयार्द्रा (भिर्द्दग्भिः) या दृष्टिः शिशिरमुपचारं रचयति ॥

(४०)

तडित्वन्तं शक्त्या तिमिरपरिपन्थस्फुरणया
स्फुरन्नाना रत्नाभरणपरिणद्धेन्द्र धनुषम् ।
तव (तमः) श्याम मेघं कमपि मणिपूरैकशरणं
निषेवे वर्षन्तं हरमिहिरतप्तं त्रिभुवनम् ॥

(४१)

तवाधारे मूले सह समयया लास्यपरया
शिवा (नवा) त्मानं मन्ये नवरस महाताण्डवनटम् ।
उमाभ्यामेताभ्यामुद (भ) य विधिमुद्दिश्य दययां
सनाथाभ्यां जज्ञे जनकजननीमज्जगदिदम् ॥

(उत्तरार्द्ध)

(४२)

गतैर्माणिक्यत्वं गगनमणिभिः सान्द्रघटितं
किरीटं ते हैमं हिमगिरिसुते कीर्तयति यः ।
स नीडेयच्छायाच्छुरणशबल चन्द्रशकलं
धनुः शौनासीरं किमिति न निबध्नाति धिषणाम् ॥

(४३)

धुनोतु ध्वान्तं नस्तुलितदलितेन्दीवरवनं
घनस्निग्धं श्लक्ष्णं चिकुरनिकुरुम्ब तव शिवे ।

यदीयं सौरभ्यं सहजमुपलब्धुं सुमनसो
वसन्त्यस्मिन्मन्ये बलमथनवाटीविटपिनाम् ॥

(४४)

वहन्ती सिन्दूरं प्रबलकबरीभारतिमिर-
द्विषां वृन्दैर्बन्दीकृतमिव नवीनार्क किरणम् ।
तनोतुक्षेमं नस्तव वदनसौन्दर्यलहरी
परिवाहः स्रोतः सरणिखि सीमान्तसरणिः ॥

(४५)

अरालैः स्वाभाव्यादलिकलभसश्रीभिरलकैः
परीतं ते वक्त्रं परिहसति पङ्केरुह रुचिम् ।
दरस्मेरे यस्मिन्दशनरुचि किञ्जल्करुचिरे
सुगन्धौ माद्यन्ति स्मरदहनचक्षुर्मधुलिहः ॥

(४६)

ललाट लावण्यद्य तिविमलमाभाति तव यद्
द्वितीयं तन्मन्ये मुकुट घटितं चन्द्रशकलम् ।
विपर्यान्यासादुभयमपि सम्भूय च मिथः
सुधालेपस्यूतिः परिणमति राकाहिमकरः ॥

(४७)

भ्रुवौ भुग्ने किञ्चिद् भुवनभयभङ्गव्यसनिनि
त्वदीये नेत्राभ्यां मधुकररुचिभ्यां धृतगुणम् ।
धनुर्मन्ये सव्येतरकरगृहीतं रतिपतेः
प्रकोष्टे मुष्टौ च स्थगयति निगूढान्तरमुमे ॥

(४८)

अहः सूते सव्यं तव नवनमर्कात्मकतया
त्रियामां वामं ते सृजति रजनीनायकतया ।
तृतीया ते दृष्टिर्दरदलितहेमाम्बुजरुचिः
समाधत्ते सन्ध्यां दिवसनिशयोरन्तरचरीम् ॥

(४९)

विशाला कल्याणी स्फुटरुचिरयोध्या कुवलयैः
कृपाधारा धारा किमपि मधुरा भोगवतिका ।
अवन्ती दृष्टिस्ते बहुनगर विस्तार विजया
ध्रुवं तत्तन्नामव्यवहरणयोग्या विजयते ॥

(५०)

कवीनां सन्दर्भस्तवकमकरन्दैकरसिकं
कटाक्षव्याक्षेपभ्र मर कलभौ कर्णयुगलम् ।
अमुञ्चन्तौ दृष्टवा तव नवरसास्वादतरला-
वसूयासंसर्गादलिकनयनं किञ्चिदरुणम् ॥

(५१)

शिवे शृङ्गारार्द्रा तदितरजने कुत्सनपरा
सरोषा ;गङ्गायां गिरिश्चरिते विस्मयवती ।
हराहिभ्यो भीता सरसिरुह सौभाग्यजयिनी
सखीषु स्मेरा ते मयि जननि दृष्टिः सकरुणा ॥

(५२

गते कर्णाभ्यर्णं गरुत इव पक्ष्माणि दधती
पुरां भेत्तश्चित्तप्रशमरसविद्रावणफले ।
इमे नेत्रे गोत्राधरपतिकुलोत्तंसकलिके
तवाकर्णाकृष्टस्मरशरविलासं कलयतः ॥

(५३)

विभक्तत्रैवर्ण्यं व्यतिकरितलीलाञ्जनतया
विभाति त्वन्नेत्रत्रितयमिदमीशानयिते ।
पुनः स्त्रष्टुं देवान्द्रुहिणहरिरुद्रानुपरतान्
रजः सत्त्वं विभ्रत्तम इति गुणानां त्रयमिव ॥

(५४)

पवित्री कर्तुं नः पशुपतिपराधीन हृदये
दयामित्रैर्नेत्रैररुणधवलश्यामरुचिभिः ।
नदः शोणो गङ्गा तपनतनयेति ध्रुवममु (मयं)
त्रयाणां तोर्थानामुपनयसि सम्भेदमनघम् ॥

(५५)

निमेषोन्मेषाभ्यां प्रलयमुदयं याति जगती
तवेत्याहुः सन्तो धरणिधरराजन्यतनये ।
त्वदुन्मेषाज्जातं जगदिदमशेषं प्रलयतः
परित्रातुं शङ्के परिहृतनिमेषास्तव दृशः ॥

(५६)

तवापर्णे कर्णे जपनयनपैशुन्यचकिता
निलीयन्ते तोये नियतमनिमेषाः शफरिकाः ।

इयं च श्रीर्बद्धच्छदपुटकवाटं कुवलयं
जहाति प्रत्यूषे निशि च विघटय्य प्रविशति ॥

(५७)

दृशा द्राघीयस्या दरदलितनीलोत्पलरुचा
दवीयांसं दीनं स्नपय कृपया मामपि शिवे ।
अनेनायं धन्यो भवति न च हानिरियता
वने वा हर्म्ये वा समकरनिपातो हिमकरः ॥

(५८)

अरालं ते पाली युगलमगराजन्यतनये
न केषामाधत्ते कुसुमशरकोदण्डकुतुकम् ।
तिरश्चीनो यत्र श्रवणपथमुल्लङ्ध्य विलसन्न
पाङ्गव्यासङ्गो दिशति शरसन्धानधिषणाम् ॥

(५९)

स्फुरद्गण्डाभोग प्रतिफलितताटङ्कयुगलं
चतुश्चक्रं मन्ये तव मुखमिदं मन्मथरथम् ।
यमारुह्य (यमाश्रित्य) द्रुह्यत्यवनिरथमर्केन्दुचरणं
महावीरो मारः प्रमथपतये सज्जितवते ॥

(६०)

सरस्वत्याः सूक्तीरमृतलहरीकौशलहरीः
पिवन्त्याः शर्वाणि श्रवणचुलुकाभ्यामविरलम् ।
चमत्कारश्लाघाचलितशिरसः कुण्डलगणो
झणत्कारैस्तारैः प्रतिवचनमाचष्ट इव ते ॥

(६१)

असौ नासावंशस्तुहिनगिरिवंशध्वजपटि (पटे)
त्वदीयो नेदीयः फलतु फलमस्माकमुचितम् ।
वहन्नन्तर्मुक्ताः शिशिरतर निश्वासघटिताः (गलिताः)
समृद्ध्या यत्तासां वहिरपि च मुक्तामणिधरः ॥

(६२)

प्रकृत्याऽऽरक्तायास्तव सुदति दन्तच्छदरुचेः
प्रवक्ष्ये सादृश्यं जनयतु फलं विद्रुमलता ।
न बिम्बं तद्बिम्बप्रतिफलनरागादरुणितं
तुलामध्यारोढुं कथमिव न लज्जेत् कलया ॥

(६३)

स्मितज्योत्स्नाजालं तव वदनचन्द्रस्य पिवतां
चकोराणामासीदत्तिरसतया चञ्चुजडिमा ।
अतस्ते शीतांशोरमृतलहरीमाम्लरुचयः
पिवन्ति स्वच्छन्दं निशनिश भृशं काञ्जिकधिया ॥

(६४)

अविश्रान्तं पत्युर्गुणगणकथाऽऽम्रेडनजपा
जपापुष्पच्छाया तव जननि जिह्वा जयति सा ।
यदग्रासीनायाः स्फटिकदृषदच्छच्छविमयी
सरस्वत्या मूर्तिः परिणमति माणिक्यवपुषा ॥

(६५)

रणे जित्वा दैत्यानपहृतशिरस्त्रैः कवचिभि-
र्निवृत्तैश्चण्डांशत्रिपुरहरनिर्माल्यविमुखैः ।
विशाखेन्द्रोपेन्द्रैः शशिविशदकर्पूरशकला
विलीयन्ते मातस्तव वदनताम्बूलकवलाः ॥

(६६)

विपञ्चया गायन्ती विविधमपदानं पशुपते-
स्त्वयाऽऽरब्धे वक्तुं चलितशिरसा साधुवचने ।
तदीयैर्माधुर्यैरपलपिततन्त्रीकलरवां
निजां वीणां वाणी निचुलयति चोलेन निभृतम् ॥

(६७)

कराग्रेण स्पृष्टं तुहिनगिरिणा वत्सलतया
गिरीशेनोदस्तं मुहुरधरपानाकुलतया ।
करग्राह्यं शम्भोर्मुखमुकुरवृन्त गिरिसुते
कथंकारं ब्रूमस्त्रव चिबुकमौपम्यरहितम् ॥

(६८)

भुजाश्लेषान्नित्यं पुरदमयितुः कण्टकवती
तव ग्रीवा धत्ते मुखकमलनालश्रियमियम् ।
स्वतः श्वेता कालागरुबहुलजम्बालमलिना
मृणालीलालित्यं वहति यदधो हारलतिका ॥

(६९)

गले रेखास्तिस्त्रो गतिगमकगीतैकनिपुणे
विवाहव्यानद्धप्रगुणगुणसंख्याप्रतिभुवः ।

विराजन्ते नानाविधमधुररागाकरभुवां
त्रयाणां ग्रामाणां स्थितिनियमसीमान इव ते ।।

(७०)

मृणाली मृद्वीनां तव भुजलतानाञ्चत सृणां
चतुर्भिः सौन्दर्यं सरसिजभवः स्तौति वदनैः
नखेभ्यः संत्रस्यन्प्रथममथनादन्धरिपो-
श्चतुर्णां शीर्षाणां सममभयहस्तार्पणधिया ।।

(७१)

नखानामुद्योतैं नंवनलिनरागं विहसतां
कराणां ते कान्ति कथय कथयामः कथमुमे ।
कयाचिद्वा साम्यं भवतु कलया हन्त कमलं
यदि क्रीडल्लक्ष्मीचरणतलक्षाऽरुणदलम् ।।

(७२)

समं देवि स्कन्दद्विपवदनपीतं स्तनयुगं
तवेदं नः खेदं हरतु सततं प्रस्नुतमुखम् ।।
यदालोक्याशङ्काऽऽकुलितहृदयो हास जनकः
स्वकुम्भौ हेरम्बः परिमृशति हस्तेन झटिति ।।

(७३)

अमू ते वक्षोजावमृतरसमाणिक्यकुतुपौ (कलशौ)
न सन्देहस्पन्दो नगपतिपताके मनसि नः ।
पिबन्तौ तौ यस्मादविदितवधूसङ्गमरसौ
कुमारावद्यापि द्विरदवदनक्रौञ्चदलनौ ।।

(७४)

बहत्यम्ब स्तम्बेरमदनुजकुम्भप्रकृतिभिः
समारब्धां मुक्तामणिभिरमलां हारलतिकाम् ।
कुचाभोगो बिम्बाधररुचिभिरन्तः शबलितां
प्रतापव्यामिश्रां पुरदमयितुः कीर्तिमिव ते ।।

(७५)

तव स्तन्यं मन्ये धरणिधरकन्ये हृदयतः
पयः पारावारः परिवहति सारस्वतमिव ।
दयावत्या दत्तं द्रविडशिशुरस्वाद्य तव यत्
कवीनां प्रौढानामजनिकमनीयः कवयिता ।।

(७६)

हरक्रोधज्वालाऽवलिभिरवलीढेन वपुषा
गभीरे ते नाभीसरसि कृतसङ्गो मनसिजः ।
समुत्तस्थौ तस्मादचलतनये धूमलतिका
जनस्तां जानीते तव जननि रोमावलिरिति ॥

(७७)

यदेतत्कालिन्दीतनुतरतरङ्गाकृति शिवे
कृशेमध्ये किञ्चिज्जननि तव तद्भाति सुधियाम् ।
विमर्दादन्योऽन्यं कुचकलशयोरन्तरगतं
तनुभूतं व्योम प्रविशदिव नाभिं कुहरणीम ॥

(७८)

स्थिरो गङ्गाऽऽवर्तं स्तनमुकुलरोमावलिलता-
निजाबालं कुण्डं कुसुमशरतेजोहुतभुजः ।
रतेर्लीलाऽगारं किमपि तव नाभिर्गिरिसुते
बिलद्वारं सिद्धेर्गिरिशनयनानां विजयते ॥

(७९)

निसर्गक्षीणस्य स्तनतटभरेण क्लमजुषो
नमन्मूर्तेर्नाभौ वलिषु च शनैस्त्रुट्यत इव ।
चिरं ते मध्यस्य त्रुटिततटिनीतीरतरुणा
समावस्थास्थेम्नो भवतु कुशलं शैलतनये ॥

(८०)

कुचौ सद्यः स्विद्यत्तटघटितकूर्पासभिदुरौ
कषन्तौ दोर्मूले कनककलशाभौ कलयता ।
तव त्रातुं भङ्गादलमिति वलग्नं तनुभुवा
त्रिधानद्धं देवि त्रिवलिलवलीवल्लिभिरिव ॥

(८१)

गुरुत्वं विस्तारं क्षितिधरपतिः पार्वति निजात्
नितम्बादाच्छिद्य त्वयि हरणरूपेण निदधे ।
अतस्ते विस्तीर्णो गुरुरयमशेषां वसुमतीं
नितम्बप्राग्भारः स्थगयति लघुत्वं नयति च ॥

(८२)

करीन्द्राणां शुण्डान् कनककदलीकाण्डपटली-
मुभाभ्यामूरुभ्यामुभयमपि निर्जित्य भवती ।

सुवृत्ताभ्यां पत्युः प्रणतिकठिनाभ्यां गिरिसुते
विजिग्ये जानुभ्यां विबुधकरिकुम्भद्वयमपि ॥

(८३)

पराजेतुं रुद्रं द्विगुणशरगर्भौ गिरिसुते
निषङ्गौ जङ्घे ते विषमविशिखो वाढमकृत ।
यदग्रे दृश्यन्ते दशशरफलाः पादयुगली-
नखाग्रच्छद्मानः सुरमुकुटशाणैकनिशिताः ॥

(८४)

श्रुतीनां मूर्धानो दधति तव यौ शेखरतया
ममाप्येतौ मातः शिरसि दयया धेहि चरणौ ।
ययौः पाद्यं पाथः पशुपतिजटाजूटतटिनी
ययोर्लाक्षालक्ष्मीररुणहरिचूड़ामणिरुचिः ॥

(८५)

नमोवाकं ब्रूमो नयनरमणीयाय पदयो-
स्तवास्मै द्वन्द्वाय स्फुटरुचिरसालक्तकवते ।
असूयत्यत्यन्तं यदभिहननाय स्पृहयते
पशूनामीशानः प्रमदवनकङ्केलितखे ॥

(८६)

मृषा कृत्त्वा गोत्रस्खलनमथ वैलक्ष्यनमित
ललाटे भर्तारं चरणकमले ताडयति ते ।
चिरादन्तः शल्यं दहनकृतमुन्मूलितवता
तुलाकोटिक्वाणैः किलिकिलितमीशानरिपुणा ॥

(८७)

हिमानीहन्तव्यं हिमगिरिनिवसैक चतुरौ
निशायां निद्राणं निशि च पर भागे च विशदौ ।
परं लक्ष्मी पात्रं श्रियमतिसृजन्तो समयिनां
सरोजं त्वत्पादौ जननि जयतश्चित्रमिह किम् ॥

(८८)

पदं ते कीर्त्तीनां प्रपदमपदं देवि विपदां
कथं नीतं सद्भिः कठिनकमठीखर्परतुलाम् ।
कथंचिद्बाहुभ्यामुपयमनकाले पुरभिदा
यदादाय न्यस्तं दृषदि दयमानेन मनसा ॥

(८९)
नखैर्नाकस्त्रीणां करकमलसङ्कोच शशिभि-
स्तरूणां दिव्यानां हसत इव ते चण्डि चरणौ।
फलानि स्वः स्थेभ्यः किसलयकराग्रेण ददतां
दरिद्रेभ्यो भद्रां श्रियमनिशमह्नाय ददतौ॥
(९०)
ददाने दीनेभ्यः श्रियमनिशमाशाऽनुसदृशी-
ममन्दं सौन्दर्यप्रकरमकरन्दं विकिरति।
तवास्मिन्मन्दारस्तवकसुभगे यातु चरणे
निमज्जन्मज्जीवः करणचरणः षट्चरणताम्॥
(९१)
पदन्यासक्रीडापरिचयमिवारब्धुमनस-
श्चरन्तस्ते खेलं भवनकलहंसा न जहति।
अतस्तेषां शिक्षां सुभगमणिमञ्जीररणित-
च्छलादाचक्षाणं चरण कमलं चारुचरिते॥
(९२)
गतास्ते मञ्चत्वं द्रुहिणहरिरुद्रेश्वरभृतः
शिवः स्वच्छच्छायाघटितकपटप्रच्छदपटः।
त्वदीयानां भासां प्रतिफलनरागारुणतया
शरीरी श्रृङ्गारो रस इव दृशां दोग्धि कुतुकम्॥
(९३)
अराला केशेषु प्रकृतिसरला मन्दहसिते
शिरीषाभा गात्रे दृषदिव कठोरा कुचतटे।
भृशंतन्वी मध्ये पृथुरपि वरारोहविषये
जगत् त्रातुं शम्भोर्जयति करुणा काचिदरुणा॥
(९४)
समानीतः पद्भ्यां मणिमुकुरतामम्बरमणि-
र्भयादास्यादन्तः स्तिमितकिरणश्रेणिमसृणः।
दधाति त्वद्वक्त्रप्रतिफलनमश्रान्तविकचं
निरातङ्कं चन्द्रान्निजहृदयपङ्केरुहमिव॥
(९५)
कलङ्कः कस्तूरी रजनिकरबिम्बं जलमयं
कलाभिः कर्पूरैर्मरकतकरण्डं निबिडतम्।

अतस्त्वद्भोगेन प्रतिदिनमिदं रिक्तकुहर
विधिर्भूयो भूयो निविडयति नूनं तव कृते ॥

(९६)

पुरारातेरन्तः पुरमसि ततस्त्वच्चरणयोः
सपर्यामर्यादा तरलकरणानामसुलभा ।
तथाह्येते नीताः शतमखमुखाः सिद्धिमतुलां
तव द्वारोपान्जस्थितिभिरणिमाऽऽद्याभिरमराः ॥

(९७)

कलत्र वैधात्रं कतिकति भजन्ते न कवयः
श्रियो देव्याः को वा न भवति पतिः कैरपि धनैः ।
महादेवं हित्त्वा तव सति सतीनामचरमे
कुचाभ्यामासङ्गः कुखकतरोरप्यसुलभः ॥

(९८)

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो
हरेः पत्नि पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम् ।
तुरीया काऽपि त्वं दुरधिगम निः सीममहिमा
महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषि ॥

(९९)

समुद्भूतस्थलस्तनभरमुरश्चारु हसितं
कटाक्षे कन्दर्पो कतिचन कदम्बद्युतिवपुः ।
हरस्य त्वद्भ्रान्ति मनसि जनयसिस्म विमला
भवत्या ये भक्ताः परिणतिरमोषामिय मुमे ॥

(१००)

कदा काले मातः कथय कलितालक्तकरसं
पिवेयं विद्यार्थी तव चरणनिर्णेजनजलम् ।
प्रकृत्या मूकानामपि च कविताकारणतया
यदाधत्ते वाणी मुखकमलताम्बूलरसताम् ॥

(१०१)

सरस्वत्या लक्ष्म्या विधि हरि सपत्नो विहरते
रतेः पातिव्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुषा ।
चिरञ्जीवन्नेव क्षपितपशुपाशव्यतिकरः
परानन्दाभिख्यं रसयति रसं त्वद्भजनवान् ॥

(१०२)

निधे नित्यस्मेरे निरवधिगुणे नीतिनिपुणे
निराधाटज्ञाने नियमपरचित्तैकनिलये ।
नियत्यानिर्मुक्ते निखिलनिगमान्तस्तुतपदे
निरातङ्के नित्ये निगमय ममापि स्तुतिमिमाम् ॥

(१०३)

प्रदीपज्वालाभिर्दिवसकरनीराजनविधिः
सुधासुतेश्चन्द्रोपलजललवैरर्घ्यरचना ।
स्वकीयैरम्भोभिः सलिलनिधिसौहित्यकरणं
त्वदीयाभिर्वाग्भिस्तव जननि वाचां स्तुतिरियम् ॥

दसवाँ अध्याय

अथ भावनोपनिषत्

श्रीगुरुः सर्वकारण भूता शक्तिः ॥१॥
तेन नवरन्ध्ररूपो देहः ॥२॥
नवचक्ररूपं श्रीचक्रम् ॥३॥
वाराही पितृरूपा कुरुकुल्लाबलि देवता माता ॥४॥
पुरुषार्थास्सागराः ॥५॥
देहो नवरत्नद्वीपः ॥६॥
त्वगादिसप्तधातुरोमसंयुक्तः ॥७॥
सङ्कल्पाः कल्पतरवस्तेजः कल्पकोद्यानम् ॥८॥
रसनया भाव्यमाना मधुराम्लतिक्तकटुकषायलवणरसाः षड्टतवः ॥९॥
ज्ञानमर्घ्यं ज्ञेयं हविः ज्ञाता होता ज्ञातृज्ञानज्ञेयानामभेद-
भावनम् श्रीचक्रपूजनम् ॥१०॥
नियतिः शृङ्गारादयो रसा अणिमादयः ।
कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यपुण्यपापमय्यो
ब्राह्म्याद्यष्टशक्तयः ॥११॥
आधारनवकं मुद्राशक्तयः ॥१२॥
पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राण-
वाक्पादपाणिपायूपस्थानि मनोविकारः कामा-
कर्षिण्यादिषोऽशशक्तयः ॥१३॥
वचनादानगमनविसर्गानन्दहानोपादानोपेक्षा-
ख्यबुद्धयोऽनङ्गकुसुमाद्यष्टौ ॥१४॥
अलम्बुसा कुहूर्विश्वोदरा वारणा हस्तिजिह्वा यशोवती पयस्विनी गान्धारी पूषा शङ्खिनी सरस्वती इडा पिङ्गला सुषुम्ना चेति चतुर्दश नाड्यः सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दश शक्तयः ॥१५॥

प्राणापानव्यानोदानसमाननागकूर्मकृकरदेवदत्तधनञ्जयाः दश वायवस्सर्वसिद्धिप्रदादिबहिर्दशारदेवताः ॥१६॥

एतद्वायुसंसर्गकोपाधिभेदेन रोचकः पाचकः शोषको दाहकः प्लावकः इति प्राणमुख्यत्वेन पञ्चधा जठराग्निर्भवति ॥१७॥

क्षारक उद्गारकः क्षोभको जृम्भको मोहक इति नागप्राधान्येन पञ्चविधास्ते मनुष्याणां देहगाः भक्ष्य भोज्यचोष्यलेह्यपेयात्मकं पञ्चविध मन्नं पाचयन्ति ॥१८॥

एता दश वह्निकलाः सर्वज्ञाद्या अन्तर्दशारगा देवताः ॥१९॥

शीतोष्णसुखदुःखेच्छाः सत्त्वरजस्तमोगुणाः वशिन्यादिशक्तयोऽष्टौ ॥२०॥

शब्दादितन्मात्राः पञ्चपुष्पबाणाः ॥२१॥

मन इक्षुधनुः ॥२२॥

रागः पाशः ॥२३॥

द्वेषोऽङ्कुशः ॥२४॥

अव्यक्तमहदहङ्काराः कामेश्वरीभगमालिन्योऽन्तस्त्रिकोणगा देवताः ॥२५॥

निरुपाधिका संविदेव कामेश्वरः ॥२६॥

सदानन्दपूर्णा स्वात्मैव परदेवता ललिता ॥२७॥

लौहित्यमेतस्य सर्वस्य विमर्शः ॥२८॥

अनन्यचित्तत्वेन च सिद्धिः ॥२९॥

भावनायाः क्रिया उपचाराः ॥३०॥

अहं त्वमस्ति नास्ति कर्त्तव्यमकर्त्तव्यमुपासितव्यमिति विकल्पानामात्मनि विलापनं होमः ॥३१॥

भावना विषयाणामभेदभावना तर्पणम् ॥३२॥

पञ्चदशतिथिरूपेण कालस्य परिणामावलोकनं पञ्चदश नित्याः ॥३३॥

एवं मुहूर्तत्रितयं मुहूर्तद्वितयं मुहूर्तमात्रं वा भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति स एव शिवयोगीति गद्यते ॥३४॥

कादिमतेनान्तश्चक्रभावनाः प्रतिपादिताः ॥३५॥

य एवं वेद सोऽथर्वशिरोऽधीते ॥३६॥

श्रीदेवीस्तोत्रपञ्चकम्

(१) लघुस्तुतिः

ऐन्द्रस्येव शरासनस्य दधती मध्ये ललाटं प्रभां
शौक्लीं कान्तिमनुष्णगोरिव शिरस्यातन्वती सर्वतः ।
एषासौ त्रिपुरा हृदि द्युतिरिवोष्णांशोस्सदाहस्थिताद्
छिन्द्यान्नस्सहसा पदैस्त्रिभिरघ ज्योतिर्मयी वाङ्मयी ॥१॥

या मात्रा त्रपुसीलतातनुलसत्तन्तुस्थितिस्पर्धिनी
वाग्बीजे प्रथमे स्थिता तव सदा तां मन्महे ते वयम् ।
शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमाः
ज्ञात्वेत्थं न पुनस्स्पृशन्ति जननीगर्भेऽर्भकत्वं नराः ॥२॥

दृष्ट्वा सम्भ्रमकारि वस्तु सहसा ऐ ऐ इति व्याहृतं
येनाकूतवशादपीह वरदे ! बिन्दुं विनाप्यक्षरम् ।
तस्यापि ध्रुवमेव देवि ! तरसा जाते तवानुग्रहे
वाचस्सूक्ति सुधार सद्रवमुचो निर्यान्ति वक्त्राम्बुजात् ॥३॥

यन्नित्ये ! तव कामराजपरं मन्त्राक्षरं निष्कलं
तस्सारस्वतमित्यवैति विरलः कश्चिद्बुधश्चेद्भुवि ।
आख्यानं प्रतिपर्वं सत्यतपसो यत्कीर्तयन्तो द्विजाः
प्रारम्भे प्रणवास्पदप्रणयितां नीत्वोच्चरन्ति स्फुटम् ॥४॥

यत्सद्यो वचसां प्रवृत्तिकरणे दृष्टप्रभावं बुधैः
तार्तीयं तदहं नमामि मनसा त्वद्बीजभिन्दुप्रभम् ।
अस्त्यौर्वोऽपि सरस्वतीमनुगतो जाड्याम्बुविच्छित्तये
गोशब्दो गिरि वर्तते सुनियतं योगं विना सिद्धिदः ॥५॥

एकैकं तव देवि ! बीजमनघं सव्यञ्जनाव्यञ्जनं
कूटस्थं यदि वा पृथक्क्रमगतं यद्वा स्थितं व्युत्क्रमात् ।
यं यं काममपेक्ष्य येन विधिना केनापि वा चिन्तितं
जप्तं वा सफलीकरोति सततं तं तं समस्तं नृणाम् ॥६॥

वामे पुस्तकधारिणीमभयदां साक्षस्रजं दक्षिणे
भक्तेभ्यो वरदान पेशलकरां कर्पूरकुन्दोज्वलाम् ।
उज्जृम्भाम्बुजपत्रकान्तनयनस्निग्धप्रभालोकिनीं
ये त्वामम्ब ! न शीलयन्ति मनसा तेषां कवित्वंकुतः ॥७॥

ये त्वां पाण्डुरपुण्डरीकपटलस्पष्टाभिराम प्रभां
सिञ्चन्तीममृतद्रवैरिव शिरोध्यायन्तिमूर्ध्नि स्थिताम् ।
अश्रान्ता विकटस्फुटाक्षरपदा निर्याति वक्त्राम्बुजात्
तेषां भारति ! भारती सुरसरित्कल्लोललोलोर्मिवत् ॥८॥
ये सिन्दूरपरागपिञ्जंपिहितां त्वत्तेजसाऽऽद्यामिमां
उर्वी चापि विलीनयावकरसप्रस्तारमग्नामिव ।
पश्यन्ति क्षणमप्यनन्यमनसस्तेषामनङ्गज्वर-
ल्कान्तस्त्रस्तकुरङ्गशावकदृशो वश्या भवन्ति स्फुटम् ॥९॥
चञ्चत्काञ्चनकुण्डलाङ्गदधरामाबद्धकाञ्चीस्रजं
ये त्वां चेतसि तन्दते क्षणमपि ध्यायन्ति कृत्वा स्थिराम् ।
तेषां वेश्मसु विभ्रमादहरहः स्फारीभवन्त्यश्चिरं
माद्यत्कुञ्जरकर्णतालतरलाः स्थैर्यं भजन्ते श्रियः ॥१०॥
आर्मत्या शशिखण्डमण्डितजटाजूटां नृमुण्डस्रजं
बन्धूकप्रसवारुणाम्बरधरां प्रेतासनाध्यासिनीम् ।
त्वां ध्यायन्ति चतुर्भुजां त्रिनयनामापीनतुङ्ग स्तनीं
मध्ये निम्नवलित्रयाङ्किततनुं त्वद्रूपसंवित्तये ॥११॥
जातोऽप्यल्पपरिच्छदे क्षितिभुजां सामान्यमात्रे कुले
निश्शेषावनिचक्रवर्तिपदवीं लब्ध्वा प्रतापोन्नतः ।
यद्विद्याधरबृन्दवन्दितपदश्श्रीवत्सराजोऽभवत्
देवि ! त्वच्चरणाम्बुजप्रणतिजः सोऽयं प्रसादोदयः ॥१२॥

चण्डि ! त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते बिल्वादिलोल्लुण्ठन-
त्रुट्यत्कण्टककोटिभिः परिचयं येषां न जग्मुः कराः ।
ते दण्डाङ्कुशचक्रचापकुलिशश्रीवत्समत्स्याङ्कितैः
जायन्ते पृथिवीभुजः कथमिवाम्भोजप्रभैः पाणिभिः ॥१३॥

विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तदितरे क्षीराज्यमध्वासवैः
त्वां देवि ! त्रिपुरे ? परापरमयीं सन्तर्प्य पूजाविधौ ।
यां यां प्रार्थयते मनः स्थिरधियां तेषां त एव ध्रुवं
तां तां सिद्धिमवाप्नुवन्ति तरसा विघ्नैरविघ्नी कृता ॥१४॥

शब्दानां जननी त्वमत्र भुवने वाग्वादिनीत्युच्यसे
त्वत्तः केशववासवप्रभृतयोऽप्याविर्भवन्ति स्फुटम् ।
लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरमे ब्रह्मादयस्तेऽप्यमी
स त्वं काचिदचिन्त्यरूपमहिमा शक्तिः परा गीयसे ॥१५॥

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिः स्वराः
त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथो त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः ।
यत्किञ्चिज्जगति त्रिधा नियमित वस्तु त्रिवर्गादिकं
तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्त्रेति ते तत्त्वतः ॥१६॥
लक्ष्मीं राजकुले जयां रणभुवि क्षेमङ्करीमध्वनि
क्रव्याददि्वपसर्पभाजि शबरीं कान्तारदुर्गे गिरौ ।
भूतप्रेतपिशाचजम्बुकभये स्मृत्वा महाभैरवीं
व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदस्तारां च तोयप्लवे ॥१७॥
माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कला मालिनी
मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी ।
शक्तिशङ्करवल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी
ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यसि ॥१८॥
आईपल्लवितैः परस्परयुतैर्द्वित्रक्रमाद्यक्षरै
काद्यैः क्षान्तगतैस्स्वरादिभिरथ क्षान्तैश्च तैस्सस्वरैः ।
नामानि त्रिपुरे भवन्ति खलु यान्यत्यगुह्यानि ते
तेभ्यो भैरवपत्नि ! विंशतिसहस्रेभ्यः परेभ्यो नमः ॥१९॥
वोद्धव्या निपुणं बुधैस्स्तुतिरियं कृत्वा मनस्तद्गतं
भारत्यास्त्रिपुरेत्यनन्यमनसा यत्राद्यवृत्ते स्फुटम् ।
एकद्वित्रिपदक्रमेण कथितस्तत्पादसङ्ख्याक्षरैः
मन्त्रोद्धार विधिर्विशेपसहितस्सत्सम्प्रदायान्वितः ॥२०॥
सावद्यं निरवद्यमस्तु यदिवा किं वानया चिन्तया
नूनं स्तोत्रमिदं पठिष्यति जनो यस्यास्ति भक्तिस्त्वयि ।
सञ्चिन्त्यापि लघुत्वमात्मनि दृढं सञ्जायमान हठात्
त्वद्भक्त्या मुखरीकृतेन रचितं यस्मान्मयापि ध्रुवम् ॥२१॥

(२) चर्चास्तवः

सौन्दर्यविभ्रमभुवो भुवनाधिपत्य-
सङ्कल्पकल्पतरवस्त्रिपुरे ! जयन्ति !
एते कवित्वकुमुदप्रकरावबोध-
पूर्णेन्दवस्त्वयि जगज्जननि ! प्रणामाः ॥१॥
देवि ! स्तुतिव्यतिकरे कृतबुद्धयस्ते
वाचस्पतिप्रभृतयोऽपि जडीभवन्ति ।
तस्मान्निसर्गजडिमा कतमोऽहमत्र
स्तोत्रं तव त्रिपुरतापनपत्नि ! कर्तुम् ॥२॥

मातस्तथापि भवतीं भवतीव्रताप-
विच्छित्तये स्तवमहार्णवकर्णधारः ।
स्तोतुं भवानि ! स भवच्चरणारविन्द-
भक्तिग्रहः किमपि मां मुखरीकरोति ॥३॥
सूते जगन्ति भवती भवती बिभर्ति
जागर्ति तत्क्षयकृते भवती भवानि ! ।
मोहं भिनत्ति भवती भवती रुणद्धि
लीलायितं जयति चित्रमिदं भवत्याः ॥४॥
यस्मिन्मनागपि नवाम्बुजगौरीं
गौरीं प्रसादमधुरां दृशमादधासि ।
तस्मिन्निरन्तरमनङ्गशरावकीर्ण-
सीमन्तिनीनयनसन्ततयः पतन्ति ॥५॥
पृथ्वीभुजोऽप्युदयनप्रभवस्य तस्य
विद्याधरप्रणतिचुम्बितपादपीठः ।
तच्चक्रवर्तिपदवीप्रणयस्स एषः
त्वत्पादपङ्कजरजः कणजः प्रसादः ॥६॥
त्वत्पादपङ्कजरज ः प्रणिपातपूर्वैः
पुण्यैरनल्पमतिभिः कृतिभिः कवीन्द्रैः ।
क्षीरक्षपाकरदुकूलहिमावदाता
कैरप्यवापि भुवनत्रितयेऽपि कीर्तिः ॥७॥
कल्पद्रुमप्रसवकल्पितचित्रपूजां
उद्दीपितप्रियतमामदरक्तगीतिम् ।
नित्यं भवानि ! भवतीमुपवीणयन्ति
विद्याधराः कनकशैलगुहागृहेषु ॥८॥
लक्ष्मीवशीकरणकर्मणि कामिनीनां
आकर्षणव्यतिकरेषु च सिद्धमन्त्रः ।
नीरन्ध्रमोहतिमिरच्छिदुरप्रदीपो,
देवि ! त्वदङ्घ्रि जनितो जयतिः प्रसाद ॥९॥
देवि ! त्वदङ्घ्रिनखरत्न भवो मयूखाः
प्रत्यग्रमौक्तिकरुचो मुदमुद्वहन्ति ।
सेवानतिव्यतिकरे सुरसुन्दरीणां
सीमन्तसीम्निकुसुमस्तव कायितं यैः ॥१०॥

मूर्ध्नि स्फुरत्तुहिनदीधितिदीप्तिदीप्तं
मध्ये ललाटममरायुधरश्मिचित्रम् ।
हृच्चक्रचुम्बि हुतभुक्कणिकानुकारि
ज्योतिर्यदेतदिदमम्ब ! तव स्वरूपम् ॥११॥
रूपं तव स्फुरितचन्द्रमरीचिगौरं
आलोकते शिरसि वागधिदैवतं यः ।
निस्सीमसूक्तिरचनामृतनिर्झरस्य
तस्य प्रसाद मधुराः प्रसरन्ति वाचः ॥१२॥
सिन्दूरपांसुपटलच्छुरितामिव द्यां
त्वत्तेजसा जतुरसस्नपितामिवोर्वीम ।
यः पश्यति क्षणमपि त्रिपुरे विहाय
व्रीडां मृडानि ! सुदृशस्तमनुद्रवन्ति ॥१३॥
मातर्मुहूर्तमपि यः स्मरति स्वरूपं
लाक्षारसप्रसरतन्तुनिभं भवत्याः ।
ध्यायन्त्यनन्यमनसस्तमनङ्गतप्ताः
प्रद्युम्नसीम्नि सुभगत्वगुणं तरुण्यः ॥१४॥
योऽयं चकास्ति गगनार्णवरत्नमिन्दुः
योऽयं सुरासुरगुरुः पुरुषः पुराणः ।
यद्भागमर्धमिदमन्धकसूदनस्य
देवि ! त्वमेव तदिति प्रतिपादयन्ति ॥१५॥
इच्छानुरूपमनुरूपगुणप्रकर्ष-
सङ्कर्षिणि ! त्वमभिमृश्य यदा बिभर्षि ।
जायेत स त्रिभवनैकगुरुस्तदानी
देवश्शिवोऽपि भुवनत्रयसूत्रधारः ॥१६॥
ध्यातासि हेमवति ! येन हिमांशुरश्मि-
मालामलद्युतिरकल्मषमानसेन ।
तस्याविलम्बमनवद्यमनन्तकल्पं
अल्पैर्दिनैस्सृजसि सुन्दरि ! वाग्विलासम् ॥१७॥
आधारमारुतनिरोधवशेन येषां
सिन्दूररञ्जितसरोजगुणानुकारि ।
दीप्तं हृदि स्फुरति देवि वपुस्त्वदीयं
ध्यायन्ति तानिह समीहितसिद्धिसार्थाः ॥१८॥

ये चिन्तयन्त्यरुणमण्डलमध्यवर्ति
रूपं तावाम्ब ! नवयावकपङ्कपिङ्गम् ।
तेषां सदैव कुसुमायुधबाणभिन्न-
वक्षः स्थला मृगदृशो वशगा भवन्ति ॥१९॥
त्वामैन्दवीमिव कलामनुकालदेशं
उद्भासिताम्बरतलामवलोकयन्तः ।
सद्यो भवानि ! सुधियः कवयो भवन्ति
त्वं भावनाहितधियां कुलकामधेनुः ॥२०॥
शर्वाणि ! सर्वं जनवन्दितपादपद्मे !
पद्मच्छदद्युतिविडम्बितनेत्रलक्ष्मि !
निष्पापमूर्तिजनमानसराजहंसि !
हंसि त्वमापदमनेकविधां जनस्य ॥२१॥
उत्तप्तहेमरुचिरे ! त्रिपुरे ! पुनीहि
चेतश्चिरन्तनमघौघवनं लुनीहि ।
कारागृहे निगलबन्धनयन्त्रितस्य
त्वत्संस्मृतौ झडिति मे निगलास्त्रुटन्ति ॥२२॥
त्वां व्यापिनीति सुमना इति कुण्डलीति
त्वां कामिनीति कमलेति कलावतीति ।
त्वां मालिनीति ललितेत्यपराजितेति
देवि ! स्तुवन्ति विजयेति जयेत्युमेति ॥२३॥
उद्दामकामपरमार्थसरोजखण्ड-
चण्डद्युतिद्युतिमपासितषड्विकाराम् ।
मोहद्विपेन्द्रकदनोद्यतबोधसिंह-
लीलागुहां भगवतीं त्रिपुरां नमामि ॥२४॥
गणेशवटुकस्तुता रतिसहायकामान्विता
स्मरारिवरविष्टरा कुसुमबाणबाणैर्युता ।
अनङ्गकुसुमादिभिः परिवृता च सिद्धैस्त्रिभिः
कदम्बवनमध्यगा त्रिपुरसुन्दरी पातु नः ॥२५॥
रुद्राणि ! विद्रुममयीं प्रतिमामिव त्वां
ये चिन्तयन्त्यरुणकान्तिमनन्यरूपाम् ।
तानेत्य पक्ष्मलदृशः प्रसभं भजन्ते
कण्ठावसक्तमृदुबाहुलतास्तरुण्यः ॥२६॥

त्वद्रूपैकनिरूपणप्रणयितावन्धो दृशोस्त्वद्गुण-
ग्रामाकर्णनरागिता श्रवणयोस्त्वत्संस्मृतिश्चेतसि ।
त्वत्पादार्चनचातुरी कर युगे त्वत्कीर्तितं वाचि मे
कुत्रा त्वदुपासनव्यसनिता मे देवि मा शाम्यतु ॥२७॥
त्वद्रूपमुल्लसितदाडिमपुष्परक्त
उद्भावयेन्मदनदैवतमक्षरं यः ।
तं रूपहीनमपि मन्मथनिर्विशेषं
आलोकयन्त्युरुनितम्बतटास्तरुण्यः ॥२८॥
ब्रह्मेन्द्ररुद्रहरिचन्द्रसहस्ररश्मि-
स्कन्दद्विपाननहुताशनवन्दितायै ।
वागीश्वरि ! त्रिभुवनेश्वरि ! विश्वमातः
अन्तर्बहिश्च कृतसंस्थितये नमस्ते ॥२९॥
यः स्तोत्रमेतदनुवासरमीश्वरायाः
श्रेयस्करं पठति वा यदिवा श्रृणोति ।
तस्येप्सितं फलति राजभिरीड्यतेऽसौ
जायेत स प्रियतमो मदिरेक्षणानाम् ॥३०॥
॥ इति चर्चास्तवः द्वितीयः ॥

(३) घटस्तवः

आनन्दमन्थरपुरन्दरमुक्तमाल्य
मौलौ हठेन निहितं महिषासुरस्य ।
पादाम्बुजं भवतु मे विजयाय मञ्जु
मञ्जीरशिञ्जितमनोहरमम्बिकायाः ॥१॥
देवि ! त्र्यम्बकपत्नि ! पार्वति ! सति ! त्रैलोक्यमातश्शिवे !
शर्वाणि ! त्रिपुरे ! मृडानि ! वरदे ! रुद्राणि ! कात्यायनि !
भीमे ! भैरवि ! चण्डि ! शर्वरिकले ! कालक्षये ! शूलिनि !
त्वत्पादप्रणयाननन्यासमनसः पर्याकुलान्पाहि नः ॥२॥
देवि ! त्वां सकृदेव यः प्रणमति क्षोणीभृतस्तं नम-
न्त्याजन्मस्फुरदङ्घ्रिपीठविलुठत्कोटीरकोटिच्छटाः ।
यस्त्वामर्चति सोऽर्च्यते सुरगणैर्यस्स्तौति स स्तूयते
यस्त्वां ध्यायाति तं स्मरार्तिविधुरा ध्यायन्ति वामभ्रुव ॥३॥
उन्मत्ता इव सग्रहा इव विषव्यासक्तमूर्छा इव
प्राप्तप्रौढमदा इवार्तिविरहग्रस्ता इवार्ता इव ।

ये ध्यायन्ति हि शैलराजतनयां धन्यास्त एवाग्रतः
त्यक्तोपाधिविवृद्धरागमनसो ध्यायन्ति तान् सुभ्रुवः ॥४॥

ध्यायन्ति ये क्षणमपि त्रिपुरे ! हृदि त्वां
लावण्ययौवनधनैरपि विप्रयुक्ताः ।
ते विस्फुरन्ति ललितायतलोचनानां
चित्तैकभित्तिलिखितप्रतिमाः पुमांसः ॥५॥

एतं किं नु दृशा पिवाम्युत विशाम्यस्याङ्गमङ्गैर्निजैः
किं वाऽमुं निगराम्यनेन सहसा किं वैकतामाश्रये ।
यस्येत्थं विवशो विकल्पललिताकूतेन योषिज्जनः
किं तद्यन्न करोति देवि ! हृदये यस्य त्वमावर्तसे ॥६॥

विश्वव्यापिनि यद्वदीश्वर इति स्थाणावनन्याश्रयः
शब्दशक्तिरिति त्रिलोकजननि ! त्वय्येव तथ्यस्थितिः ।
इत्थं सत्यपि शक्नुवन्ति यदिमाः क्षुद्रा रुजो बाधितु
त्वद्भक्तानपि न क्षिणोषि च रुषा तद्देवि ! चित्रं महत् ॥७॥

इन्दोर्मध्यगतां मृगाङ्कसदृशच्छायां मनोहारिणीं
पाण्डूत्फुल्लसरोरुहासनगतां स्निग्धप्रदीप्तच्छविम् ।
वर्षन्तीममृतं भवानि ! भवतीं ध्यायन्ति ये देहिनः
ते निर्मुक्तरुजो भवन्ति रिपवः प्रोज्झन्ति तान् दूरतः ॥८॥

पूर्णेन्दोश्शकलैरिवातिबहलैः पीयूष पूरैरिव
क्षीराब्धेर्लहरीभरैरिव सुधापङ्कस्य पिण्डैरिव ।
प्रालेयैरिव निर्मितं तव वपुर्ध्यायन्ति ये श्रद्धया
चित्तान्तर्निहितार्तितापविपदस्ते सम्पदं बिभ्रति ॥९॥

ये संस्मरन्ति तरलां सहसोल्लसन्तीं
त्वां ग्रन्थिपञ्चकभिदं तरुणार्कशोणाम् ।
रागार्णवे बहलरागिणि मज्जयन्तीं
कृत्स्नं जगद्दधति चेतासि तान् मृगाक्ष्यः ॥१०॥

लाक्षारसस्नपितपङ्कजतन्तुतन्वीं
अन्तः स्मरत्यनुदिनं भवतीं भवानि ।
यस्तं स्मरप्रतिममप्रतिमस्वरूपाः
नेत्रोत्पलैर्मृगदृशो भृशमर्चयन्ति ॥११॥

स्तुभस्त्वां वाचमव्यक्तां हिमकुन्देन्दुरोचिषम् ।
कदम्बमालां बिभ्राणामापादतललम्बिनीम् ॥१२॥

मूर्ध्नीन्दोस्सितपङ्कजासनगतां प्रालेय पाण्डुत्विषं
वर्षन्तीममृतं सरोरुहभुवो वक्त्रेऽपि रन्ध्रेऽपि च ।
अच्छिन्ना च मनोहरा च ललिता चातिप्रसन्नापि च
त्वामेवं स्मरतस्स्मरारिदयिते वाक्सर्वतो वल्गति ॥१३॥
ददातीष्टान् भोगान् क्षपयति रिपून् हन्ति विपदो
दहत्याधीन् व्याधीन् शमयति सुखानि प्रतनुते ।
हठादन्तर्दुःखं दलयति पिनष्टीष्टविरहं
सकृद्ध्याता देवी किमिव निरवद्य न कुरुते ॥१४॥
यस्त्वां ध्यायति वेत्ति विन्दति जपत्यालोकते चिन्तय
त्यन्वेति प्रतिपद्यते कलयति स्तौत्याश्रयत्यर्चति ।
यश्च त्र्यम्बकवल्लभे ! तव गुणानाकर्णयत्यादरात्
तस्य श्रीर्न गृहादपैति विजयस्तस्याग्रतो धावति ॥१५॥
किं किं दुःखं दनुजदलिनि ! क्षीयते न स्मृतायां
का का कीर्तिः कुलकमलिनि ! ख्याप्यते न स्तुतायाम् ।
का का सिद्धिस्सुखरनुते । प्राप्यते नार्चितायां
कं कं योगं त्वयि न चिनुते चित्तमालाम्बितायाम ॥१६॥
ये देवि ! दुर्धरकृतान्तमुखान्तरस्थाः
ये कालि ! कालघनपाशनितान्तबद्धाः ।
ये चण्डि ! चण्डगुरुकल्मषसिन्धुमग्नाः
तान् पासि मोचयसि तारयसि स्मृतैव ॥१७॥
लक्ष्मी वशीकरण चूर्णसहोदराणि
त्वत्पादपङ्कजरजांसि चिरं जयन्ति ।
यानि प्रणाममिलितानि नृणां ललाटे
लुम्पन्ति दैवलिखितानि दुरक्षराणि ॥१८॥
रे मूढाः ! किमयं वृथेव तपसा कायः परिक्लिश्यते
यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः किमितरे रिक्तीक्रियन्ते गृहाः ।
भक्तिश्चेदविनाशिनी भगवतीपादद्वयी सेव्यतां
उन्निद्राम्बुरुहातपत्रसुभगा लक्ष्मीः पुरो धावति ॥१९॥
याचे न कच्चन न कञ्चन वञ्चयामि
सेवे न कञ्चन निरस्तसमस्तदैन्यः ।
श्लक्ष्णं वसे मधुरमद्मि भजे वरस्त्रीः
देवी हृदि स्फुरति मे कुलकामधेनुः ॥२०॥

नमामि यामिनीनाथलेखालङ्कृतकुन्तलाम् ।
भवानीं भवसन्तापनिर्वापणसुधानदीम् ।।२१।।

।। इति घटस्तवः तृतीयः ।।

(४) अम्बास्तवः

यामामनन्ति मनुयः प्रकृतिं पुराणीं
विद्येति यां श्रुतिरहस्यविदो वदन्ति ।
तामर्धपल्लवितशङ्कररूपमुद्रां
देवीमनन्यशरणश्शरणं प्रपद्ये ।।१।।

अम्ब स्तवेषु तव तावदकर्तृकाणि
कुण्ठीभवन्ति वचसामपि गुम्भनानि ।
डिम्भस्य मे स्तुतिरसावसमञ्जसापि
वात्सल्यनिघ्नहृदयां भवतीं धिनोतु ।।२।।

व्योमेति बिन्दुरिति नाद इतीन्दुलेखा-
रूपेति वाग्भवतनूरिति मातृकेति ।
निस्स्यन्दमानसुखबोध सुधास्वरूपा
विद्योतसे मनसि भाग्यवतां जनानाम् ।।३।।

आविर्भवत्पुलकसन्ततिभिश्शरीरैः
निस्स्यन्दमान सलिलैर्नयनैश्च नित्यम् ।
वाग्भिश्च गन्ददपदाभिरुपासते ये
पादौ तवाम्ब ! भुवनेषु त एव धन्याः ।।४।।

वक्त्रं यदुद्यतमभिष्टुतये भवत्याः
तुभ्यं नमो यदपि देवि ! शिरः करोति ।
चेतश्च यत्त्वयि परायणमम्ब ! तानि
कस्यापि कैरपि भवन्ति तपोविशेषैः ।।५।।

मूलालवालकुहरादुदिता भवानि !
निर्भिद्य षट्सरसिजानि तटिल्लतेव ।
भूयोऽपि तत्र विशसि ध्रुवमण्डलेन्दु-
निस्स्यन्दमानपरमामृततोयरूपा ।।६।।

दग्धं यदा मदनमेकमनेकधा ते
मुग्धः कटाक्षविधिरङ्कुरयाञ्चकार ।
धत्ते तदाप्रभृति देवि ललाटनेत्रं
सत्यं ह्रियैव मुकुलीकृतमिन्दुमौलेः ।।७।।

अज्ञातसम्भवमनाकलितान्ववायं
भिक्षुं कपालिनमवाससमद्वितीयम् ।
पूर्वं करग्रहणमङ्गलतो भवत्याः
शम्भुं क एव बुबुधे गिरिराजकन्ये ॥८॥
चर्माम्बरं च शवभस्मविलेपनं च
भिक्षाटनं च नटनं च परेतभूमौ ।
वेतालसंहतिपरिग्रहता च शम्भोः
शोभां बिभर्ति गिरिजे ! तव साहचर्यात् ॥९॥
कल्पोपसंहरणकेलिपु पण्डितानि
चण्डानि खण्डपरशोरपि ताण्डवानि ।
आलोकनेन तव कोमलितानि मातः !
लास्यात्मना परिणमन्ति जगद्विभूत्यै ॥१०॥
जन्तोरपश्चिमतनोस्सति कर्मसाम्ये
निश्शेषपाशपटलच्छिदुरा निमेषात् ।
कल्याणि ! देशिककटाक्षसमाश्रयेण
कारुण्यतो भवति शम्भववेधदीक्षा ॥११॥
मुक्ताविभूषणवती नवविद्रुमाभा
यच्चेतसि स्फुरसि तारकितेव सन्ध्या ।
एकस्स एव भुवनत्रयसुन्दरीणां
कन्दर्पतां व्रजति पञ्चशरीं विनापि ॥१२॥
ये भावयन्त्यमृतवाहिभिरंशुजालै
आप्यायमानभुवनाममृतेश्वरीं त्वाम् ।
ते लङ्घयन्ति ननु मातरलङ्घनीयां
ब्रह्मादिभिस्सुरवरैरपि कालकक्षाम् ॥१३॥
यस्स्फाटिकाक्षगुणपुस्तककुण्डिकाढ्यां
व्याख्यासमुद्यतकरां शरदिन्दुशुभ्राम् ।
पद्मासनां च हृदये भवतीमुपास्ते
मातः ! स विश्वकवितार्किकचक्रवर्ती ॥१४॥
बर्हावतंसयुतबर्बरकेशपाशां
गुञ्जावलीकृतघनस्तनहारशोभाम् ।
श्यामां प्रवालवदनां सुकुमारहस्तां
त्वामेव नौमि शबरीं शबरस्य जायाम् ॥१५॥

अर्धेन किं नवलताललितेन मुग्धे
क्रीतं विभोः परुषमर्धमिदं त्वयेति ।
आलीजनमस्य परिहासवचांसि मन्ये
मन्दस्मितेन तव देवि ! जडीभवन्ति ॥१६॥
ब्रह्माण्डबुद्बुदकदम्बक सङ्कुलोऽयं
मायोदधिर्वि विधतत्त्वतरङ्गमालाः ।
आश्चर्यमम्ब ! झडिति प्रलयं प्रयाति
त्वध्द्यानसन्ततिमहावडबामुखाग्नौ ॥१७॥
दाक्षायणीति कुटिलेति कुहारिणीति
कात्यायनीति कमलेति कलावतीति ।
एका सती भगवती परमार्थतोऽपि
संदृश्यसे बहुविधा ननु नर्तकीव ॥१८॥
आनन्दलक्षणमनाहतनाम्नि देशे
नादात्मना परिणतं तव रूपमीशे ।
प्रत्यङ्मुखेन मनसा परिचीयमानं
शंसन्ति नेत्रसलिलैः पुलकैश्च धन्याः ॥१९॥
त्वं चन्द्रिका शशिनि तिग्मरुचौ रुचिस्त्वं
त्वं चेतनासि पुरुषे पवने बलं त्वम् ।
त्वं स्वादुतासि सलिले शिखिनि त्वमूष्मा
निस्सारमेव निखिलं त्वदृते यदि स्यात् ॥२०॥
ज्योतींषि यद्दिव चरन्ति यदन्तरिक्षं
सूते पयांसि यदहिर्धरणीं च धत्ते ।
यद्वाति वायुरनलो यदुदर्चिरास्ते
तत्सर्वमम्ब ! तव केवलमाज्ञयैव ॥२१॥
सङ्कोचमिच्छसि यदा गिरिजे ! तदानीं
वाक्तर्कयोस्त्वमसि भूमिरनामरूपा ।
यद्वा विकासमुपासि यदा तदानीं
त्वन्नामरूपगणनास्सुकरा भवन्ति ॥२२॥
भोगाय देवि ! भवतीं कृतिनः प्रणम्य
भ्रूकिङ्करीकृतसरोजगृहास्सहस्रम् ।
चिन्तामणिप्रचयकल्पितकेलिशैले
कल्पद्रुमोपवन एव चिरं रमन्ते ॥२३॥

हर्तुं त्वमेव भवसि त्वदधीनमीशे
संसारतापमखिलं दयया पशूनाम् ।
वैकर्तनी किरणसंहतिरेव शक्ता
धर्मं निजं शमयितुं निजयैव वृष्ट्या ॥२४॥
शक्तिश्शरीरमधिदैवतमन्तरात्मा
ज्ञानं क्रिया करणमानसजालमिच्छा ।
ऐश्वर्यमायतनमावरणानि च त्वं
किं तन्न यद्भवसि देवि शशाङ्कमौलेः ॥२५॥
भूमौ निवृत्तिरुदिता पयसि प्रतिष्ठा
विद्याऽनले मरुति शान्तिरतीव कान्तिः ।
व्योम्नीतिः याः किल कलाः कलयन्ति विश्वं
तासां हि दूरतरमम्ब ! पदं त्वदीयम् ॥२६॥
यावत्पदं पदसरोजयुगं त्वदीयं
नाङ्गीकरोति हृदयेषु जगच्छरण्ये !
तावद्विकल्पजटिलाः कुटिलप्रकाराः
तर्कग्रहास्समयिनां प्रलयं न यान्ति ॥२७॥
निर्देवयानपितृयानविहारमेके
कृत्वा मनः करणमण्डलसार्वभौमम् ।
ध्याने निवेश्य तव कारणपञ्चकस्य
पर्वाणि पार्वति ! नयन्ति निजासनत्वम् ॥२८॥
स्थूलासु मूर्तिषु महीप्रमुखासु मूर्तेः
कस्याश्चनापि तव वैभवमम्ब ! यस्याः ।
पत्या गिरामपि न शक्यत एव वक्तुं
सापि स्तुता किल भयेति तितिक्षितव्यम् ॥२९॥
कालाग्निकोटिरुचिमम्ब षडध्वशुद्धौ
आप्लावनेषु भवतीममृतौघवृष्टिम् ।
श्यामां घनस्तनतटां शकलीकृताघां
ध्यायन्त एव जगतां गुरवो भवन्ति ॥३०॥
विद्यां परां कतिचिदम्बरमम्ब ! केचित्
आनन्दमेव कतिचित्कतिचिच्च मायाम् ।
त्वां विश्वमाहुरपरे वयमामनामः
साक्षादपारकरुणां गुरुमूर्तिमेव ॥३१॥

कुवलयदलनीलं बर्बरस्निग्धकेशं
पृथुतरकुचभाराक्रान्तकान्तावलग्नम् ।
किमिह बहुभिरुक्तैस्त्वत्स्वरूपं परं नः
सकलजननि ! मातः ! सन्ततं सन्निधत्ताम् ॥३२॥

॥ इत्यम्बास्तवः चतुर्थः ॥

(५) सकलजननी स्तोत्रम्

अजानन्तो यान्ति क्षयमवशमन्योन्यकलहैः
अमी मायाग्रन्थौ तव परिलुठन्तस्समथिनः ।
जगन्मातः ! जन्मज्वरभयतमः कौमुदि ! वयं
नमस्ते कुर्वाणाश्शरणमुपयामो भगवतीम् ॥१॥
वचस्तर्कागम्यस्वरसपरमानन्दविभव-
प्रबोधाकाराय द्युतितुलितनीलोत्पलरुचे ।
शिवाद्याराध्याय स्तनभरविनम्राय सततं
नमस्तस्मै कस्मैचन भवतु मुग्धाय महसे ॥२॥
अनाद्यन्ताभेदप्रणयरसिकापि प्रणयिनी
शिवस्यासीर्यत्त्वं परिणयविधौ देवि ! गृहिणी ।
सवित्री भूतानामपि यदुदभूश्शैलतनया
तदेतत्संसारप्रणयनमहानाटकमुखम् ॥३॥
ब्रुवन्त्येके तत्त्वं भगवति सदन्ये विदुरसत्
परे मातः ! प्राहुस्तव सदसदन्ये सुकवयः ।
परे नैतत्सर्वं समभिदधते देवि ! सुधियः
तदेतत्त्वन्मायाविलसितमशेषं ननु शिवे ॥४॥
लुठद्गुञ्जाहारस्तनभरनमन्मध्यलतिकां
उदञ्चद्धर्माम्भः कणगुणित वक्त्राम्बुजरुचम् ।
शिवं पार्थत्राण प्रवणमृगयाकारगुणितं
शिवामन्वग्यान्तीं शरणमहमन्वेमि शबरीम् ॥५॥
मिथः केशाकेशिप्रथननिधनास्तर्कघनाः
बहुश्रद्धाभक्ति प्रणतिविषयाश्शास्त्रविधयः ।
प्रसीद प्रत्यक्षीभव गिरिसुते ! देहि शरणं
निरालम्बं चेतः परिलुठति पारिप्लवमिदम् ॥६॥
शुनां वा वह्नेर्वा खगपरिषदो वा यदशनं
कदा केन क्वेति क्वचिदपि न कश्चित्कलयति ।

अमुष्मिन् विश्वासं विजहिहि ममह्नाय वपुषि
प्रपद्येथाश्चेतः ! सकलजननीमेव शरणम् ॥७॥
तटित्कोटिज्योतिर्द्युतिदलितषड्ग्रन्थिगहनं
प्रविष्टं स्वाधारं पुनरपि सुधावृष्टिवपुषा ।
किमप्यष्टाविंशत्किरणसकलीभूतमनिशं
भजे धाम श्यामं कुचभरनतं बर्बरकचम् ॥८॥
चतुष्पत्रान्तष्षड्दलपुटभगान्तस्स्त्रि वलय-
स्फुरद्विद्युद्वह्निद्युमणिनियुताभद्युतिलते ।
षडश्रं भित्त्वाऽऽदौ दशदलमथ द्वादशदलं
कलाश्रं च द्व्यश्रं गतवति नमस्ते गिरिसुते ॥९॥
कुलं केचित्प्राहुर्वपुरकुलमन्ये तत्र बुधाः
परे तत्संभेदं समभिदधते कौलमपरे ।
चतुर्णामप्येषामुपरि किमपि प्राहुरपरे
महामाये ! तत्त्वं तवकथममी निश्चिनुमहे ॥१०॥
षडध्वारण्यानीं प्रलयरविकोटिप्रतिरुचा
रुचा भस्मीकृत्य स्वपदकमलप्रह्वशिरसाम् ।
वितन्वानश्शैवं किमपि वपुरिन्दीवररुचिः
कुचाध्यामानम्रस्तव पुरुषकारो विजयते ॥११॥
प्रकाशानन्दाभ्यामविदितचरीं मध्यपदवीं
प्रविश्यैतद्द्वन्द्वं रवि शशिसमाख्यं कबलयन् ।
प्रपद्योर्ध्वं नादं लयदहन भस्मीकृतकुलः
प्रसादात्ते जन्तुश्शिवम कुलमम्ब ! प्रविशति ॥१२॥
मनुष्यास्तिर्यञ्चो मरुत इति लोकत्रयमिदं
भवाम्भोधौ मग्नं त्रिगुणलहरीकोटिलुठितम् ।
कटाक्षश्चेद्यत्र क्वचन तव मातः करुणया
शरीरी सद्योऽयं व्रजति परमानन्दतनुताम् ॥१३॥
प्रियङ्गुश्यामाङ्गीमरुणतरवास ≍ किसलयाँ
समुन्मीलन्मुक्ताफल वहलनेपथ्यसुभगाम् ।
स्तनद्वन्द्वस्फारस्तबकनमितां कल्पलतिकां
सकृद्ध्यायन्तस्त्वां दधति शिवचिन्तामणिपदम् ॥१४॥
षडाधारावर्तैरपरिमितमन्त्रोर्मि पटलैः
लसन्मुद्राफेनैर्बहुविधचलद्दैवतझसैः ।

क्रमस्त्रोतोभिस्त्वं वहसि परनादामृतनदी
भवानि ! प्रत्यग्रा शिवचिदमृताब्धिप्रणयिनी ॥१५॥
महीपाथोवह्निश्वसनवियदात्मेन्दुरविभिः
वपुर्भिर्ग्रस्ताशैरपि तव कियानम्ब ! महिमा ।
अमून्यालोल्यन्ते भगवति ! न कुत्राप्यणुतमां
अवस्थां प्राप्तानि त्वयि तु परमव्योमवपुषि ॥१६॥
कलामाज्ञां प्रज्ञां समयमनुभूतिं समरसं
गुरुं पारम्पर्यं विनयमुपदेशं शिवपदम् ।
प्रमाणं निर्वाणं प्रकृतिमभिभूतिं परगुहां
विधिं विद्यामाहुस्सकलजननीमेव मुनयः ॥१७॥
प्रलीने शब्दौघे तदनु विरते बिन्दुविभवे
ततस्तत्त्वे चाष्टध्वनिभिरनपायिन्यधिगते ।
श्रिते शाक्ते पर्वण्यनुकलितचिन्मात्रगहनां
स्वसंवित्तिं योगी रसयति शिवाख्यां भगवतीम् ॥१८॥
परानन्दाकारां निरवधिशिवैश्वर्यवपुषं
निराकारां ज्ञानप्रकृतिमपरिच्छिन्नकरुणाम् ।
सवित्रीं लोकानां निरतिशयधामास्पदपदां
भवो वा मोक्षो वा भवतु भवतीमेव भजताम् ॥१९॥
जगत्काये कृत्वा तदपि हृदये तच्च पुरुषे
पुमांसं बिन्दुस्थं तदपि वियदाख्ये च गहने ।
तदेतद्ज्ञानाख्ये तदपि परमानन्दगहने
महाव्योमाकारे त्वदनुभवशीलो विजयते ॥२०॥
विधे ! विद्ये ! विद्ये ! विविधसमये ! वेदगुलिके !
विचित्रे ! विश्वाद्ये ! विनयसुलभे ! वेदजननि !
शिवज्ञे ! शूलस्थे ! शिवपदवदान्ये ! शिवनिधे !
शिवे ! मातः ! मह्यं त्वयि वितर भक्तिं निरुपमाम् ॥२१॥
विधेर्मुण्डं हृत्वा यदकुरुत पात्रं करतले
हरिं शूलप्रोतं यदगमयदंसाभरणताम् ।
अलंचक्रे कण्ठं यदपि गरलेनाम्ब ! गिरिशः
शिवस्थायाश्शक्तेस्तदिदमखिलं ते विलसितम् ॥२२॥
विरिञ्च्याख्या मातः ! स्सृजसि हरिसंज्ञा त्वमसि
त्रिलोकीं रुद्राख्या हरसि विदधासीश्वरदशाम् ।

भवन्ती नादाख्या विहरसि च पाशौघदलनी
त्वमेवैकाऽनेका भवसि कृतिभेदैर्गिरिसुते ॥२३॥
मुनीनां चेतोभिः प्रमुदितकषायैरपि मनाक्
अशक्यं संस्प्रष्टुं चकितचकितैरम्ब ! सततम् ।
श्रुतीनां मूर्धानं प्रकृतिकठिनाः कोमलतरे
कथं ते विन्दन्ते पदकिसलये पार्वतिपदम् ॥२४॥
तटिद्वल्लीं नित्याममृतसरितं पाररहितां
मलोत्तीर्णां ज्योत्स्नां प्रकृतिमगुणग्रन्थिगहनाम् ।
गिरां दूरां विद्यामविनतकुचां विश्वजननीं
अपर्यन्तां लक्ष्मीमभिदधति सन्तो भगवतीम् ॥२५॥
शरीरं क्षित्यम्भः प्रभृतिरचितं केवलमचित्
सुखं दुःखं चायं कलयति पुमांश्चेतन इति ।
स्फुटं जानानोऽपि प्रभवति न देही रहयितुं
शरीराहङ्कारं तव समयबाह्यो गिरिसुते ॥२६॥
पिता माता भ्राता सुहृदनुचरस्सद्म गृहिणी
वपुः क्षेत्रं मित्रं धनमपि यदा मां विजहति ।
तदा मे भिन्दाना सपदि भयमोहान्धतमसं
महाज्योत्स्ने ! मातः ! भव करुणया सन्निधिकरी ॥२७॥
सुता दक्षस्यादौ किल सकलमातः ! त्वमुदभूः
सदोषं तं हित्वा तदनु गिरिराजस्य दुहिता ।
अनाद्यन्ता शम्भोरपृथगपि शक्तिर्भगवती
विवाहाज्जायाऽसीत्यहह चरितं वेत्ति तव कः ॥२८॥
कणास्त्वद्दीप्तीनां रवि शशिकृशानु प्रभृतयः
परं ब्रह्म क्षुद्रं तव नियतमानन्दकणिका ।
शिवादि क्षित्यन्तं त्रिवलयतनोस्सर्वमुदरे
तवास्ते भक्तस्य स्फुरसि हृदि चित्रं भगवति ॥२९॥
पुरः पश्चादन्तर्बहिरपरिमेयं परिमितं
परं स्थूलं सूक्ष्मं सकलमकलं गुह्यमगुहम् ।
दवीयो नेदीयस्सदसदिति विश्वं भगवती
सदा पश्यन्त्याख्यां वहसि भुवनक्षोभजननीम् ॥३०॥
प्रविश्य त्वन्मार्गं सहजदयया देशिकदृशा
षडध्वध्वान्तौघच्छिदुरगणनातीतकरुणाम् ।
परामाज्ञाकरां सपदि शिवयन्तीं शिवतनुं
स्वमात्मानं धन्याश्चिरमुपलभन्ते भगवतीम् ॥३१॥

मयूखाः पुष्णीव ज्वलन इव तद्दीप्तिकणिकाः
पयोधौ कल्लोलाः प्रतिहतमहिम्नीव पृषतः ।
उदेत्योदेत्याम्ब ! त्वयि स निजैस्सात्त्विकगुणैः
भजन्ते तत्त्वौघाः प्रशममनुकल्पं परवशाः ॥३२॥
विधुर्विष्णुब्रह्मा प्रकृतिरणुरात्मा दिनकरः
स्वभावो जैनेन्द्रस्सुगतमुनिराकाशमलिनः ।
शिवश्शक्तिश्चेति श्रुतिविषयतां तामुपगता
विकल्पैरेभिस्त्वामभिदधति सन्तो भगवतीम् ॥३३॥
शिवस्त्वं शक्तिस्त्वं त्वमसि समया त्वं समयिनी
त्वमात्मा त्वं दीक्षा त्वमयमणिमादिर्गुणगणः ।
अविद्या त्वं विद्या त्वमसि निखिलं त्वं किमपरं
पृथक्तत्वं त्वत्तो भगवति न वीक्षामह इमे ॥३४॥
त्वयासौ जानीते रचयति भवत्यैव सततं
त्वयैवेच्छत्यम्ब ! त्वमसि निखिला यस्यतनवः ।
जगत्साम्यं शम्भोर्वहसि परमव्योवपुषः
तथाप्यर्धं भूत्वा विहरसि शिवस्येति किमिदम् ॥३५॥
असङ्ख्यैः प्राचीनैर्जननि ! जननैः कर्मविलयात्
सकृज्जन्मन्यन्ते गुरुवपुषमासाद्य गिरिसम् ।
अवाप्याज्ञां शैवीं शिवतनुमपि त्वां विदितवान्
नयेयम् त्वत्पूजास्तुतिविरचनेनैव दिवसान ॥२६॥
यत् षट्पत्रं कमलमुदितं तस्य या कर्णिकाख्या
योनिस्तस्याः प्रथितमुदरे यत्तदोङ्कारपीठम् ।
तस्याप्यन्तः कुचभरनतां कुण्डलीति प्रसिद्धां
श्यामाकारां सकलजननीं सन्ततं भावयामि ॥३७॥
भुवि पयसि कृशानौ मारुते खे शशाङ्के
सवितरि यजमानेऽप्यष्टधा शक्तिरेका ।
वहसि कुचभराभ्यां याऽवनम्रापि विश्वं
सकलजननि ! सा त्वं पाहि मामित्यवाच्यम् ॥३८॥

॥ इति पञ्चस्तवी च समाप्ता सकलजननी स्तवः पञ्चमः ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

श्रीमन्महामुनिदुर्वासा विरचितम्

श्री त्रिपुरामहिम्नः स्तोत्रम्

---

(१)

श्रीमातस्त्रिपुरे परात्परतरे देवि त्रिलोकीमहा,
सौन्दर्यार्णवमन्थनोद्भवसुधाप्राचुर्यवर्णोज्ज्वलम् ।
उद्यद्भानुसहस्रनूतनजपापुष्पप्रभं ते वपुः,
स्वान्ते मे स्फुरतु त्रिलोक निलयं ज्योतिर्मयंवाङ्मयम् ।।

(२)

आदिक्षांतसमस्त वर्णसुमणिप्रोते वितानप्रभे
ब्रह्मादि प्रतिमाऽभिकीलितषडाधाराब्जकक्षोन्नते ।
ब्रह्माण्डाब्ज-महासने जननि ते मूर्ति भजे चिन्मयीं
सौषुम्णायत पीत पङ्कजमहामध्यत्रिकोणस्थिताम् ।।

(३)

"वन्दे वाग्भवमैन्दवात्मसदृशं वेदादिविद्यागिरो,
भाषा देशसमुद्भवाः पशुगताश्छन्दांसि सप्तस्वरान् ।
तालान्पञ्च महाध्वनीन्प्रकट्यत्यात्मप्रसारेण यत्त-
द्बीज पदवाक्यमान जनकं श्रीमातृके ते परम् ।।"

(४)

"त्रैलोक्यस्फुटमन्त्रतन्त्रमहिमां नाप्नोति शश्वद्विना
यद्बीजं व्यवहारजालमखिलं नास्त्येव मातस्तव ।।
तज्जाप्यस्मरणप्रसक्तिसुमतिः सर्वज्ञतां प्राप्य कः
शब्दब्रह्मनिवासभूतवदनो नेन्द्रादिभिः स्पर्धते ।।"

(५)

मात्रा यात्र विराजतेऽतिविशदा तामष्टधा मातृकां,
शक्ति कुण्डलिनीं चतुर्विधतनुं यस्तत्वविन्मन्यते ।

सोऽविद्याखिलजन्मकर्मदुरितारण्यं प्रबोधाग्निना,
भस्मीकृत्य विकल्पजालमखिलं मातःपदं तद्व्रजेत् ।।

(६)

तत्ते मध्यमबोजम्ब कलयाम्यादित्यवर्णं क्रिया-
ज्ञानेच्छादिमनन्तशक्तिविभवव्यक्ति व्यनक्ति स्फुटम् ।
उत्पत्तिस्थितिकल्पकल्पिततनु स्वात्मप्रसारेण य-
त्काम्यंब्रह्महरीश्वरादिविबुधैः कामंक्रियायोजितैः ।।

(७)

कामान्कारणतां गतानगणितान्कार्यैरनेकैर्मही-
मुख्यैः सर्वं मनोगतानधिगतान्मानैरनेकैः स्फुटम् ।
कामक्रोधसुलोभमोहमदमात्सर्यारिषट्कं च य-
द्बीजं भ्राजयति प्रणौमि तदहंते साधु कामेश्वरि ।।

(८)

यद्भक्ताऽखिल काम पूरणचण स्वात्मप्रभावं महा
जाड्यध्वांत f.वारणैकतरणिज्योतिः प्रबोधप्रदम् ।
यद्वेदेषु च गीयते श्रुतिमुखं मात्रात्रयेणोमिति
श्रीविद्ये तव सर्वराजवशकृत्तत्कामराज भजे ।।

(९)

यत्ते देवि तृतीयबीजमनलज्वालावलीसंनिभं
सर्वाधारतुरीय बीजमपरं ब्रह्माभिधा शब्दितम् ।
मूर्धन्यान्तविसर्गभूषित महौकारात्मकं तत्परं
संविद्रूपमनन्यतुल्यमहिम स्वान्ते ममद्योतताम् ।।

(१०)

"सर्वः सर्वत एव सर्गसमये कार्येन्द्रियाण्यन्तरा
तत्तद्दिव्यहृषीक कर्मभिरियं संव्यश्नुवाना परा ।
वागर्थव्यवहारकारणतनुः शक्तिर्जगद्व्यापिनी
यद्बीजात्मकतांगता तव शिवे तन्नौमि बीजंपरम् ।।

(११)

अग्नीन्दुद्युमणिप्रभञ्जनधरानीराम्बरस्थायिनी
शक्तिर्ब्रह्महरीशवासवमुखामर्त्यासुरात्मस्थिता ।
सृष्टस्थावरजङ्गमस्थितमहाचैतन्य रूपा च या
यद्बीजस्मरणेन सैव भगती प्रादुर्भवत्यम्बिके ।।

(१२)

स्वात्मश्री विजिताजविष्णुमघवश्रीपूरणैकव्रतं
यद्विद्याकविता वितानलहरी कल्लोलिनी दीपकम् ।
बीजंयत्त्रिगुणप्रवृत्तिजनकंब्रह्मेति यद्योगिनः
शान्ताः सत्यमुपासते तदिह ते चित्ते दधेश्रीपरे ।।

(१३)

एकैकं तव मातृके परतरं संयोगिवाऽयोगिवा
विद्यादिप्रकटप्रभावजनकं जाड्यान्धकारापहम् ।
यन्निष्ठाश्च महोत्पलासन महाविष्णुप्रहृत्रदियो
देवाः स्वेषु विधिष्वनन्यमहिमस्फूर्ति दधत्येवतत् ।।

(१४)

इत्थं त्रीण्यापि मूलवाग्भवमहाश्रीकामराज
स्फुरच्छक्त्याख्यानि चतुः श्रुतिप्रकटितान्युत्कृष्ट कूटानि ते ।
भूततु श्रुतिसंख्यवर्णविदितान्यारक्तकान्ते शिवे,
यो जानाति स एव सर्वजगतां सृष्टिस्थिति ध्वंसकृत् ।।

(१५)

नित्यं यस्तव कातृकाक्षरसखीं सौभाग्यविद्यां जपेत्
सम्पूज्याखिलचक्रराजनिलयां सायंनाग्निप्रभाम् ।
कामाख्यं शिवनामतत्त्वमुभयं व्याप्यात्मना सर्वतो
दींव्यन्तीमिह तस्य सिद्धिरचिरात् स्यात्त्वत्स्वरूपैकता ।।

(१६)

काव्योः पापठितैः किमल्पविदुषां जोघुष्यमाणैः पूनः
किं तैर्व्याकिरणैर्विवोधिततया किं वाभिधानश्रिया ।
एतैरम्व न वोभवीति सुकविस्तावत्तव श्रीमता-
यविन्नानुसरीसरीति सर्णि पदाब्जयोः पावनीम् ।।

(१७)

गेहं नाकति गर्वित प्रवणति स्त्री संगमो मोक्षति
द्वेषी मित्रति पातकं सुकृततिक्ष्मावल्लभो दासति ।
मृत्युर्वैद्यति दूषणं सुगुणति त्वतपादसंसेवनात्-
त्वांवन्दे भवभीति भञ्जनकरीं गौरीं गिरीशप्रियां ।।

(१८)

आद्यैरग्निरवीन्दु विम्वनिलयैरम्ब चिलिङ्गात्मभि-
मिश्रारक्तसितप्रभैरनुपमैर्युष्मत् पदैस्तै स्त्रिभिः ।

स्वात्मोत्पादित काललोकनिगमावस्था मरादित्रयै-
रुद्भूतं त्रिपुरेति नामकलयेद्यस्ते सधन्यो बुधः ॥

(१६)

आद्यो जाप्यतमार्थवाचकतया रुढः स्वरः पञ्चमः
सर्वोत्कृष्टतमार्थवाचकतया वर्णः पवगन्तिकः ।
वक्तृत्वेन महाविभूतिसरणस्त्वाधारगो हृद्गतो
भ्रूमध्यस्थित इत्यतः प्रणवता तेगीयते चागमैः ॥

(२०)

गायत्री सशिरा तुरीयसहिता सन्ध्यामयीत्यागमै;
राख्याता त्रिपुरेत्वमेवमहतां शर्मप्रदा कर्मणाम् ।
तत्तद्दर्शनमुख्यशक्तिरपि चत्वं ब्रह्म कर्मेश्वरी,
कर्तार्हन्पुरुषो हरिश्च सविता बुद्धः शिवस्त्वंगुरुः ॥

(२१)

अन्नप्राणमनः प्रबोधपरमानन्दैः शिरः पक्षयु-
क्पूच्छात्म प्रकटै र्महोपनिषदां वाग्भिः प्रसिद्धीकृतैः ।
कोशैः पञ्चभिरेभिरम्ब भवतीमेतत्प्रलीनामिति
ज्योतिः प्रज्वलदुज्ज्वलात्म चपलां यो वेद स ब्रह्मवित् ॥

(२२)

सच्चित्तत्त्वमसीतिवाक्यविदितैरध्यात्म विद्याशिव-
ब्रह्माख्यैरतुल प्रभावसहितैस्तत्त्वैस्त्रिभिः सद्गुरोः ।
तद्रूपस्यमुखारविन्दविवरात् संप्राप्य दीक्षामतो
यस्त्वांविन्दति तत्त्वतस्तदहमित्त्यार्थे स मुक्तो भवेत् ॥

(२३)

सिद्धान्तैर्बहुभिः प्रमाण गणितै रन्यैरविद्यातमो-
नक्षत्रैरिव सर्वमन्धतमसं तावन्न निर्भिद्यते ।
यावत्ते सवितेव संमतमिदं नोदेति विश्वान्तरे
जन्तोर्जन्म निवारणैकभिदुरं श्रीशांभवि श्रीशिवे ॥

(२४)

आत्मासौ सकलेन्द्रियाश्रयमनोबुद्धयादिभिः शोचितः
कर्माबद्धतनुर्जनि च मरणं प्राप्नोति यत्कारणम् ।
तत्तेदेवि महाविलास लहरी दिव्यायुधानां जय-
स्तस्मात्त्वां गुरुमभ्युपेत्य कलयेत्वामेवचेन्मुच्यते ॥

(२५)

नाना योनि सहस्र संभव वशाज्जाता जनन्यः कति
प्रख्याता जनकाः कियन्त इति मे सेत्स्यन्ति चाग्रेकति।
एतेषां गणनैव नास्ति महतः संसार सिन्धोर्विधे-
र्भीतं मां नितरामनन्य शरणं रक्षानुकम्पानिधे॥

(२६)

देहशोभकरैर्व्रतैर्बहुविधैर्दानैश्च होमैर्जपैः
संतानैर्हयमेध मुख्य सुमुखैर्नानाविधैः कर्मभिः।
यत्संकल्प विकल्प भावमलिनं ख्यातं पदं तस्यते
दूरादेव विवर्तते परतरं मातः पदं निर्मलम्॥

(२७)

पञ्चाशन्निज देहजाक्षर भवैर्नाना विधैर्धातुभि-
र्बह्वर्थैः पद वाक्य मानजनकैरर्था विनाभावितैः।
साभिप्राय वदर्थ कर्म फलदैः ख्यातै रनन्तैरिदं
विश्वं व्याप्य चिदात्मनाहमह मित्युज्जृम्भसे मातृके॥

(२८)

श्रीचक्रं श्रुतिमूलकोश इति ते संसारचक्रात्मकं
विख्यातं तदधिष्ठिताक्षरशिवज्योतिर्भयं सर्वतः।
एतन्मन्त्रमयात्मिकाभिररुणं श्रीसुन्दरीभिर्वृतं
मध्ये वैन्दवसिंह पीठललिते त्वंब्रह्मविद्या शिवे॥

(२९)

विन्दुप्राणविसर्गजीव सहितं बिन्दुत्रिबीजात्मकं
षट्कूटानि विपर्ययेण निगदेत्तारत्रिबालावलैः।
एभिः संपुटितं प्रजप्य विरहेत्प्रासादमन्त्रं परं
गुह्याद्गुह्यतमं सयोगजनितं सद्भोगमोक्षप्नदम्॥

(३०)

आताम्राऽर्कसहस्रदीप्तिपरमा सौन्दर्यसारैरलं
लोमातीत महोदयैरुपयुता सर्वोपमागोचरैः।
नानाऽनर्घ्यविभूषणै रगणितैर्जाज्वल्यमानाभितः
श्रीमातस्त्रिपुरारिसुन्दरि कुरु स्वान्ते निवास मम॥

(३१)

शिञ्जन्नूपुर पाद कङ्कण महामुद्रा सुलाक्षारसा-
लंकाराङ्कितमङ्घ्रि पङ्कजयुगं श्रीपादुकालंकृतम्।

उद्भास्वन्नखचन्द्रखण्ड रुचिरं राजज्जपासन्निभं-
ब्रह्मादि त्रिदशा सुरार्चितमहं मूर्ध्निं स्मराम्यम्बिके ॥

(३२)

आरक्तच्छविनातिमार्दवयुजा निश्वासहार्येण सत्-
कौशयेन विचित्ररत्नखचितैर्मुक्ताफलैरुज्ज्वलैः ।
कूजत्काञ्चनकिङ्किणीभिरभितः सन्नद्धकाञ्चीगुणै
रादीप्तं सुनितम्बबिम्बमरुणं ते पूजायाम्यम्बिके ॥

(३३)

कस्तूरीघनसारकुंकुमरजोगन्धोत्कटैश्चन्दनै-
रालिप्तं मणिमालयातिरुचिरं ग्रैवेयहारादिभिः ।
दीप्तंदिव्यविभूषणैरगणितैर्ज्योतिर्विभास्वत्कुच-
व्याजस्वर्णघटद्वयं हरिहरब्रह्मादिपीतंभजे ॥

(३४)

मुक्तारत्नविचित्रकान्तिललितैस्तेबाहुबल्लीरहं
केयूराङ्गदबाहुदण्डवलयैर्हस्ताङ्गुली भूषणैः ।
संपृक्ताः कलयामि हीरमणिमन्मुक्तावली कीलित-
ग्रीवापट्ट विभूषणेन सुभगं कण्ठं च कम्बुश्रियम् ॥

(३५)

उद्यत्पूर्णकलानिधिश्रिवदनं भक्तप्रसन्नं सदा
संफुल्लाम्बुज पत्त्र कान्ति सुषमाधिक्कार दक्षेक्षणम् ।
सानन्दं कृतमंदहासमकृत् प्रादुर्भवत्कौतुकं
कुन्दाकार सुदन्तपङ्क्ति शशिभापूर्णं स्मराम्यम्बिके ॥

(३६)

तप्तस्वर्णकृतोरुकुण्डलयुगंमाणिक्यमुक्तोल्लस
द्धीरावद्धमनन्यतुल्यमपरं हैमंच चक्रद्वयम् ।
शुक्राऽऽकारनिकारदक्षममलं मुक्ताफलं सुन्दरम्
विभ्रत् कर्णयुगं भजामि ललितं नासाग्रभागं शिवे ॥

(३७)

जातीचम्पक कुन्दकेसररजो गन्धोत्किरत्केतकी-
नीपाशोकशिरीषमुख्यकुसुमैः प्रोत्तंसिताधूपिता ।
आनीलाञ्जन तुल्यमत्तमधुपश्रेणीव वेणीतव
श्री मातः श्रयतां मदीय हृदयाम्भोजं सरोजालये ॥

(३८)

लेखालभ्यविचित्ररत्नखचितं हैमं किरोटोत्तमं
मुक्ताकाञ्चन किंकिणीगण महाहीरप्रबोधोज्ज्वलम् ।
चञ्चच्चन्दकलाकलापललितं देवद्रुपुष्पार्चितम्
माल्यैरम्ब विलम्बितं सुशिखरं बिभ्रच्छिरस्ते भजे ॥

(३९)

शृङ्गारादि रसालयं त्रिभुवनैर्माल्यैरतुल्यैर्युतं
सर्वाङ्गीण सदङ्गरागसुरभि श्रीमद्वपुर्धूपितम् ।
ताम्बूलारुणपल्लवाधरयुतं रम्यं त्रिपुण्ड्रं दध-
द्भालंनन्दनचन्दनेन जननि ध्यायामिते मङ्गलम् ॥

(४०)

एवं यः स्मरति प्रबुद्ध सुमतिः श्रीमत्स्वरूपं परं,
वृद्धोप्याशु युवा भवत्यनुपमः स्त्रीणामनङ्गायते ।
सौऽष्टैश्वर्यतिरस्कृताखिलसुरः श्रीजृम्भितात्मालयः,
पृथ्वीपाल किरीटकोटिवलभि पुष्पार्चिताङ्घ्रिर्भवेत् ॥

(४१)

अथतवधनुःपुण्ड्रेक्षुकृत् प्रसिद्धमतिद्युति
त्रिभुवन वधूमुद्यज्ज्योत्स्नाकलानिधि मण्डलम् ।
सकल जननि स्मारंस्मारं गतः स्मरतां नर
स्त्रिभुवन वधूमोहाम्भोधेः प्रपूर्ण विधुर्भवेत् ॥

(४२)

प्रसूनशरपञ्चकप्रकटजृम्भणागुम्फितं
त्रिलोकमवलोकयत्यमलचेतसाचिन्तयन् ।
अशेष रमणी जन स्मर विजृम्भणे यः सदा
पटुर्भवति ते शिवे त्रिजगदङ्गनाक्षोभणे ॥

(४३)

पाशं प्रशरति महासुमति प्रकाशो
योवा तव त्रिपुर सुन्दरि सुन्दरीणाम् ।
आकर्षणेऽखिलवशीकरणे प्रवीणं
चित्ते दधाति स जगत्त्रयवश्यकृत् स्यात् ॥

(४४)

यः स्वान्ते कलयति कोविदत्रिलोकस्तम्भरम्भण
चणमत्युदारवीर्यम् ।

मातस्ते विजयमहांकुशं सयोषान्
देवान् स्तम्भयति च भूभुजोऽन्य सैन्यम् ॥
(४५)
चापध्यानवशाद्भवोद्भवमहामोहस्य व्युज्जृम्भणम्
प्रख्यातं प्रसवेषुचिन्तनवशात्तत्तच्छख्यं सुधीः ।
पाशध्यान वशात्समस्तजगतां मृत्योर्वशत्व महा-
दुर्गस्तम्भमहाङ्कशस्य मननान्माया ममेयां तरेत् ॥
(४६)
न्यासं कृत्वा गणेशग्रहभगण महा योगिनी राशिपीठैः
पञ्चाशन्मातृकर्णैः सहित बहुकलै रष्टवाग्देवताभिः ।
पश्री कण्ठादि युग्मैर्निजविमलतनौ केशवाद्यैश्च तत्वैः
षट् त्रिंशद्भिर्ध राद्यैर्भगवतिभवतीयः स्मरेतस् त्वमेव ॥
(४७)

मालिनी छन्द

सुरपतिपुरलक्ष्मीजृम्भणातीत लक्ष्मीः
प्रसरति निजगेहे यस्य दैवं त्वमार्ये ।
विविधबहुकलानां पात्रभूतस्य तस्य
त्रिभुवनविदिता सा जृम्भते स्फूर्तिरच्छा ॥
(४८)
मातस्त्वं भूर्भुवः स्वर्महरसि सुतनुस्त्वन्तरिक्षेन्दुसूर्ये-
रात्मा शुक्रामरेन्द्रैरपिनिगममहाब्रह्मभिः प्रोतशक्तिः ।
प्राणापानादियुक्तैः कलयति सकलं मानसं ध्यान योगं
येषां तेषां सपर्या भवति सुरकृता ब्रह्मता योगिनां च ॥
(४९)
क्कमे बुद्धिर्वाचा परमविदुषो मन्दसरणिः
क्कते मातर्ब्रह्म प्रमुखबिवुधस्याप्तवचसाम् ।
अभून्मे विस्फूर्तिः परतरमहिम्नस्तव नुतिः
प्रसिद्धं क्षन्तव्यं वहुलतरचापल्यमितिमे ॥
(५०)
प्रसीदपर देवते मम हृदि प्रभूतं भयं
विदारय दारिद्रतां दलय देहि सर्वज्ञताम् ।
विधेहि करुणानिधे चरणपद्मयुग्मं स्वयं
विदारितजरामृति त्रिपुरसुन्दरि श्री शिवे ॥

(५१)

इति त्रिपुरसुन्दरीस्तुतिमिमां पठेद्यसुधीः
स सर्वदुरिताटवीपटलचण्डदावानलः ।
भवेन्मनसि वाञ्छितं प्रचुरसिद्धि ऋद्धिर्भवे-
दनेकविधसम्पदां पदमनन्यतुल्यो भवेत् ॥

(५२)

सङ्गीत सरसं विचित्रकवितामाम्नायवांक्यस्मृति
व्याख्यानं हृदि तावकीचरणद्वन्द्वं चसर्वज्ञताम् ।
श्रद्धां कर्मणि शाम्भवेति विपुलं श्रीजृम्भणं मन्दिरे
सौन्दर्यं वपुषि प्रदेहि जगतामम्बेश्वरि श्री शिवे ॥

(५३)

पृथ्वीपाल-प्रकटमुकुटस्त्रग्रजो रञ्जिताङ्घ्रि
विद्वत्पूजास्तुतिशतसमाराधितो बाधितारिः ।
विद्याः सर्वाः कलयति हृदा व्याकरोति प्रवाचा
लोकाश्चर्यैर्नवनपदैरिन्दुबिम्बप्रकाशैः ॥

(५४)

भूष्यं वैदुष्यमुद्यद्दिनकरकिरणाकारमाकारतेजः
सुज्ञानं भूरिमार्गं निगमनिगमनं दुर्गमं योगमार्गम् ।
आयुष्यं ब्रह्मपोष्यं हरगिरिविशदां कीर्तिमभ्येत्यभूमौ,
देहान्ते ब्रह्मपारं परतरचरणाकारमभ्येतिविद्वान् ॥

(५५)

वसन्त तिलका छन्द

दुर्वाससाविदिततत्त्वमुनीश्वरेण
विद्याकला युवतिमन्मथ मूर्तिनैतत् ।
स्तोत्रं व्यधायि रुचिरं त्रिपुराम्बिकाया
वेदागमोक्त पटलैर्विदितैकमूर्ति ॥

(५६)

सदसदनुग्रह निग्रह गृहीत मुनि विग्रहो भगवान् ।
सर्वासामुपनिषदां दुर्वासा जयति देशिकः प्रथमः ॥

॥ इति श्री महासुनि दुर्वासा विरचितं श्री त्रिपुरा महिम्न स्तोत्रं समाद्रम् ॥

बारहवाँ अध्याय

साधकों के लिए अनिवार्यताएँ

आनन्दोपलब्धि के लिए संसार का प्रत्येक प्राणी इच्छुक है। सुख-शान्ति अथवा आनन्द की खोज में प्रत्येक प्राणापण से जुटा है, किन्तु समग्र प्रयत्नों के पश्चात् भी उसे अपना अभीष्ट प्राप्त नहीं होता। अथक प्रयासों के उपरान्त यदि कुछ शान्ति मिलती भी है तो वह क्षणिक ही होती है। मनुष्य की इच्छाएँ अपार हैं, अतः सभी इच्छाओं की आपूर्ति कैसे हो ?

स्पष्ट है कि जब मनुष्य की तृष्णा (आशा) कम हो और लाभ आशा से अधिक हो तो उसे सुख या आनन्द की अनुभूति होगी तथा इसके विपरीत आशा अधिक हो और लाभ कम तो उसे आनन्द की अपेक्षा दुःख की ही अनुभूति होगी। अतः मानव मात्र को यह प्रयत्न करना चाहिए कि वह आशा या तृष्णा को शून्य करदे ताकि तृष्णा (जो कि दुःख का कारण है) के अभाव में अर्थात् दुःख के अभाव में निश्चय ही आनन्द ही नहीं अपितु परमानन्द का लाभ होगा, पर प्रश्न उठता है कि आशा को शून्य कैसे किया जाय, क्योंकि आशा या तृष्णा तो विचलित मन के विकार है। इसीलिए कहा भी गया है—

"आशा हि परमं दुःखं, नैराश्यं परमं सुखम्"

अर्थात् आशा ही परम दुःख एवं निराशा ही परम सुख है।

मन के इन विकारों को समाप्त करने के लिए हमारे मनीषियों ने दो साधन बतलाये हैं।

(१) अभ्यास, (२) वैराग्य।

अभ्यास—यह एक ऐसी साधना है जो मनुष्य को अनुकूल परिस्थितियों में भी आनन्दित रखता है। उदाहरणार्थ—श्रम का अभ्यासी श्रमिक श्रम में ही आनन्द का अनुभव करता है। युद्ध के अभ्यासी को युद्ध करने में ही आनन्द आता है उसे मृत्यु की विभीषिका भयभीत नहीं कर पाती। तात्पर्य यह कि अभ्यास के द्वारा मन को पूर्ण नियन्त्रण में लाया जा सकता है।

दूसरा साधन है वैराग्य अर्थात् सांसारिक पदार्थों में अनासक्ति।

महर्षि पतञ्जलि ने चित्त वृत्तियों के निरोध के लिए चार साधन बताये हैं जिनमें मन्त्र प्रयोग प्रथम है। मन्त्र योग के १६ अंग हैं—

भक्तिः शुद्धिश्चासनं पञ्चाङ्गस्यापि सेवनम्।
आचार धारणे दिव्य देश सेवनमित्यपि ।।
प्राणक्रिया तथा मुद्रा तर्पणं हवनं बलिः।
यागो जपस्तथा ध्यानं समाधिश्चेति षोडश ।।

अर्थात्—१. भक्ति, २. शुद्धि, ३. आसन, ४. पञ्चाङ्ग सेवन, ५. आचार, ६. धारणा, ७. दिव्यदेश सेवन, ८. प्राण क्रिया, ९. मुद्रा, १०. तर्पण, ११. हवन, १२. बलि, १३. याग, १४. जप, १५. ध्यान १६. समाधि।

१. **भक्ति**—"देवे परोऽनुरागस्तु भक्तिः सम्प्रोच्यते बुधैः" अर्थात् अपने इष्ट देव में परम अनुराग को भक्ति कहते हैं ऐसा मन्त्रयोग संहिता में बताया गया है। भक्ति के भी तीन भेद होते हैं—१. वैधी भक्ति, २. रागात्मिका भक्ति, ३. परा भक्ति। विधि एवं निषेध द्वारा निर्णीत धीर साधकों के द्वारा अपनायी गयी भक्ति वैधी कही जाती है तथा जिस भक्ति के रस का आस्वादन कर साधक भाव सागर में गोते लगाता है उसे रागात्मिका भक्ति कहते हैं।

परमानन्ददायिका भक्ति को पराभक्ति कहा जाता है—

विधिना या विनिर्णीता, निषेधेन तथा पुनः।
साध्यमाना च या धीरैः सा वैधी भक्ति रुच्यते ।।
ययास्वाद्य रसान्भक्तेर्भावे मज्जति साधकः।
रागात्मिका सा कथिता, भक्ति योग विशारदैः ।।
परानन्द प्रदा भक्तिः परमा भक्तिर्मता बुधैः ।।

रागात्मिका भक्ति के भी दो भेद होते हैं—१. काम रूपा, २. सम्बन्ध रूपा। इसी प्रकार इनके और भी अनेक भेद-विभेद बताये गये हैं।

२. **शुद्धि**—अन्तर्बाह्य शरीर व मन की निर्मलता को शुद्धि कहते हैं। शुद्धि चार प्रकार की होती है (१) काम शुद्धि, (२) चित्त शुद्धि, (३) दिक् शुद्धि और (४) स्थान शुद्धि।

"कायचित्त दिशा स्थान भेदाच्छुद्धिश्चतुर्विधा"

काय शुद्धि—स्नान के द्वारा मल प्रक्षालन करना कार्य शुद्धि है। स्नान भी सात प्रकार का होता है—(१) मान्त्र, (२), भौम (३) आग्नेय, (४) वायव्य, (५) दिव्य, (६) वारुण, (७) मानस।

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा
यः स्मरेत् पुण्डरी काक्षं सबाह्याभ्यन्तरः शुचि।

इत्यादि मन्त्रों से किये गये मार्जन को मान्त्र स्नान कहते हैं। उवटन-साबुन इत्यादि लगाकर किये गये स्नान को भौमस्नान कहते हैं। भस्म लेपन को आग्नेय स्नान तथा गायों के खुरों से उड़ी हुई धूल के स्नान को वायव्य स्नान कहते हैं। धूप या वर्षा से स्नान करना दिव्य स्नान कहलाता है तथा जल में डुबकियाँ लगाना वारुण स्नान कहा जाता है। भगवान विष्णु का स्मरण करना मानस स्नान कहलाता है। इन सभी रीतियों से काय शुद्धि हो जाती है।

चित्त शुद्धि :

अभयं सत्व संशुद्धिर्ज्ञान योग व्यवस्थितः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्य मक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनं।
दया भूतेष्वगृध्नुत्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रो हो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदो दैव्यश्चित्त नैर्मल्य कारणम्॥

अर्थात्—अभय, रागरहितता, ज्ञान योग, दान, दम, यज्ञ, वेदों एवं शास्त्रों का अध्ययन, तप, नम्रता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, अपिशुनत्व, दया, समस्त जीवों पर अनुग्रह, मृदुता, अचञ्चलता, तेज, क्षमा, धृति, शौच, अद्रोह एवं अतिमानिता का अभाव ये सब चित्त की निर्मलता के कारण हैं।

दिक् शुद्धि—दिन में पूर्वाभिमुख एवं रात्रि में उत्तरा भिमुख होकर सविधि जप या पूजन करने से दिक् शुद्धि होती है। काम्य प्रयोगों में बतलायी गयी दिशा की ओर मुँह करके जप करने से दिक् शुद्धि होती है।

स्थान शुद्धि—जिस स्थान पर पूजा करे उस स्थान को गोमय गंगाजल आदि से शुद्धि कर लें।

३. **आसनः**—रेशमी, ऊनी, कुश का अथवा व्याघ्र चर्म व मृग चर्म का आसन श्रेष्ठ होता है। काम्य प्रयोगों में ऊन का (विशेष रूप से लाल ऊन का) आसन उत्तम माना जाता है। कृष्ण मृग चर्म से ज्ञान सिद्धि, व्याघ्र चर्म से मोक्ष, कुशासन से दीर्घादु तथा रेशमी आसन से व्याधि का नाश होता है।

जिस पर बैठा जाय अथवा बैठने के ढंग विशेष को आसन कहते हैं। शान्ति-वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण उच्चाटन एवं मारण में क्रम से पद्मासन, स्वस्तिकासन विकटासन, कुक्कुटासन, वज्रासन एवं भद्रासन लगाकर पूजन करना चाहिए। निष्काम कर्मों में पद्मासन एवं स्वस्तिकासन का प्रयोग ही अभीष्ट माना जाता है।

पद्मासन का लक्षण

ऊर्वोरुपरिविन्यस्य सम्यक्पादतले उभे।
अंगुष्ठे च निबध्नीयाद्हस्ताभ्यां व्युत्क्रमात्ततः।
पद्मासनमिति प्रोक्तं, योगिनां हृदयंगमम् ॥

स्वस्तिकासन का लक्षण

जानूर्वोरन्तरे कृत्वा सम्यक् पादतले उभे।
ऋजुकायो विशेद्योगी स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥

विकटासन का लक्षण

जानुजङ्घान्तरालेतु भुजयुग्मं प्रकल्पयेत्।
विकटासनमेतत् स्यात् अभिचारादि कर्मणि ॥

कुक्कुटासन का लक्षण

कृत्वोत्कटासनं पूर्वं समपाद द्वयंततः।
अन्तर्जानु करद्वन्द्वं कुक्कुटासनमीरितम् ॥

वज्रासन का लक्षण

ऊर्वोः पादौ क्रमान्न्यस्येज्जान्वोः प्रत्यङ्मुखाङ्गली।
करौ निदध्यादाख्यातं वज्रासनमनुत्तमम् ॥

भद्रासन का लक्षण

सीवन्याः पार्श्वयोर्न्यस्येद गुल्फ युग्मं सुनिश्चितम्।
वृषणाधः पादपार्ष्णिं पाणिभ्यां परिबन्धयेत् ॥
भद्रासनं समुद्दिष्टं योगिभिः पूजितं परम् ॥

४. पञ्चाङ्ग सेवन

गीता सहस्रनामानि तवः कवचमेव च।
हृदयं चेति पञ्चैते पञ्चाङ्गं प्रोच्यते बुधैः ॥

गीता—सहस्रनाम, स्तोत्र, कवच और हृदय ये पूजा के पञ्चाङ्ग माने गये हैं। पच्च देवोपासना में श्रीमद् भगवद् गीता, गणेश गीता, भगवती गीता, सूर्य गीता तथा शिव गीता ये ५ गीताएँ एवं श्री विष्णु सहस्रनाम, गणेश सहस्रनाम, दुर्गासहस्रनाम, सूर्यसहस्रनाम तथा शिव सहस्रनाम उपलब्ध है। साधक को प्रतिदिन इनका स्वाध्याय-पाठ अथवा चिन्तन करना चाहिए। इसी प्रकार अपने सम्प्रदाय के अनुसार या गुरु द्वारा निर्देशित स्तव, कवच व हृदय आदि का पाठ करना चाहिए।

५. आचार—आचार का अर्थ आचरण है, अर्थात् सत् आचरण करना आचार है। इसके तीन भेद हैं—

१. वामाचार, २. दक्षिणा चार, ३. दिव्याचार।

वामाचार प्रवृत्ति मूलक होता है तथा दक्षिणाचार निवृत्ति मूलक। प्रवृत्ति से निवृत्ति को ओर ले जाने वाला आचार दिव्याचार कहलाता है। साधक को अपने सद्गुरु के निर्देशानुसार आचार का पालन करना चाहिए।

६. **धारणा**—धारणा निश्चयात्मिका बुद्धि का नाम है। श्रद्धा और योग दोनों का विधिवत अभ्यास करने से धारणा बन जाती है। इसके भी दो भेद है (१) बाह्य, (२) आभ्यन्तर। जब मनोयोग बाह्य वस्तुओं के साथ होता है तब बाह्य धारण और जब आभ्यन्तर वस्तुओं के साथ होती है तो अन्तर्धारणा बनती है। धारणा के सिद्ध हो जाने पर मन्त्र साधक को ध्यान सिद्धि व मन्त्र सिद्धि प्राप्त हो जाती है। धारण की सिद्धि से भक्ति, आचार, जप सिद्धि, प्राण संयम, इष्टदेव का साक्षात्मक दिव्यदेशों में देव शक्ति का विकास तथा इष्टदेव का दर्शन ये सब प्राप्त होते हैं—

धारणा सिद्धि मा साद्य सिद्धिं वै ध्यान मन्त्रयोः।
प्राप्नोति साधको नित्यं, मन्त्र योग परायणः॥
भक्तिर्जपस्य संसिद्धिराचारः प्राण संयमः।
साक्षात्कारो देवतायाः दिव्यदेशेषु नित्यशः॥
देव शक्ति विकासो वै हीष्ट दर्शन मेव च।
लभ्यन्ते धारणा सिद्ध्या सर्वाणीति विनिश्चयः॥

दिव्यदेश सेवन—

तन्त्रेषु दिव्यदेशाः षोडशा प्रोक्ता यथात्र कथ्यन्ते।
अग्न्यम्बु लिङ्ग वेद्यो भित्तौ रेखा तथा च चित्रं च॥
मण्डल विशिखौ नित्य यन्त्रं पोठ च भाव यन्त्रं च।
मूर्ति विभूति नाभी हृदयं मूर्द्धा च षोडशैते स्युः॥

तन्त्र शास्त्र में १६ दिव्य देश बताये गये हैं—१. वह्नि (अग्नि) २. अम्बु (जल) ३. लिङ्ग (शिवलिङ्ग) ४. वेदिकाकुण्ड (यज्ञ मण्डप) ५. दीवाल में बनी रेखाएँ ६. चित्र (इष्टदेव का चित्र) ७. मण्डल ८. विशिखा ९. नित्य यन्त्र १०. भावयन्त्र ११. पीठ १२. विग्रह १३. विभूति १४. नाभि १५. हृदय १६. मूर्द्धा। ये दिव्य देश मन्त्र साधन में सिद्धि दायक माने जाते हैं।

८. **प्राण क्रिया**—मन-प्राण और वायु में अभेद सम्बन्ध है। वायु तथा प्राण में कार्य कारण सम्बन्ध है अतः प्राणायाम करना साधक के लिए अनिवार्य है। प्राणव एवं व्याहृतियों के साथ ३ बार गायत्री मन्त्र का जप करते हुए पूरक, पुनः ३ बार कुम्भक एवं ३ बार रेचक प्राणायाम करना चाहिए। कुछ आचार्य पूरक कुम्भक व रेचक की सन्धियों में भी ३-३ बार गायत्री जप का निर्देश करते

हैं। प्राणायाम द्वारा न्यास किये जाते हैं। यद्यपि तन्त्र शास्त्र में असंख्य न्यासों का वर्णन है किन्तु ७ प्रकार के न्यास प्रमुख हैं—करन्यास, अङ्गन्यास, ऋष्यादि न्यास, अन्तर्मातृका न्यास, बहिर्मातृका न्यास और षोढा न्यास।

९. **मुद्रा**—मुद्रा शब्द का अर्थ है—मु=समस्त देवों को मोद (आनन्द) देने वाला और द्रा=पाप सन्ततियों का द्रावण अर्थात् क्षय। जैसा कि कहा गया है—

मोदनात् सर्वं देवानां द्रावणात् पाप सन्ततेः।
तस्मान्मुद्रेति विख्याता मुनिभिस्तन्त्रवेदिभिः॥

पूजन, जप, काम्य प्रयोग, स्नान, हवन, विशेषार्घ्य स्थापन एवं नैवेद्य निवेदन के समय कल्प ग्रन्थों में बताये गये लक्षणों के अनुसार मुद्राएं बनाकर दिखानी चाहिए।

आवाहनादि की ९ मुद्राएँ, पूजन की गन्ध आदि मुद्राएँ तथा षडङ्गन्यास की मुद्राओं का सभी मन्त्रों के जप व पूजनादि में प्रयोग आवश्यक होता है। स्नान के समय अंकुश आदि मुद्राओं से तीर्थावाहन किया जाता है।

शान्ति कर्म में पद्म मुद्रा, वशीकरण में पाश मुद्रा, स्तम्भन में गदा मुद्रा, विद्वेषण में मुसल मुद्रा, उच्चाटन में वज्र मुद्रा एवं मारण में खड्ग मुद्रा का प्रयोग करना चाहिए।

हवन में मृगी, हंसी व सूकरी मुद्रा का प्रयोग किया जाता है। शान्तिक व पौष्टिक कर्मों के हवन में मृगी मुद्रा से, वशीकरण के हवन में हंसी मुद्रा से तथा स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन एवं मारण कर्मों के हवन में सूकरी मुद्रा से आहुतियाँ डालने का विधान आचार्यों ने बताया है।

विष्णु की प्रिय मुद्राएँ— शंख, चक्र, गदा, पद्म, वेणु, श्री वत्स, कौस्तुभ, वनमाला, ज्ञान, बिल्व, गरुड़, नारसिंही, वाराही, हयग्रीवी, धनु-बाण, परशु, जगन्मोहनिका एवं काम ये १९ मुद्राएँ विष्णु भगवान की प्रिय मुद्राएँ हैं।

शिव की प्रिय मुद्राएँ—लिङ्ग, योनि, त्रिशूल, माला, वर, मृग, अभय, खट्वङ्ग, कपाल एवं डमरू ये १० मुद्राएँ शिव की प्रिय मुद्राएँ हैं।

गणेश की प्रिय मुद्राएँ—दन्त, पाश, अंकुश, विघ्न, परशु, मोदक (लड्डूक) एवं बीजपूर ये ७ मुद्राएँ गणेश जी की प्रिय मुद्राएँ हैं।

दुर्गा की प्रिय मुद्राएँ—पाश-अंकुश, वर, अभय, खड्ग, चर्म, धनुष-बाण तथा मुसल ये ९ मुद्राएँ श्री दुर्गा जी को प्रिय हैं।

श्यामा एवं शक्ति की प्रिय मुद्राएँ—मत्स्य-कूर्म एवं लेलिहाना ये ३ मुद्राएँ श्यामा एवं शक्ति की प्रिय मुद्राएँ हैं इनके अतिरिक्त श्यामा को मुण्ड मुद्रा तथा शक्ति को महायोनि मुद्रा प्रिय है।

तारा की प्रिय मुद्राएँ—योनि, भूतिनी, वीज, दैत्य धूमिनी तथा लेलिहाना ये ५ मुद्राएँ तारा को प्रिय हैं।

त्रिपुरसुन्दरी को प्रिय मुद्राएँ—संक्षोभिणी, द्रावणी, आकर्षिणी, वश्य, उन्माद, महाङ्कुशा, खेचरी, बीज, योनि एवं त्रिखण्डा ये १० मुद्राएँ श्री त्रिपुर-सुन्दरी की प्रिय मुद्राएँ हैं।

अन्य देवताओं को मुद्राएँ—लक्ष्मी को लक्ष्मी मुद्रा, सरस्वती को अक्षमाला वीणा, व्याख्या एवं पुस्तक मुद्रा, गोपाल को वेणु, नृसिंह को नारसिंह, वाराह को वाराही, हयग्रीव को हायग्रीवी, राम को धनुष एवं वाण, परशुराम को परशु, कृष्ण को जगन्मोहिनी तथा अग्नि को सप्तजिह्वा मुद्रा प्रिय हैं।

१०. तर्पण—देवता-ऋषि-पितर एवं इष्टदेव की तृप्ति के लिए तर्पण बहुत ही आवश्यक अङ्ग है। तर्पण भी दो प्रकार का होता है—निष्काम और सकाम। सकाम तर्पण द्रव्य विशेष से और निष्काम तर्पण केवल जल से ही किया जाता है। मधु से तर्पण करने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है तथा मन्त्र सिद्ध और महान से महान् पातक नष्ट होते हैं। कर्पूर मिलाकर जल से तर्पण करने पर राजा प्रसन्न होता है तथा हल्दी मिश्रित जल के तर्पण से सामान्य व्यक्ति वशीभूत होता है। घी के तर्पण से दीर्घायु मिलती है। दूध के तर्पण से आरोग्य, अगुरु मिश्रित जल के तर्पण से सुख, नारियल के जल के तर्पण से सर्वार्थ सिद्धि, मिर्च मिलाकर जल के तर्पण से शत्रुओं का नाश तथा गुन गुने गर्म जल के तर्पण से शत्रुओं का उच्चाटन हो जाता है। साधक को स्नान पूजन एवं हवन के समय प्रतिदिन तर्पण करना चाहिए। देव, ऋषि, पितर, इष्टदेव एवं उनके आवरण देवताओं को कल्पोक्त रीति से तर्पण करना चाहिए।

११. हवन—

जो सिद्धयत्यजपान्मन्त्रो
नाहुतश्च फल प्रदः।

मन्त्र योग संहिता बिना जप के मन्त्र सिद्ध नहीं होता और बिना हवन के वह फल नहीं देता। अतः मन्त्र साधक को यथोपलब्ध सामग्री से हवन अवश्य करना चाहिए। हवनसकाम व निष्काम दोनों प्रकार के प्रयोगों में करना चाहिए। काम्य प्रयोगों में अग्नि, समिधा, कुण्ड, दिशा एवं हवन द्रव्य का होना आवश्यक है। शान्ति एवं वश्य में लौकिक अग्नि में, स्तम्भन में वटवृक्ष के काष्ठ में, मथित अग्नि में, विद्वेषण में बहेड़े की लकड़ी से उत्पन्न अग्नि में तथा उच्चाटन और मारण में श्मशान (चिता) की अग्नि में हवन करना चाहिए। शुभ कार्यों में बेल, आक, ढाक एवं दूध वाले वृक्षों की समिधा तथा अशुभ कार्यों में कुचला, बहेड़ा, नीबू एवं धतूरा आदि की समिधाओं से अग्नि को प्रज्वलित करना चाहिए। शान्ति आदि षट्कर्मों में अग्नि की क्रम से सुप्रभा,

रक्ता हिरण्या गगना एवं अतिरिक्तका व कृष्णा नामक जिह्वा का पूजन किया जाता है। अर्थात् शान्ति में सुप्रभा, वशीकरण में रक्ता, स्तम्भन में हिरण्या, विद्वेषण में गगना, उच्चाटन में अतिरिक्तका और मारण में कृष्णा जिह्वा का पूजन करें।

शान्ति कर्म में पश्चिम दिशा में वृत्ताकार, वशीकरण में उत्तर दिशा में पद्माकार, स्तम्भन में पूर्व दिशा में चतुर्भुजाकार, विद्वेषण में नैऋत्य कोण में त्रिभुजाकार, उच्चाटन में वायव्य कोण में षट्कोणा कार तथा मारण में दक्षिण दिशा में अर्द्धचन्द्राकार कुण्ड बनाना चाहिए।

पूजन एवं बलि प्रदान के उपरान्त साधक को हवन करना अभीष्ट होता है। अर्घ्योदक से कुण्डका प्रोक्षण कर उनमें तीन रेखाएँ बनानी चाहिए फिर विधि· वत् अग्नि लाकर "क्रव्यादेभ्यो नमः" तथा मूलमन्त्र पढ़कर अग्नि स्थापना करनी चाहिए। तत्पश्चात् तीन व्याहृतियाँ स्वाहा समेत बोलकर षडङ्ग होम करना चाहिए। तत्पश्चात् अग्नि में इष्ट देवता का आवाहन कर मूलमन्त्र से सविधि हवन करना चाहिए।

१२. बलि—देवता की प्रसन्नता के लिए द्रव्य का समर्पण करना बलिदान कहा जाता है। बलिदान विघ्नों की शान्ति के लिए किया जाता है। अतः अन्त-र्याग एवं बहिर्याग दोनों ही कर्मों में बलि प्रदान करना अनिवार्य होता है।

अन्तर्याग में आत्म बलि को सर्वश्रेष्ठ माना गया है ऐसा करने से साधक का अहंकार नष्ट हो जाता है। काम क्रोध आदि भी साधक के परमशत्रु हैं अतः इनकी बलि भी उत्तम मानी जाती है।

बहिर्याग में बलि द्रव्यों से बलिदान करना चाहिए। तन्त्र की विभिन्न प्रक्रियाओं में अन्न, फल फूल, धूप, दीप एवं यज्ञ पशु आदि की बलि देने की पर-म्पराएँ प्रचलित हैं। बलि देवता की रुचि के अनुसार एवं कामना के अनुसार देनी चाहिए। दक्षिणा चार में हिंसा का निषेध है अतः इसमें पशु बलि वर्जित है।

इष्टदेव को बलि देने के उपरान्त बचे हुए द्रव्य से अन्य देवों को बलि प्रदान करना चाहिए। घर के अन्दर ब्रह्मा तथा विश्वेदेवों को बलि देवे। धन्व-न्तरि को पूर्वोत्तर दिशा में, इन्द्रादि देवताओं को उनकी दिशाओं में, गणेश क्षेत्र पाल वटुक एवं योगिनियों को यन्त्र के द्वारों पर, धाता एवं विधाता को पूजा गृह के द्वार पर, अर्चमा एवं ग्रहों को चारों ओर, निशाचरों को आकाश में तथा पितरों को दक्षिण दिशा में बलि देनी चाहिए।

१३. याग—आराध्य देव की आराधना या पूजा ही याग है याग दो प्रकार का होता है (१) अन्तर्याग, (२) बहिर्याग। अन्तर्याग का महत्त्व विशेष है। अपने शरीरमय पीठ में पीठ देवता, पीठ शक्तियों तथा आवरण देवताओं के साथ

मानसिक रूप से अपने इष्टदेव का पूजन किया जाता है इस मानस पूजा में आधार चक्र से सोती हुई कुण्डलिनी को जगाकर ब्रह्मरन्ध्र में विद्यमान परम शिव के पास ले जाकर वहाँ से रसने वाली अमृतधाराओं से इष्टदेव को तृप्त करते हुए मन्त्रार्थ की भावना के साथ जप किया जाता है। इस अन्तर्याग अथवा मानसिक पूजा के लिए देश-काल एवं शरीर की शुद्धि की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसे हर समय और हर स्थल पर किया जा सकता है। अन्तर्याग से जप सिद्ध होता है और जप के सिद्ध होने पर ध्यान सिद्ध होता है तथा ध्यान के सिद्ध होने पर समाधिसिद्धि एवं इष्टदेव का साक्षात् दर्शन होता है।

याग सिद्ध्या जपः सिद्धो ध्यान सिद्धस्ततः परम्।
ततः समाधि सिद्धिः स्यात् एतया देव दर्शनम्॥

इस प्रकार अन्तर्याग अर्थात् मानसिक पूजा का महत्त्व सर्वाधिक है। पीठ, विग्रह एवं यन्त्र आदि के विधिवत् पूजन को बहिर्याग अथवा बाह्य पूजन कहा जाता है।

मुख्यतः—पूजन तीन प्रकार के होते हैं, (१) पञ्चोपचार, (२) दशोपचार, (३) षोडशोपचार।

पञ्चोपचारः—गन्ध, पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेद्य निवेदित करना पञ्चोपचार कहलाता है।

दशोपचारः—पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, स्नानीय, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेद्य ये दशोपचार कहे जाते हैं।

षोडशोपचारः—आसन-स्वागत-पाद्य अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क-आचमनीय स्नानीय-वस्त्र, अलङ्कार-गन्ध, पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेद्य ये षोडशोपचार के अन्तर्गत आते हैं।

तान्त्रिक ग्रन्थों में कहीं कहीं १८ प्रकार के उपचार एवं ६४ प्रकार के उपचारों का भी वर्णन किया गया है। साधक अपनी शक्ति व सामर्थ्य के अनुसार किसी भी प्रकार के उपचार को अपना सकता है।

बहिर्याग के ५ उपकरण होते हैं—

(१) अभिगमन, (२) उपादान, (३) इज्या, (४) स्वाध्याय एवं (५) योग।

अभिगमन—देव स्थान का स्वच्छीकरण, निर्माल्य का प्रवाही करण अभिगमन है।

उपादान—उपचारों के संग्रह को उपादान कहते हैं।

इज्या—उपचारों से पूजा करना ही इज्या है।

स्वाध्याय—मन्त्रार्थ की भावना के साथ जप करना, सूक्त स्तोत्र, कवच-हृदय-सहस्रनाम का पाठ करना या नाम-गुण-लीला का कीर्तन करना स्वाध्याय कहलाता है।

योग—साधक-साधन एवं साध्य इन तीनों में अभेद बुद्धि रखना योग है।

सद्गृहस्थ को अन्तर्याग एवं बहिर्याग दोनों करने चाहिए। किन्तु ब्रह्मचारी, वान प्रस्थ एवं यति को केवल अन्तर्याग ही करना चाहिए। काम्य प्रयोगों में अन्तर्याग एवं बहिर्याग दोनों को करना अनिवार्य होता है, निष्काम प्रयोगों में एक या दोनों याग करने के लिए साधक की इच्छा पर है। अन्तर्याग के महत्त्व में कहा गया है, कि—

अन्तर्यागस्य महिमा सर्वश्रेष्ठः प्रकीर्तितः।
नापेक्षिता देश शुद्धि र्नापि काल शरीरयोः।।
योगे जपे मानसे वौ तथा कर्माणि निश्चितं।
सर्वदा शक्यते कर्तुं मानसी निखिला क्रिया।।

१४. जप—मन्त्र की बार बार आवृत्ति का नाम ही जप है। जप के तीन भेद होते हैं—(१) मानसिक, (२) उपांशु एवं (३) वाचिक।

मन्त्र का मन ही मन ध्यान करना मानसिक जप कहलाता है। जिह्वा एवं ओष्ठ को हिलाते हुए जो केवल स्वयं को ही सुनायी दे इस प्रकार के जप को उपांशु कहते हैं। वाणी द्वारा स्पष्ट मन्त्रोच्चारण करना वाचिक कहा जाता है।

स्तोत्र, कवच, सहस्रनाम आदि का मन ही मन पाठ करना या मन्त्र को उच्चस्वर से जपना निषिद्ध है। केवल मारण प्रयोग में ही वाचिका जप करना चाहिए। शेष सभी प्रयोगों में मानसिक अथवा उपांशु जप करना चाहिए।

वाचिक जप का फल यज्ञ तुल्य होता है। इसी प्रकार उपांशु के जप का शतगुना तथा मानसिक जप का सहस्रगुणा फलदायी हाता है। पाद्मनारदीय में लिखा है कि सिद्धि के लिए मानसिक, पुष्टि के लिए उपांशु तथा मारण आदि क्रूर कर्मों के लिए वाचिक जप करना चाहिए।

मन्त्र का जप न तो बहुत शीघ्रता से करे और न बहुत धीरे-धीरे। मन्त्र को सावधानी पूर्वक मध्यम गति से जपना चाहिए। मन्त्र का अर्थ, मन्त्र चैतन्य तथा योनि मुद्रा को न जानने वाला शतकोटि मन्त्र जपकर भी सिद्धि नहीं पाता।

सुप्त बीज मन्त्र कभी सिद्धि नहीं देता किन्तु यदि उसे चैतन्य कर लिया जाय तो सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। मन्त्रानुष्ठान एवं पुरश्चरण में बिना आसन, चलते-फिरते, सोते समय, भोजन के समक्ष, चिन्तित, कुछ भ्रान्त या क्षुधार्त होने पर जप नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार पैर फैलाकर, उत्कटासन में बैठकर

यज्ञाकाष्ठ पत्थर पर या मिट्टी पर बैठकर जप करना वर्जित है। चारपाई में पड़े-पड़े, खड़े-खड़े या सवारी वाहन आदि में बैठे बैठे जप करना मना है। ये नियम उपांशु एवं वाचिक जपों में लागू होता है मानसिक जप में ये नियम लागू नहीं होते। मानसिक जप प्रत्येक अवस्था में तथा प्रत्येक स्थान पर किसी भी समय किया जा सकता है। मानसिक जप में शुद्धि अशुद्धि आदि का भी कोई विचार नहीं किया जाता किन्तु इसमें मानसिक शुद्धता का विचार अवश्य किया जाता है।

जप करते समय जमुहाई आने पर या अपान वायु निकलने पर आचमन प्राणायाम व अङ्गन्यास आदि करके पुनः जप प्रारम्भ करना चाहिए। जप करते समय पतित व्यक्ति का दर्शन करना, शूद्र, बिल्ली, बगुला, बन्दर या गदर्भ आदि के दिखायी पड़ने पर आचमन करना चाहिए तथा स्पर्श हो जाने पर स्नान करना चहिए। यह मत वैशम्पायन संहिता का है।

जप करने के मध्य में किसी से बात करने पर प्रणव का जप करना चाहिए। किसी को अप-शब्द कहने पर प्राणायाम करना चाहिए तथा अनेक बातें करने पर आचमन-प्राणायाम तथा अङ्गन्यास करना चाहिए।

जप एक ही स्थान पर तथा एक निश्चित समय पर ही करना चाहिए।

१५. ध्यान—ध्यान मन्त्र जप का मुख्य अङ्ग है क्योंकि जिस प्रकार मन्त्र का सम्बन्ध शब्द से होता है और शब्द का अर्थ से, अर्थ का भाव से और भाव का रूप से सम्बन्ध होता है उसी प्रकार जप का सम्बन्ध ध्यान से होता है, अतः जप में यदि ध्यान न हुआ तो जप व्यर्थ होता है अतः साधक को ध्यान योग के साथ बड़े मनोयोग से अपने इष्ट मन्त्र का तन्मयता पूर्वक जप करना चाहिए।

१६. समाधि—मन-मन्त्र एवं देवता इन तीनों की सत्ता जब तक पृथक्-पृथक् रहती है तब तक ध्यान का अधिकार रहता है किन्तु जब ये तीनों एक में मिल जाते हैं तो समाधि प्रारम्भ हो जाती है। समाधि से महाभाव उत्पन्न होता है। महाभाव के उत्पन्न होते ही साधक के शरीर में रोमाञ्च होने लगता है, स्तब्धता आती है तथा प्रमोश्रु बहने लगते हैं। इस महाभाव के उत्पन्न होने पर साधक समाधि में अपने अस्तित्व को भूल जाता है तथा इष्टमय हो जाता है।

श्री श्री यन्त्र के पूजनारम्भ का मुहुर्त

श्री श्री यन्त्र का पूजन आश्विन कृष्ण पक्ष की नवमी को आर्द्रा नक्षत्र से प्रारम्भ करना विशेष उपयुक्त है, क्योंकि आर्द्रा नक्षत्र स्वयं लक्ष्मी स्वरूप है, जैसा कि श्री काली विलास तन्त्र के तीसवें पटल में श्री तत्पुरुष भगवान् कहते हैं—

आर्द्रा लक्ष्मीरिति ख्याता नित्या श्री विष्णु वल्लभा ।
आर्द्रा ऋक्षेण संयुक्ता, यद्दिने नवमी भवेत् ।।
तद्दिने बोधनं पुत्र प्रशस्तं कलि सम्मतम् ।
नवमी सहिता चार्द्रा यदि स्याद्रात्रियोगतः ।।
प्रातः काले समिद्धायां बोधनं तत्र भैरव ।।

इसी प्रकार श्री तामस का कथन है

आर्द्रर्क्षं नहि सन्त्याज्यं, यदीच्छेदात्मनः शुभम् ।
आर्द्रर्क्षं नहि संत्याज्यं, सन्त्याज्यं न कदाचन ।।

अर्थात् यदि साधक अपना कल्याण चाहता है तो वह आर्द्रा नक्षत्र को न त्यागे, आर्द्रा नक्षत्र को न त्यागे किसी भी दशा में न त्यागे ।

आर्द्रा नक्षत्र से लेकर मूल-पूर्वाषाढ़ा और उत्तरषाढा नक्षत्र तक श्रीविद्या पूजन करते हुए श्रवण नक्षत्र में विसर्जन करे । इस प्रकार निरन्तर १६ दिन तक पूजन करने के उपरान्त श्रवण नक्षत्र में १७ वें दिन विसर्जन करें ।

दीक्षा काल

यन्त्र मन्त्र व तन्त्रादि की साधना केवल पुस्तकीय ज्ञान पर ही नहीं करनी चाहिए । इसके लिए साधनेच्छुक को सद्गुरु की शरण में जाना ही श्रेयस्कर है । सद्गुरु को प्राप्त करने के उपरान्त पहले दीक्षा लेना अथवा दीक्षित होना अनिवार्य होता है । श्री काली विलास तन्त्र के छठे पटल में दीक्षा काल का निर्णय इस प्रकार दिया गया है ।

फाल्गुने सिते पक्षे या कृष्णाख्या पञ्चमी भवेत् ।
यदि भाग्यवशात् स्वाती शुक्रवार समन्विता ।।
तत्र या क्रियते दीक्षा कोटि दीक्षा फलं लभेत् ।
श्रवणा ऋक्ष संयुक्ता यदिभाग्यवशाद भवेत् ।।
चतुर्दशी शुक्ल युक्ता सातिथिः सर्वदायिनी ।
बुधवारेण सहिता आर्द्रा ऋक्ष समन्विता ।।
शुक्ला च नवमी नित्या वरदा श्री प्रदायिनी ।
यत्प्रोक्तं सर्वं तन्त्रेषु अधुना कथयामि ते ।।

अर्थात् फाल्गुन मास के कृष्ण या शुक्ल पक्ष में यदि पञ्चमी तिथि हो और भाग्यवश स्वाती नक्षत्र तथा शुक्र का दिन हो तो उस मुहूर्त में दीक्षा लेने से कोटि दीक्षाओं का फल मिलता है । यदि श्रवण नक्षत्र ही भाग्यवश मिले तो वह भी अत्युत्तम होता है । शुक्ल पक्ष चतुर्दशी तिथि भी सर्व सिद्धि प्रदायक होती

है। बुध के दिन आर्द्रा नक्षत्र तथा शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि समस्त ऐश्वर्यों को प्रदान करती है। इस समय मैंने जो समस्त तन्त्रों में बताया है वही तुम्हें बताया हैं।

गुरु का लक्षण

सुन्दरः सुमुखः स्वच्छः सुलभो बहु तन्त्र वित्।
असंशयः संशयच्छिन्निरपेक्षो गुरुर्मतः॥
सौन्दर्य मनवद्यत्वं रूपे सौ सुख्यता पुनः।
स्मेर पूर्वाभिभाषित्वं स्वच्छताऽजिह्म वृत्तिता॥
सौलभ्यमप्यगर्वित्वं सन्तोषी बहुतन्त्रता।
असंशय स्तत्त्व बोधे तच्छक्ति प्रतिपादनात्॥
नैरपेक्ष्यमवित्तेच्छा गुरुत्वं हितवादिता।
एवं विधो गुरुर्ज्ञेयस्त्विरः शिष्यदुःखदः॥

अर्थात् सुन्दर (स्वभाव वाला) सुमुख (अनिन्ध सुन्दर मोहक आकृति वाला) स्वच्छ (साफ-सुथरा रहने वाला तथा पवित्रता आदि पर विशेष ध्यान देने वाला) सुलभ (सहज ही प्राप्य) बहुत से तन्त्रों का ज्ञाता, संशय (सन्देह) रहित, संदेहों का निराकरण करने वाला, किसी भी प्रकार की कोई भी अपेक्षा न करने वाला ही गुरु कहलाता है। अनिन्द्य (निष्कलंक) सौन्दर्य वान्, जिसके रूप को देखकर ही सुखाभास हो, स्मेर (मन्द हास्य युक्त-मन्द मन्द मुस्कराने वाला) स्वच्छता और अकुटिलता युक्त, सुलभ रहने वाला, गर्व रहित, सन्तोषी बहुत से तन्त्रों का विद्वान, संशय रहित, तत्त्व बोधी एवं तत्त्व की शक्ति का प्रतिपादक कर्ता, किसी भी प्रकार का लोभ न करने वाला, निरपेक्ष, गुरुत्व युक्त, शिष्य का कल्याण चाहने वाला, इस प्रकार का गुरु ही वास्तव में गुरु करने योग्य है। इन लक्षणों से रहित गुरु शिष्य के लिये दुःखदायी होता है।

शिष्य का लक्षण

चतुर्भिराद्यैः संयुक्तः श्रद्धावान् सुस्थिराशयः।
अलुब्धः स्थिर गात्रश्च प्रेक्षाकारी जितेन्द्रियः॥
आस्तिको दृढभक्तिश्च गुरौ मन्त्रे सदैवते।
एवं विधो भवेच्छिष्य स्त्वितरो दुःखकृद्गुरोः॥
गुरुच्यमाने वचने दद्यादित्थं वचः सदा।
प्रसीद नाथ! देवेति तथेति च कृतादरम्॥

प्रणम्योपविशेत् पार्श्वे, तथा मच्छेदनुज्ञया।
मुखावलोकी सेवेत कुर्यादादिष्टमादरात् ।।
असत्यं न वदेदग्रे, न बहु प्रलपेदपि।
कामं क्रोधं तथा लोभं मानं प्रहसनं स्तुतिम् ।।
चापलानि च जिह्मानि, नर्माणि परिदेवनम्।
ऋणदानं तथादानं वस्तूनां क्रय विक्रयम् ।।
न कुर्याद् गुरुणा सार्द्धं शिष्यो भूष्णुः कदाचन।
यतो गुरुः शिवः साक्षात्तं स्तुवन् प्रणमन् भजेत् ।।

प्रथम चार श्लोकों में बताये गये लक्षण शिष्य में भी होने चाहिए। इनके अतिरिक्त शिष्य को श्रद्धावान् तथा स्थिर आशय वाला, लोभ रहित, गात्रों (अंगों) को स्थिर रखने वाला, आज्ञाकारी और जितेन्द्रिय होना चाहिए। आस्तिक, गुरु में दृढ आस्था और विश्वास वाली भक्ति होनी चाहिए। गुरु मन्त्र और देवता एक ही हैं। ऐसा ही शिष्य शिष्य है अन्यथा गुरु के लिए दुःखदायी होता है। गुरु के कहे हुए वचनों पर ध्यान देने वाला, हे नाथ ! हे देव !! मुझ पर प्रसन्न हों इस प्रकार आदर सहित वचन बोलने वाला, गुरु को प्रणाम कर गुरु के निकट बैठे तथा गुरु की आज्ञा पाने पर ही अन्यत्र कही भी जाय। गुरु के मुख की भाव भंगिमाओं का अवलोकन कर तदनुसार ही कार्य करे, गुरु की प्रत्येक आज्ञा का आदर पूर्वक पालन करे। गुरु के सामने कभी असत्य न बोले न अधिक वार्तालाप करे। काम-क्रोध लोभ मोह, मान, प्रहसन, स्तुति, चपलता, कुटिलता, मजाक आमोद-प्रमोद, ऋण देना, ऋण लेना, वस्तुओं का क्रय-विक्रय, गुरु के साथ कभी न करे। शिष्य को इन बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। क्योंकि गुरु साक्षात् शिव है, अतः उन्हें सदैव प्रणाम करते हुए उनकी सेवा में सतत लगा रहे।

यथा देवे तथा मन्त्रे, यथा मन्त्रे तथा गुरौ।
यथा गुरौ तथा स्वात्मन्येषं भक्तिक्रमः प्रिये ।।
गुरोस्तु जन्म दिवसे, कुर्यादुत्सवमादरात्।
विशेष पूजां योगिभ्यो भोजनं तत्पदार्चनम् ।।
व्याप्ते दूर गते पूज्यं पूजयेदग्रजादिषु।
एक देशे नित्य सेवा दूरस्थे योजन क्रमात् ।।

एकादिऋतु संवृद्ध्या, वर्षे षड्योजनान्तरे।
ततोऽदूर गते सेवा तदाज्ञा परिपालनम् ।।

आसनं शयनं वस्त्रं भूषणं पादूकां तथा।
छायां कलत्र मन्यच्च यत्तस्येष्टं तु पूजयेत् ।।

एक ग्रामे पृथक् पूजां न कुर्यादननुज्ञया ।
पूजा मध्ये समायाते पूज्ये न त्वा स्थितिं वदेत् ॥
विधेहि शेष नित्युक्तः कुर्यान्नोचेत्तदाज्ञया ।
वर्तेत सोऽपि तच्छेषं कुर्यान्निश्चल मानसः ॥
पूजा मध्ये गुरौ पूज्ये, त्वन्येवापि समागते ।
कृत्यमेवं समुद्दिष्टं, मौनं तैनं समाचरेत् ॥
गुरुं न मर्त्यं बुध्येत, यदि बुध्येत तस्य तु ।
न कदापि भवेत् सिद्धिर्मन्त्रैर्वा देव पूजनैः ॥

भगवान् शंकर श्री पार्वती जी से कहते हैं कि हे प्रिये ! जिस प्रकार की भक्ति देवता के प्रति की जाती है उसी प्रकार की भक्ति मन्त्र के प्रति करे और जिस प्रकार की भक्ति मन्त्र के प्रति की जाती है उसी प्रकार की भक्ति गुरु के प्रति करें तथा जिस प्रकार की भक्ति गुरु के प्रति की जाती है उसी प्रकार की भक्ति अपने आत्मा के प्रति करें, यह भक्ति का क्रम है । शिष्य को चाहिए कि गुरु के जन्म दिवसपर अतीव श्रद्धा के साथ उत्सव करें और गुरु की विशेष पूजा के साथ योगियों को भोजन करवावे तथा उन योगियों के भी चरणों का अर्चन करें । गुरु के दूर देश में व्याप्त होने पर अन्य अंग्रजों का पूजन करें । यदि गुरु और शिष्य एक ही स्थान पर हैं तो नित्य सेवा करें । गुरु यदि एक योजन के अन्तर में हैं तो भी नित्य सेवा करें । यदि छह योजन दूरी पर गुरु हैं तो प्रत्येक ऋतु में एक बार पूजन करें । उससे भी दूर होने पर गुरु की आज्ञानुसार कार्य करें । गुरु के आसन-शयन-वस्त्र आभूषण व पादुका, चित्र, आश्रम अथवा जो भी इष्ट हो उसकी पूजा करें । एक ही ग्राम में रहकर बिना गुरु की आज्ञा के पृथक् पूजा न करें । पूजा के मध्य में पूज्य के आ जाने पर प्रणाम कर यथा स्थिति बतावे, फिर शेष पूजा करें । निश्चल मन से गुरु की शेष पूजा करें । इन कृत्यों को करते समय मौन न रहे गुरु को मरण शील न समझे यदि गुरु को मरण शील समझता है तो उसे कभी देव पूजन से या मन्त्र जप से सिद्धि नहीं मिलती ।

कादि विद्या में नियम व्यवस्था

हादौ हि नियमाः प्रोक्ताः यम संयमनादयः ।
कादौ तु नियमो नास्ति, स्वेच्छया धर्मं माचरेत् ॥

हादि विद्या में यम संयम आदि नियमों का पालन अनिवार्य होता है किन्तु कादि विद्या में कोई नियम नहीं है, स्वेच्छा से धर्माचरण करे ।

—दक्षिणा सर्वस्व

कार्य सिद्धि कैसे हो ?

जिह्वा दग्धा परान्नेन, हस्तौ दग्धौ प्रति ग्रहात् ।
मनो दग्धं पर स्त्री भिः कार्यं सिद्धिः कथं भवेत् ।।

परान्न भक्षण से जिह्वा और दान लेने के हाथ तथा पर स्त्री सेवन से मन दग्ध हो जाता है, अतः कार्य सिद्धि कैसे सम्भव हो सकती है । अतः साधक को परान्न भक्षण, दान ग्रहण एवं परस्त्री सेवन से बचना चाहिए ।

—कुलार्णव तन्त्र १५/८४

भावनानुसार सिद्धि

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे, दैवज्ञे भेषजे गुरौ ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धि र्भवति तादृशी ।।

मन्त्र, तीर्थ, द्विज, देव, ज्योतिषी, औषध और गुरु में जिसकी जिस प्रकार की भावना होती है, उसी प्रकार की सिद्धि होती है ।

पूजा-स्तोत्र-जप ध्यान और लय

पूजा कोटि समं स्तोत्रं, स्तोत्र कोटि समो जपः ।
जप कोटि समं ध्यानं, ध्यान कोटि समो लयः ।।

करोड़ों पूजाओं के समान स्तोत्र होता है और करोड़ों स्तोत्रों के समान जप होता है । करोड़ों जप के समान ध्यान होता है तथा करोड़ों ध्यानों के समान इष्ट में तल्लीनता होता है । —कुलार्णव तन्त्र ९/३७

बीजाक्षर ज्ञान

कत्रयं हृद्वयं चैव शंवो भागः प्रकीर्तितः ।
शक्त्यक्षराणि शेषाणि ह्रींकार उभयात्मकः ।।
एवं विभाग मज्ञात्वा ये विद्या जप शालिनः ।
न तेषां सिद्धिदा विद्या कल्पकोटिशतैरपि ।।

पञ्चदशी मन्त्र में तीन ककार और दोहकार शिव वर्ण हैं अर्थात् ये शिव के बीजाक्षर हैं । इनके अतिरिक्त शेष वीजाक्षर शक्ति वर्ण हैं अर्थात् शक्ति के हैं । मन्त्र में जो तीन ह्रींकार आते हैं वे शिवशक्त्यात्मक हैं अर्थात् शिव और शक्ति दोनों के हैं । जो साधक इस प्रकार मन्त्राक्षरों के विभाग को नहीं जानता, उसे सिद्धि नहीं प्राप्त होती है ।

ब्रह्माण्डपुराण

